आधुनिक संसार

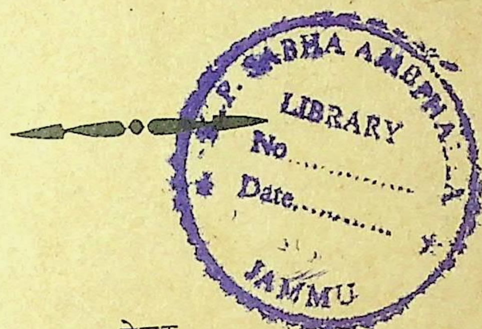
(संशोधित और परिवर्धित संस्करण)

लेखक
श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार
सम्पादक
'वीर अर्जुन'

हिन्दी भवन, जालंधर

आधुनिक संसार

(संशोधित और परिवर्धित संस्करण)



लेखक

श्री कृष्णचंद्र विद्यालंकार

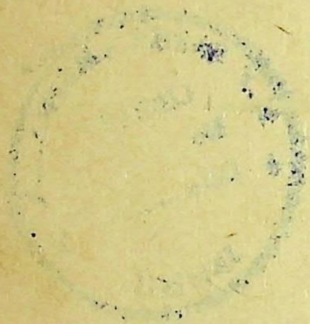
(संपादक 'वीर अर्जुन')

मूल्य ४)

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जालंधर और इलाहाबाद



प्रकाशक—धर्मचन्द्र नारंग, हिन्दी भवन, जालंधर

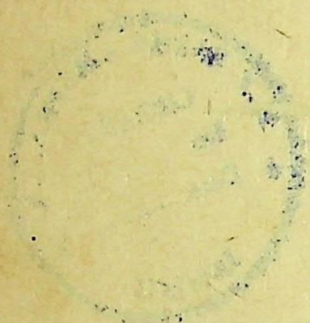
मुद्रक—विश्व प्रकाश, कला प्रेस, इलाहाबाद

Donated by
RL Shaw

विषय-सूची

पहला भाग

दूसरा भाग



प्रकाशक—धर्मचन्द्र नारंग, हिन्दी भवन, जालंधर
मुद्रक—विश्व प्रकाश, कला प्रेस, इलाहाबाद

Donated by
RL Shaw

विषय-सूची

पहला भाग

दूसरा भाग

आधुनिक संसार

पहला भाग

अध्याय १

हमारा यह विशाल विश्व

हमारी इस पृथ्वी का, जिस पर हम निवास करते हैं, क्षेत्रफल प्रायः १९ करोड़ २० लाख वर्ग मील है। इसमें स्थल भाग सिर्फ २९ फ़ी सदी अर्थात् ५,७०,००,००० वर्गमील है। शेष विशाल भाग जो समस्त भूमंडल का लगभग ७१ प्रतिशत है, जल ही जल है।

स्थल का भी अधिकांश भाग उत्तरी गोलार्ध में है। दक्षिणी गोलार्ध में स्थल है अवश्य, लेकिन बहुत कम। ४० अक्षांश के दक्षिण में तो न्यूज़ीलैंड तथा अंटार्कटिका प्रदेश और छोटे मोटे टापुओं को छोड़ कर सब कहीं जल ही जल है। न्यूज़ीलैंड जलभाग के गोलार्ध के मध्य में स्थित है। वास्तव में एक ही महासागर पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में फैला हुआ है। सुविधा के लिए हमने उसके भिन्न भिन्न नाम रख लिये हैं, जो निम्नलिखित हैं—

प्रशान्त महासागर—इसके पूर्व में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका हैं और पश्चिम में एशिया तथा आस्ट्रेलिया। यह सब से बड़ा समुद्र है। इसका क्षेत्रफल ६३ करोड़ वर्ग मील है। पृथ्वी के समस्त क्षेत्रफल का एक तिहाई भाग इससे घिरा हुआ है। इसका आकार कुछ अंडाकार है। उत्तर में यह स्थल से घिरा हुआ है, पर दक्षिण की ओर अधिक खुला है। कई विद्वानों का खयाल है कि पृथ्वी के

आधुनिक संसार

पहला भाग

अध्याय १

हमारा यह विशाल विश्व

हमारी इस पृथ्वी का, जिस पर हम निवास करते हैं, क्षेत्रफल प्रायः १९ करोड़ २० लाख वर्ग मील है। इसमें स्थल भाग सिर्फ २९ फ़ी सदी अर्थात् ५,७०,००,००० वर्गमील है। शेष विशाल भाग जो समस्त भूमंडल का लगभग ७१ प्रतिशत है, जल ही जल है।

स्थल का भी अधिकांश भाग उत्तरी गोलार्ध में है। दक्षिणी गोलार्ध में स्थल है अवश्य, लेकिन बहुत कम। ४० अक्षांश के दक्षिण में तो न्यूज़ीलैंड तथा अंटार्कटिका प्रदेश और छोटे मोटे टापुओं को छोड़ कर सब कहीं जल ही जल है। न्यूज़ीलैंड जलभाग के गोलार्ध के मध्य में स्थित है। वास्तव में एक ही महासागर पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में फैला हुआ है। सुविधा के लिए हमने उसके भिन्न भिन्न नाम रख लिये हैं, जो निम्नलिखित हैं--

प्रशान्त महासागर--इसके पूर्व में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका हैं और पश्चिम में एशिया तथा आस्ट्रेलिया। यह सब से बड़ा समुद्र है। इसका क्षेत्रफल ६३ करोड़ वर्ग मील है। पृथ्वी के समस्त क्षेत्रफल का एक तिहाई भाग इससे घिरा हुआ है। इसका आकार कुछ अंडाकार है। उत्तर में यह स्थल से घिरा हुआ है, पर दक्षिण की ओर अधिक खुला है। कई विद्वानों का खयाल है कि पृथ्वी के

जिस भाग से चन्द्रमा निकल गया, वही प्रशान्त महासागर हो गया है। यह बहुत गहरा समुद्र है और एक स्थान पर तो इस में हिमालय की उच्चतम चोटी स्वर्गमाथा तक डूब सकती है। लेकिन अतलांतक सागर से दुगना होते हुए भी व्यापारिक दृष्टि से यह उतना लाभप्रद नहीं है, क्योंकि इसका तट उसकी अपेक्षा कम कटा-फटा है। इसमें ऐसी लंबी नदियाँ बहुत कम गिरती हैं, जिनमें जहाजों का आना जाना हो सके और जिनके किनारों पर उपजाऊ देश हों। इसके तट पर बसने वाली जातियाँ बहुत व्यापार-कुशल भी नहीं हैं।

अतलांतक महासागर—यह अंग्रेज़ी के S अक्षर के आकार का समुद्र है। इसके पूर्व में यूरोप और एफ्रिका के महाद्वीप हैं और पश्चिम में उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका। इसका क्षेत्रफल साढ़े तीन करोड़ वर्गमील है। इसका तट बहुत कटा-फटा है और इसी कारण इसका समुद्र तट सब महासागरों से अधिक लंबा है। जहाज़ों के चलने योग्य लंबी नदियाँ इसमें गिरती हैं। इन कारणों से इस समुद्र पर दुनियाँ में सब से अधिक व्यापार होता है।

हिन्द महासागर—यह अर्धचन्द्राकार समुद्र पुरानी दुनिया के केन्द्र में स्थित है। इसका क्षेत्रफल २ करोड़ ५० लाख वर्गमील है। इसके उत्तर में भारतवर्ष तथा एशिया के अन्य प्रदेश हैं। इसके बड़े बड़े भाग खाड़ी बंगाल, अरब सागर, ईरान की खाड़ी तथा लालसागर हैं। स्वेज की नहर इसे भूमध्यसागर (मैडिटरेनियन सी) से मिलाती है। इस कारण इसका व्यापार बहुत बढ़ गया है। इसमें स्थित अदन, कोलंबो तथा सिंगापुर आदि बंदरगाहों में बड़े-बड़े जहाजों में कोयला भरने के स्टेशन हैं। इन सब पर अंगरेज़ों का अधिकार होने के कारण उनका व्यापार बहुत बढ़ा चढ़ा है।

उत्तरी हिमसागर—यह उत्तरी ध्रुव के इर्द-गिर्द फैला हुआ है। एशिया, यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के उत्तरी प्रदेश इसके तट पर स्थित हैं। इसका क्षेत्रफल ५५,००,००० वर्ग मील है। यह सदा

जमा रहता है, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है। गर्मियों में थोड़ा बहुत व्यापार अवश्य होता है। बेरिंग जलडमरूमध्य के द्वारा प्रशान्त महासागर से तथा ग्रीनलैंड के पश्चिमी तंग समुद्र के द्वारा अतलांतक महासागर से यह मिला हुआ है।

दक्षिणी हिमसागर—यह दक्षिणी ध्रुव के इर्द गिर्द फैला हुआ है। इसमें एक विस्तृत हिमाच्छादित महाद्वीप है, जो बिलकुल निर्जन है। इसका क्षेत्रफल ४० लाख वर्गमील है। कोई बसा हुआ द्वीप या महाद्वीप इसके समीप नहीं है। यह प्रशांत, हिंद और अतलांतक महासागर के साथ मिला हुआ है।

इन पाँच महासागरों के अतिरिक्त भिन्न भिन्न देशों के पार्श्ववर्ती या विभिन्न स्थलभागों के अन्तर्वर्ती जल प्रदेशों के अलग अलग नाम रख लिये गये हैं।

पाँच महाद्वीप

हम पहले कह आये हैं कि समस्त पृथ्वी का स्थल भाग कुल पृथ्वी के एक चौथाई भाग के बराबर है। इसमें से भी १० लाख वर्गमील नदियाँ और झीलें हैं। संपूर्ण पृथ्वी के स्थल भाग को निम्नलिखित पाँच बड़े बड़े महाद्वीपों में विभक्त किया गया है :—

१—एशिया

२—एफ्रिका

३—यूरोप

४—अमेरिका (अनेक लेखक उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के नाम से दो महाद्वीप मानते हैं)

५—ओशनिया।

इनके अतिरिक्त उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों का स्थल भाग, जिसका विस्तार ५० लाख वर्गमील है, निर्जन पड़ा है। कुल पृथ्वी की आबादी २ अरब है।

एशिया—एक अरब से अधिक आबादी वाला एशिया सब से बड़ा महाद्वीप है। इसका क्षेत्रफल पौने दो करोड़ वर्गमील है। केवल अपनी विशाल जनसंख्या और विस्तृत क्षेत्रफल के कारण ही नहीं, धर्म और सभ्यता का जन्मदाता होने के कारण भी एशिया का महत्त्व बहुत अधिक है। संसार के सभी बड़े धर्म—हिन्दू, बौद्ध, ईसाई और इस्लाम एशिया में ही उत्पन्न हुए हैं। रेशम, छापे की विधि. बारूद, गणित और चिकित्साशास्त्र आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विज्ञान भी एशिया के आविष्कार हैं। चीन, भारत, पाकिस्तान, एशियाई रूस, जापान, स्याम, हिन्दचीन, तिब्बत अफ़गानिस्तान, ईरान, ईराक, टर्की और अरब इसके प्रमुख देश हैं।

किसी समय राजनीतिक दृष्टि से भी इसका बोलबाला था। आज इसकी हालत अच्छी नहीं है। इसके अनेक विशाल प्रदेशों पर यूरोपियन राष्ट्रों का अधिकार है। लेकिन अब हालत बदलने लगी है। एशिया के प्रायः सभी देशों में जागृति उत्पन्न हो चुकी है। भारत, बरमा और लंका स्वाधीन हो चुके हैं। इण्डोनेशिया स्वतंत्रप्राय हो गया है। चीन. टर्की. ईरान और अफ़गानिस्तान भी नवीन जागृति की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ चुके हैं। यद्यपि जापान अपने महान् स्वप्न और अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने में असफल हुआ है, तथापि व्यापारिक और व्यावसायिक दृष्टि से वह बहुत उन्नत है।

एशियाई देश अपनी जनसंख्या आदि के कारण ही नहीं, कच्चे माल की पर्याप्त मात्रा में पैदावार के कारण भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जूट पर एकाधिकार ही भारत और पाकिस्तान का है। गेहूँ, चावल, जौ और रुई भी भारत, पाकिस्तान, बरमा और चीन आदि में पैदा होते हैं। मिट्टी का तेल, जो आजकल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पदार्थ बन गया है एशिया के विविध भागों में पाया जाता है, जिनमें से ईराक, ईरान, बरमा और इंडोनेशिया प्रसिद्ध हैं। लोहा और कोयला भी भारत में पर्याप्त होता है।

एफ्रिका—एशिया के बाद एफ्रिका ही सबसे बड़ा महाद्वीप है। इसका क्षेत्रफल १,१५,००,००० वर्ग मील है। यहाँ खनिज द्रव्यों की बहुतायत है। फ्रांस, ब्रिटेन, बेलजियम, पुर्तगाल और स्पेन ने अपने बड़े बड़े उपनिवेश यहाँ स्थापित किये हुए हैं। एफ्रिका में मिस्र, अबीसीनिया, लीबिया, दक्षिणी एफ्रिका, रोडेशिया, कीनिया, टांगानिका, कांगो, अलजीरिया, इरिट्रिया, सोमालिलैंड आदि बहुत से देश हैं। मिस्र अब स्वतंत्र देश है। यह अपनी रुई और विशेषतः स्वेज नहर के कारण असाधारण महत्त्व प्राप्त चुका है। सोना दक्षिणी एफ्रिका में पाया जाता है।

यूरोप—यूरोप को एक अलग महाद्वीप कहना एक प्रकार से ठीक नहीं है, क्योंकि यह महाद्वीप एशिया का एक भाग है। परन्तु इसका इतिहास एशिया महाद्वीप से बिलकुल भिन्न है, इसलिए यूरोप को अलग महाद्वीप कहा जाता है। यह यद्यपि पृथ्वी के समस्त स्थल भाग का चौदहवाँ हिस्सा (३७,५०,००० वर्ग मील) है, यथापि इसका प्रभाव संपूर्ण संसार पर है। यहाँ १२० भाषाएँ बोली जाती हैं। इंगलैंड, फ्राँस, जर्मनी, इटली, रूस, स्विटज़रलैंड, बेलजियम, हालैंड, नारवे, स्वीडन, फिनलैंड, रूमानिया, बलगेरिया, हंगरी, ग्रीस और टर्की यूरोप के प्रमुख देश हैं। इस महासमर में किया गया यूरोप का पुनर्विभाजन आज फिर बदल रहा है। वहाँ बड़ी भारी उथल पुथल मच रही है। जर्मनी ने जिन राष्ट्रों पर अधिकार कर लिया था, आज वे भी स्वतंत्र राष्ट्र हो चुके हैं अथवा उन पर रूस और ब्रिटेन अपना अपना प्रभाव बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं।

इंगलैंड और जर्मनी आदि यदि कोयले और लोहे के कारण बहुत महत्त्व प्राप्त कर गये हैं, तो रूस मिट्टी के तेल, तथा गेहूँ आदि के कारण बहुत शक्तिशाली हो गया है। कोयले की कमी वह बिजली से पूर्ण करना चाहता है। रूमानिया में तेल बहुत पाया जाता है। फिर भी यूरोप के अनेक राष्ट्र अपनी अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए

एशिया तथा एफ्रिका पर निर्भर करते हैं और इसीलिए अपने साम्राज्य की वृद्धि के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। इंगलैंड में सिर्फ ३०-४० फीसदी जनता के लायक अन्न पैदा होता है। उसे अपने अन्न के लिए आस्ट्रेलिया, हिन्दुस्तान, कैनाडा आदि पर निर्भर होना पड़ता है। कच्चे माल की प्राप्ति तथा अपने माल के बाज़ार के लिए भी वे दूसरे महाद्वीपों पर निर्भर करते हैं।

अमेरिका—एशिया, यूरोप और एफ्रिका तो एक दूसरे को छूते हैं, लेकिन यह महाद्वीप बाकी सब महाद्वीपों से बहुत दूर अकेला बसा हुआ है। इसलिए बहुत समय तक यूरोप वालों को अमेरिका महाद्वीप का कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। प्राचीन शोध से अब यह तो पता लगा है कि बहुत प्राचीन काल में भारतीय वहाँ जाया करते थे, लेकिन यह सम्बन्ध स्थायी नहीं रहा और अमेरिका शेष संसार के लिए अज्ञात सा ही बना रहा। कोलंबस ने यूरोप वालों को सन् १४९२ में इसका परिचय दिया था। तब से यहाँ बहुत से यूरोपियन आकर बसने लगे। इसका क्षेत्रफल १,५०,००,००० वर्ग मील है। १८२३ ई० में संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के प्रैज़िडैंट मि० मुनरो ने यह घोषणा की कि अब कोई भी यूरोपियन अमेरिका में उपनिवेश न बना सकेगा और न यहाँ हस्तक्षेप कर सकेगा। पनामा का जलमार्ग अमेरिका को उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में विभक्त करता है। उत्तरी अमेरिका में कैनेडा, संयुक्त-राष्ट्र और मैक्सिको हैं। दक्षिणी अमेरिका में पीरू, चिली, अर्जनटाइना, ब्राज़ील, बोलिविया आदि अनेक स्वतन्त्र राज्य हैं। कैनेडा ब्रिटेन का उपनिवेश है। इस महायुद्ध में असाधारण भाग लेने के कारण अब संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका अत्यंत समृद्ध तथा शक्तिशाली राष्ट्र बन गया है।

ओशनिया—यह सब से छोटा महाद्वीप है। इसका क्षेत्रफल कुल स्थल भाग का १७ फ़ीसदी है, और आबादी संसार की कुल

आबादी की केवल १/२ फीसदी है। इसके दो मुख्य भाग आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड हैं और दोनों ब्रिटेन के उपनिवेश हैं।

हमारा देश भारतवर्ष

पाकिस्तान के रूप में एक बड़ा खण्ड पृथक् कर देने के बावजूद भारतवर्ष बहुत विशाल देश है। कटाव बहुत कम होने पर भी भारतवर्ष की तट रेखा प्रायः ८००० मील है। पर स्थल सीमा करीब ६००० मील है और पाकिस्तान, रूस, चीन और बरमा से मिली हुई है। और इन सीमाओं के भीतर भारतवर्ष का क्षेत्रफल १६ लाख २९ हजार वर्ग मील अर्थात् ब्रिटेन से १८ गुना है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी लंबाई २००० मील है और पूर्व से पश्चिम तक इसकी दूरी १८०० मील है। आबादी की दृष्टि से भारतवर्ष संसार का दूसरा देश है। इस विशाल क्षेत्र में समस्त संसार की १/६ जनसंख्या (प्रायः ३२ करोड़) का निवास है।

भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संसार के स्थल समूह के प्रायः मध्य में एशिया महाद्वीप है और एशिया महाद्वीप के मध्य में भारतवर्ष है। चीन, फारस, मिस्र, यूनान, इटली आदि कई देशों के प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में प्रधान स्थलमार्गों का प्रारम्भ भारतवर्ष से होता था। जलमार्गों के लिए भारतवर्ष की स्थिति और भी केन्द्रवर्ती है। कोलम्बो से पर्थ (आस्ट्रेलिया) और डरबन (दक्षिण एफ्रिका) प्रायः समान दूरी पर ही हैं। कलकत्ते से सिंगापुर और हांगकांग होकर याकोहोमा (जापान) के लिए अक्सर जहाज घूमते रहते हैं। अदन और स्वेज नहर होकर यूरोप में हम प्रायः दो ही सप्ताह में पहुँच सकते हैं। यूरोप के आगे अमेरिका का पूर्वी तट बम्बई से उतना ही दूर है, जितना कि अमेरिका का पश्चिमी तट कलकत्ते से पूर्व की ओर है। वायुमार्ग के लिए भारत की स्थिति और भी महत्त्व-पूर्ण है। वायुयानों

द्वारा संसार का चक्कर लगाने वाले प्रायः सभी यात्री कराची या कलकत्ता में पेट्रोल लेने के लिए उतरते हैं।

भारतवर्ष को सम्पूर्ण संसार का नमूना या एक छोटा संसार कहा जा सकता है। गरम से गरम और शीतल से शीतल जलवायु इस देश में प्राप्त होता है। हिमालय की बरफीली चोटियाँ और राजपूताने का गरम रेगिस्तान इसी देश में हैं। चिरापूँजी में प्रति वर्ष ४६० इंच से ऊपर वर्षा होती है और जेसलमेर में वर्ष भर में ४ इंच भी वर्षा नहीं होती। कहीं काश्मीर और बंगाल जैसी शस्य-श्यामला भूमि है, तो कहीं ऊबड़ खाबड़ पथरीले टीले और रेतीले रेगिस्तान।

इस महान् देश की प्रकृति में जितना अन्तर है, उतना ही भेद यहाँ के निवासियों में भी है। सीमाप्रान्त के गौरवर्ण हृष्ट-पुष्ट विशालकाय पठान और उड़ीसा के पतले-दुबले कृष्णवर्ण उड़िया में परस्पर बहुत अधिक भेद है। पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मद्रासी, महाराष्ट्र, बिहारी, राजस्थानी इन सब की शरीराकृति, बोली, लिपि, रुचि, स्वभाव, वेश-भूषा और भोजन आदि में बहुत विभिन्नता है। भारत में करीब २२५ भाषाएँ बोली जाती हैं, परन्तु फिर भी समस्त भारतवर्ष (पाकिस्तान और हिन्दुस्तान मिला कर) एक है। पेशावर के पठान, मारवाड़ के राजपूत, नदिया के भट्टाचार्य ब्राह्मण और त्रिचनापली के अब्राह्मण रेड्डी में परस्पर क्या समानता है, यह कहना कठिन है, परन्तु हम आगे चलकर देखेंगे कि ये सब एक ही देश के निवासी हैं, एक ही सूत्र में पिरोये हुए हैं।

संयुक्त भारतवर्ष पर प्रकृति माता की अपार दया है। पंजाब की पाँचों नदियाँ, समुद्र के समान विशाल सिंधु, भारत के विस्तृत प्रदेश को सींचने वाली १५०० मील लम्बी गंगा, यमुना, गंडक, चम्बल तथा पूर्वी भारत को सिंचित करने वाली ब्रह्मपुत्र के अलावा महानदी, कावेरी, गोदावरी, नर्मदा और ताप्ती आदि नदियाँ भी इस विशाल देश के विविध भागों को अमृत प्रदान करती हैं।

भारतवर्ष की खेती और खानें प्रति वर्ष अपार सम्पत्ति पैदा करती हैं। गेहूँ, चावल, जौ, बाजरा, चना, ज्वार, आदि अनाज, विविध दालें, शाक तरकारी, चाय और गन्ना भारत में बहुतायत से होता है। रुई, जूट, तेल के बीज, नील, अफीम, तम्बाखू, रेशम, लाख और रबड़, तथा तरह-तरह की कीमती लकड़ी आदि पदार्थ भी भारत में बहुत होते हैं। जूट पर तो भारत का एकाधिकार है।

भारतवर्ष खनिज दृष्टि से भी बहुत सम्पन्न है। सोना, लोहा, चाँदी, कोयला, नमक, मिट्टी का तेल, अबरक, संगमरमर, स्लेट, मकान बनाने के पत्थर, मेंगनीज, शोरा, फिटकरी, गन्धक आदि प्रायः सब प्रकार के खनिज भारत में पाये जाते हैं।

देश के दो भागों में विभाजन का परिणाम आर्थिक दृष्टि से दोनों भागों पर पड़ा है। भारत आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी राष्ट्र था। खण्डित होने से दोनों भाग कुछ कुछ परावलम्बी हो गये हैं। पाकिस्तान के पास कृषिप्रधान खण्ड चले गये हैं। पूर्वी पाकिस्तान में जूट की और पश्चिमी पाकिस्तान में सिंचाई की विशेष व्यवस्था के कारण गेहूँ की खेती अधिक होती है, इन दोनों के लिए हिन्द को पाकिस्तान का मुखापेक्षी होना पड़ेगा। लेकिन व्यावसायिक और खनिज दृष्टि से आज भी भारत अत्यन्त समृद्ध है। ३७२ सूती मिलें भारत में हैं। आज भी भारत संसार की आधी से अधिक चाय की आवश्यकता पूर्ण कर सकता है। गन्ने की अधिकांश खेती और चीनी की प्रायः सब मिलें आज भी भारत में विद्यमान हैं। कोयला, लोहा, पैट्रोलियम, ताँबा आदि खनिज पदार्थ भारत में होते हैं। सात मुख्य बंदरगाहों में से पाँच बन्दरगाह तथा बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद और मद्रास व कलकत्ते जैसे औद्योगिक शहर भारत में ही हैं।

मानव जाति के जो भाग किये गये हैं, उनमें से तीन मुख्य जातियाँ—आर्य, द्राविड़ और मंगोल भारत में रहते हैं। आजकल

विविध जातियों के मेल से कई संयुक्त जातियाँ भी बन गई हैं। दक्षिणी हिन्दुस्तान में प्रायः द्राविड़ लोग रहते हैं। इनका कद कुछ छोटा और रंग काला होता है। बरमा, आसाम आदि पूर्वी भागों में रहने वालों में मंगोल रुधिर की अधिकता है। उत्तर भारत में रहने वाले जाट और राजपूत और राजपूताना, काश्मीर और पंजाब के क्षत्रिय आर्य वंश के हैं। युक्तप्रान्त, राजपूताना और बिहार में आर्य-द्राविड़ों का संयुक्तरूप पाया जाता है।

भारतवर्ष में यों तो छोटे-छोटे मत मतान्तर सैकड़ों की संख्या में हैं, लेकिन मुख्य धर्म चार ही हैं। हिन्दू या वैदिक धर्म को मानने वाले २४ करोड़ हैं, इस्लाम को मानने वाले ४॥ करोड़ हैं। ईसाई और सिक्ख धर्म को मानने वाले भी क्रमशः ४० और ५० लाख के करीब हैं। पारसियों की संख्या करीब एक लाख है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दृष्टि से भारत की पश्चिमोत्तर सीमा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर में रूस हमेशा ब्रिटिश सरकार के लिये खतरे के रूप में रहा है। रूस ने अफ़ग़ानिस्तान की सीमा पर रेलवे का जाल बिछा रखा है और उसका सैनिक संगठन भी बहुत दृढ़ है।

करीब ५०० मील की सीमा से पश्चिमी पाकिस्तान के सीमाप्रांत, पश्चिमी पंजाब और सिंध के प्रान्त छूते हैं। जब तक पाकिस्तान व भारत में सौहार्द स्थापित न हो जावे, तब तक यह विशाल सीमा भी खतरे से खाली नहीं है। इसी तरह पश्चिमी बंगाल की पूर्वी सीमा पर पाकिस्तान आ गया है।

रूस व अफगानिस्तान के स्वतंत्र भारत से अच्छे सम्बन्ध हैं, किन्तु कब रूस व अफगानिस्तान को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में पड़ कर क्या नीति स्वीकार करनी पड़ेगी, यह कौन कह सकता है? अफगानिस्तान व पाकिस्तान का मध्यवर्ती वज़ीरिस्तान हमेशा अशान्ति का सूचक रहा है। आज भी काश्मीर पर आक्रमण करने वालों में

वज़ीरिस्तान के कबीलियों का मुख्य भाग रहा है।

भारत के उत्तर में चीन के सिनकियांग आदि प्रान्तों में भी रूस की हलचलें कम नहीं रहीं। तिब्बत में भी रूस अपना प्रभाव बढ़ाने को सदा उत्सुक रहा है।

यातायात के मार्ग

हमारा यह संसार और उसके विविध देश पहले कभी बहुत दूर दूर थे। आज विज्ञान की सहायता से यातायात के साधनों और मार्गों के विकास के कारण एक दूसरे के बहुत निकट आगये हैं। यूरोप के विभिन्न देश तो परस्पर रेलवे द्वारा मिले हुए हैं। कुछ और प्रमुख स्थल मार्ग निम्नलिखित हैं:—

ग्रेट साइबेरियन रेलवे—इस की लम्बाई ५००० मील है। यह मास्को से प्रारम्भ होकर प्रशान्तमहासागर के पश्चिमी तटवर्ती व्लाडी-वास्टक तक जा पहुँचती है। इसी बड़ी लाइन के एक स्टेशन चिता से शंघाई और हांगकांग तक भी रेलवे लाइनें हैं। मास्को का पेरिस से भी रेलवे द्वारा सम्बन्ध है। इस तरह एक यात्री फ्रांस की राजधानी पेरिस से रवाना होकर रेलवे मार्ग से सुदूरपूर्ववर्ती हांगकांग तक पहुँच सकता है।

कैनेडियन पैसिफिक रेलवे—यह ३००० मील लंबी रेलवे लाइन है। संसार में इतनी बड़ी और कोई रेल व्यक्तियों के हाथ में नहीं है। यह लाइन अतलांतक और प्रशान्तमहासागरों को परस्पर मिलाती है।

केप-काहिरा रेलवे—इस रेलवे योजना के पूर्ण हो जाने पर इसकी लम्बाई ६००० मील होगी। यह केपटाउन (एफ्रिका के दक्षिणी तट) से चलकर एफ्रिका महाद्वीप के विविध देशों को मिलाती हुई मिस्र की राजधानी काहिरा तक पहुँचेगी। इसके बहुत से भाग तैयार हो चुके हैं।

यूनियन पैसिफिक रेलवे और ओरियण्ट एक्सप्रैस रेलवे—ये भी बहुत प्रसिद्ध लम्बी लाइनें हैं। ओरियण्ट एक्सप्रैस के द्वारा लन्दन से इस्तम्बूल (टर्की) तक और वहाँ से बसरा तक जा सकते हैं। बम्बई या कराची से स्टीमर द्वारा बसरा जाकर वहाँ से बगदाद, मोसल, निसिबिन, अलेफो, इस्तम्बूल आदि स्थानों पर मोटर या रेल से होते हुए स्थल मार्ग से लन्दन पहुँचा जा सकता है।

जलमार्ग

संसार के विभिन्न दूरवर्ती भागों को मिलाने वाले कुछ प्रमुख जलमार्ग निम्नलिखित हैं:—

अतलांतक समुद्र—इसके द्वारा पश्चिमी यूरोप से उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट तक पहुँच सकते हैं। जहाज पर इस यात्रा में करीब छः दिन लगते हैं।

स्वेज़ नहर का मार्ग—यह मार्ग लन्दन से प्रारंभ होकर जिब-राल्टर में से होता भूमध्यसागर में प्रविष्ट होता है और माल्टा व पोर्ट सईद होकर स्वेज नहर में से गुजरते हुए रूमसागर में प्रवेश करता है। वहाँ से अदन, बम्बई, कोलम्बो, सिंगापुर, हांगकांग होकर जापान तक पहुँच जाता है। यह संसार के अत्यन्त प्रसिद्ध जलमार्गों में से है।

आशा अन्तरीप का मार्ग—यह मार्ग लन्दन से होता हुआ अफ्रिका के दक्षिणी तट को छूता हुआ भारत या आस्ट्रेलिया जाता है। स्वेज नहर के खुलने के पूर्व इसका महत्त्व बहुत अधिक था।

प्रशान्तमहासागर का मार्ग—अमेरिका, जापान, चीन और आस्ट्रेलिया को यह मार्ग परस्पर मिलाता है।

इनके अतिरिक्त दक्षिणी अमेरिका के विविध देशों को परस्पर तथा हिन्द पश्चिमी द्वीपसमूह और उत्तरी अमेरिका से मिलाने के भी हैं। रूस ने भी उत्तरी हिमसागर के मार्ग को खोला है। नहर के रा लेनिनग्राड से चल कर उत्तरी हिमसागर के मार्ग से पूर्वीय बन्दर-

गाह ब्लाडीवास्टक तक पहुँचा जा सकता है। यह मार्ग सिर्फ गर्मियों के कुछ महीने खुला रहता है।

वायुमार्ग

यों तो युद्ध से पूर्व ही हवाई यात्रा का प्रचार बढ़ गया था, लेकिन इस युद्ध में वायुयानों की कल्पनातीत उन्नति हुई है और समस्त संसार में विविध वायुमार्गों के द्वारा यात्रा का प्रचार बहुत बढ़ गया है। कुछ प्रसिद्ध वायुमार्ग निम्नलिखित हैं:—

इंगलैंड से आस्ट्रेलिया—इंगलैण्ड के प्रसिद्ध हवाई अड्डे क्रायडन से चलकर वायुयान पेरिस, लोसान, इस्तम्बूल, अंकारा, बगदाद, कराची, जोधपुर, दिल्ली, इलाहाबाद, कलकत्ता, रंगून, बैंगकौक और सिंगापुर आदि होते हुए आस्ट्रेलिया के डारविन अड्डे तक पहुँचते हैं।

ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, रूस, हालैण्ड आदि विविध देशों ने अपनी अपनी हवाई सर्विसें शुरू कर दी हैं; जो यात्रियों को बहुत थोड़े समय में सुदूरवर्ती स्थानों में पहुँचा देती हैं। इनके किराये भी कुछ अधिक नहीं हैं। भारत में कई कम्पनियों ने विविध प्रान्तों में दैनिक, अर्ध-साप्ताहिक या साप्ताहिक यात्राओं का प्रबन्ध किया है। काहिरा से एक हवाई मार्ग केपटाउन तक जाता है और एफ्रिका के उत्तरी और दक्खिनी सिरे को मिला देता है।

इस तरह हमारा यह विशाल विश्व विज्ञान की सहायता से एक दूसरे के अधिक निकट संपर्क में आ गया है। एक स्थान पर होने वाली घटना का तत्काल दूसरे कोने पर प्रभाव पड़ता है। इसी लिए आज यह और भी अधिक आवश्यक हो गया है कि हम अपनी इस दुनिया में चलने वाली राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विचारधाराओं से भली भाँति परिचित रहें।

अध्याय २

मनुष्य और समाज

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। सिर्फ यही नहीं कि वह समाज में रहना चाहता है, बल्कि वह समाज की सहायता के बिना छोटे से छोटा कार्य भी नहीं कर सकता। भोजन, पानी, कपड़ा आदि सभी जरूरतों के लिए उसे दूसरे व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक होता है। भोजन की तैयारी में किसान, किसान के हथियार बनाने वाले बढ़ई, लोहार, कुम्हार, पानी के लिए नहरें खोदने वाले मज़दूर, इंजिनीयर, गेहूँ साफ़ करने वाले, आटा पीसने वाले और रोटी बनाने वाले कितने ही व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए गाड़ी या ताँगे वाले, गाड़ी बनाने वाले, लोहार और बढ़ई, सड़क कूटने वाले, घोड़े की रास आदि बनाने वाले, मोची, रेल चलाने और बनाने वाले, स्टेशन के विभिन्न कर्मचारियों आदि सैकड़ों व्यक्तियों के सहयोग की अपेक्षा होती है। मनुष्य कितना भी प्रयत्न क्यों न करे समाज के सहयोग के बिना वह अपना साधारण निर्वाह भी नहीं कर सकता।

मनुष्य केवल अपने समकालीन या पड़ोसी समाज की सहायता पर ही आश्रित नहीं रहता। वह हज़ारों वर्ष पूर्व के समाज का भी ऋणी है। हमारे पूर्वजों ने धीरे धीरे सभ्यता का जो विकास किया है, उससे हम सब लाभ उठाते हैं। आज के जीवनोपयोगी वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य समाज के हज़ारों वर्ष के क्रमिक विकास के फल हैं। मानव-समाज सृष्टि के आरम्भ से ही इतना सुशिक्षित और साधन सम्पन्न नहीं था। उसने बहुत धैर्य के साथ अपनी शिक्षा

बढ़ाई है। एक एक करके अपने साधन बढ़ाये हैं और प्रत्येक साधन का धीरे धीरे विकास व परिष्कार किया है। शान्ति व धैर्य के साथ किये गये इन हजारों वर्ष के परिश्रमों का ही यह फल है कि मनुष्य आज इतनी सभ्यता का दावा करने में समर्थ हुआ है। हमारा रहन-सहन, उद्योगधंधे, कृषिसंबंधी तथा अन्य वैज्ञानिक आविष्कार ही नहीं, चिकित्सा, यातायात के साधन, तथा हमारी दार्शनिक, राज-नीतिक और आध्यात्मिक विचार-धाराएँ तक सैकड़ों हजारों वर्ष पूर्व के मनुष्य समाज के गम्भीर और निरन्तर प्रयत्नों की ऋणी हैं। वस्तुतः मनुष्य के लिए समाज अनिवार्य है।

मनुष्य की दो इच्छाएँ—दूसरे प्राणियों की तरह मनुष्य में भी दो इच्छाएँ प्रबल होती हैं—(१) अपने आप को जीवित रखना और इसी लिए अपना पालन पोषण करना, और (२) अपने परिवार या सन्तान को बढ़ाना तथा उसकी रक्षा करना। इन दोनों कार्यों के लिए, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, मनुष्य को दूसरों के साथ मिल जुल कर समाज में रहने की आवश्यकता होती है।

समाज का विकास—समाज का संगठन वस्तुतः मनुष्य की इन्हीं आवश्यकताओं के कारण हुआ है। ऐतिहासिकों के कथनानुसार सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य बिलकुल अकेला और स्वतंत्र था। उसके लिए कोई बंधन न था। वह जंगल में रहता और शिकार करके अपना पेट भरता था। मनुष्य के पारस्परिक संबंध का तथा विवाह, खेती, पशु-पालन और राज्य का उसे ज्ञान न था। अनुभव की वृद्धि और कठि-नाइयों के लगातार अनुभव के कारण वह शनैः-शनैः एक दूसरे के सहयोग की आवश्यकता महसूस करता गया। समाज-रचना के क्रम-विकास का यह इतिहास बहुत रोचक है। समाज का वर्तमान रूप बहुत सी सीढ़ियों को पार करने के बाद आया है। समाज-रचना का मुख्य उद्देश्य सुख की प्राप्ति था। अकेले रह कर सुख पाना कठिन था, इस कारण उसने दूसरे व्यक्ति को साथ लिया। परिवार से उसे

सुख तो मिला, लेकिन वह पूरी तौर से निश्चिन्त नहीं हो सका। बलवान आक्रमणकारियों के हमले से बचने के लिए उसने दूसरे मनुष्यों के साथ मिलकर रहना शुरू किया। इससे बाद विभिन्न परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं से प्रेरित हो कर संगठन के दायरे और अधिक दृढ़ होते गये। लोगों के आपसी झगड़ों के निपटारे तथा अन्य समस्याओं को सुलझाने के लिए समाज में कुछ कायदे कानून बनाये जाने लगे। इस तरह समाज के सब से बड़े संगठन—राज्य—का जन्म हुआ।

समाज के विविध रूप—इस प्रकार जितने विविध संगठन बने वे आज भी विद्यमान हैं। परिवार, सभा, कंपनी, म्यूनिसिपल कमेटी, सरकार आदि अनेक रूपों में हम मनुष्यों का संगठन पाते हैं। कोई एक संस्था, जिस में दो या अधिक व्यक्ति मिलते हैं, समाज का एक रूप है। जब स्त्री और पुरुष विवाह रूप में बँधते हैं या एक मुहल्ले, ग्राम, शहर या देश के रहने वाले मिल कर सभा, पंचायत, म्यूनिसिपल कमेटी या सरकार कायम करते हैं, या कुछ थोड़े अथवा बहुत आदमी किसी उद्देश्य से कोई संगठन—धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक—करते हैं, तब वे समाज के विभिन्न रूप बनाते हैं।

समाज समूह का नाम नहीं है

साधारणतः समाज का अर्थ दीखता है दो या अधिक मनुष्यों का समूह या समुदाय। लेकिन समाज और समुदाय या समूह में वस्तुतः अन्तर है। ईंटों का ढेर और ईंटों के बने हुए मकान में अन्तर है। ईंटों के ढेर में प्रत्येक ईंट की अपनी अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है। जब कि मकान में किसी ईंट की अपनी कोई सत्ता नहीं है, प्रत्येक ईंट मकान का आवश्यक अंग बन गई है। ईंटों के ढेर में से किसी ईंट को उठाकर फेंक दीजिए, इसका दूसरी ईंटों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा;

लेकिन मकान में से एक दो ईंटों को निकाल देने से सारी दीवार कमज़ोर हो जाती है। लड़ाई के मैदान में पड़े हुए सिर पैर हाथ आदि के ढेर में भी संयोग है, मनुष्य के शरीर में भी सिर पैर आदि अंगों का संयोग है। यह दोनों संयोग एक ही प्रकार के नहीं हैं। स्टोर में पुर्ज़ों का ढेर रखा रहता है, वहाँ से आप पुर्ज़े लेते रहते हैं, लेकिन मशीन में एक पुर्ज़ा बिगड़ जाय तो सारी मशीन बंद हो जाती है। मानव समाज को भी हम मशीन से उपमा दे सकते हैं। उसका संगठन केवल मनुष्यों का ऐसा समूह या ढेर नहीं है जिसमें एक का दूसरे से कोई संबंध न हो। मानव समाज एक ऐसा संगठन है जिसमें प्रत्येक मनुष्य उसका एक अंग है, जो अपने अच्छे या बुरे चरित्र या कार्यों से समाज पर प्रभाव डालता है। ईंटों के ढेर या स्टोर में रखे गये पुर्ज़ों में केवल सान्निध्य—समीपता—है, जब कि मकान या मशीन में किसी नियम के अनुसार किसी प्रयोजन को सामने रख कर सामग्री मिलाई गई है। मनुष्य समाज भी पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक त[illegible] धार्मिक संबंधों द्वारा परस्पर संगठित है। समाज का कोई अंग—किसान, मज़दूर या शासक वर्ग—अपना काम ठीक ठीक तरह से न करे तो उसका प्रभाव समस्त मानव समाज पर पड़ता है।

अध्याय ३

पारिवारिक संगठन

परिवार

मानव समाज का शायद सब से प्रथम और सब से छोटा रूप हम परिवार में पाते हैं। *प्राणिशास्त्र की दृष्टि से परिवार समाज की स्वाभाविक इकाई है। यह सामाजिक या नागरिक शिक्षा का पहला स्कूल* है। यह सब से छोटा समूह है, जहाँ मनुष्य अपने से भिन्न कुछ

व्यक्तियों के लिए काम करता है। अपने सुख की अपेक्षा वह अपने बाल बच्चों, अपनी पत्नी आदि, के सुख को महत्त्व देता है।

परिवार में पति-पत्नी, बाल-बच्चे, तथा छोटे भाई-बहन होते हैं। इसमें पुरुष और स्त्री को यह अवसर मिलता है कि एक दूसरे के लिए त्याग करना और कष्ट उठाना सीखें। पारिवारिक जीवन का आधार होता है परस्पर सहयोग, कर्तव्य-पालन, एक दूसरे का यथा-योग्य सम्मान, परस्पर स्नेह और विश्वास। पति पत्नी पर विश्वास करता है और पत्नी पति पर। बच्चे माता पिता को अपना हित-चिन्तक मान कर उनकी आज्ञा का पालन करते हैं और माता पिता उनके हित के लिए तरह तरह के कष्ट उठाते हैं।

सम्मिलित परिवार

भारतवर्ष में हिन्दुओं में प्राचीन समय से सम्मिलित परिवार की प्रथा चली आती है। इसमें एक व्यक्ति की सब संतानें सपरिवार एक साथ रहती हैं। सभी पुत्र पृथक् पृथक् कमाते हैं, लेकिन उन सब की आमदनी एक स्थान पर उनके वृद्ध पिता के पास एकत्र हो जाती है। वह घर का प्रधान होता है। वह सम्मिलित परिवार के सभी सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार उस राशि को व्यय करता है। कोई कम कमाता है या अधिक, कोई बिलकुल कमाने में असमर्थ है, इसकी चिन्ता किये बिना सभी की जरूरतें पूरी की जाती हैं। एक भाई ज्यादा कमाने मात्र से ज्यादा पाने का अधिकारी नहीं हो जाता और न कोई कुछ न कमाने से भूखा रहता है। सम्मिलित परिवार के आदर्श के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार परिवार की आर्थिक वृद्धि में पूरा भाग लेना चाहिये। परिवार के प्रधान व्यक्ति की आज्ञा सब को माननी चाहिये। समस्त परिवार की सम्पत्ति पर उसी का अधिकार होता है। आज भी गाँवों में सम्मिलित परिवार की प्रथा विद्यमान है, लेकिन अब यह शनैः शनैः

उठती जा रही है। इसके दो मुख्य कारण हैं। पहला तो यह कि सभी परिस्थितियों में जीवन अधिक संघर्षमय हो गया है और लोगों को अपनी आजीविका कमाने के लिए अपने गाँव छोड़ छोड़ कर विविध स्थानों में जाना पड़ता है। दूसरा कारण यह है कि लोगों में अब भाई या भाभी के लिए पहले सा स्नेह नहीं रहा। हमारे दृष्टिकोण में अब स्वार्थ की भावना ज्यादा आ गई है। सास-बहू और देवरानी-जिठानी ही परस्पर नहीं लड़तीं, बच्चे भी अब माता पिता से स्वतंत्रता की मांग और उनकी अवहेलना करने लगे हैं। फिर सम्मिलित परिवार में व्यक्तित्व का विकास भी नहीं हो पाता और न अपनी उन्नति करने का विशेष आकर्षण रहता है। इन सब कारणों से सम्मिलित पारिवारिक जीवन की समाप्ति होती जाती है और यह असंभव नहीं है कि निकट भविष्य में सम्मिलित परिवार इतिहास की एक वस्तु रह जाय।

बिरादरी और जाति

परिवार से ऊँचे उठकर समाज-संगठन के जो और रूप हमारे सामने आते हैं, वे है *बिरादरी या कबीला* और *जाति*। अनेक परिवारों के संगठन को कुल, कबीला या बिरादरी। कहा जाता है। इस संगठन के सब आदमियों में रहन-सहन, खानपान और रीति-रिवाज की समानता होती है। वे आपस में अपने-पन का अनुभव करते हैं और खानपान और विवाह-शादी आदि का संबंध करते हैं। उनमें जो बड़ा बूढ़ा होता है, वह बिरादरी का मुखिया या चौधरी माना जाता है। सामाजिक कर्तव्यों के पालन पर बिरादरी का कठोर नियंत्रण रहता है। बिरादरी का डंडा या बिरादरी का फैसला आज भी डर की वस्तु है। लेकिन नई शिक्षा और नई परिस्थितियों में यह बिरादरी का संगठन भी सम्मिलित परिवार की भाँति कमज़ोर पड़ता जा रहा है। बिरादरी का नियंत्रण भी कभी कभी उचित सीमा पार कर

जाता है, और वह बिरादरी के सदस्यों के लाभ की बजाय उनके मार्ग में बाधक हो जाता है।

जाति

जब कई बिरादरियाँ बहुत समय तक पास पास रहने से इतनी हिल मिल जाती हैं कि उनकी भाषा, रहन सहन, सभ्यता, धर्म और परंपरा में समानता आ जाती है, तो उन सब को एक ही जाति समझा जाता है। जाति या नस्ल का मूल आधार वर्ण व्यवस्था है। भारत में जन्म और कर्म दोनों से ही जाति का संगठन होता है। प्रारंभ में जातियाँ भी बहुत कम थीं, लेकिन अब एक एक जाति के अन्तर्गत सैकड़ों छोटी बड़ी शाखाएँ मिलती हैं। एक ही जाति के आदमी मूल निवास और व्यवसाय की भिन्नता के कारण अपने आप को अलग अलग जाति समझने लगते हैं। विभिन्न जाति वालों में अपनी अपनी जाति का पक्षपात तथा संकुचितता के बहुत बढ़ जाने के कारण अब इसके विरुद्ध भी आवाज उठने लगी है, यद्यपि अभी तक भारत में जात-पात का बन्धन बहुत अधिक शक्तिशाली है।

अध्याय ४

गाँव से विश्वसंघ की ओर

मनुष्य का राजनीतिक घर—गाँव

पिछले अध्याय में हमने जिन संगठनों का जिक्र किया है, वे सामाजिक हैं। उनका आधार या तो जन्म है अथवा पेशा और वर्ण। भौगोलिक स्थान के आधार पर जो संगठन किये जाते हैं, उन्हें राजनीतिक संगठन कहते हैं। *सामाजिक संगठन की इकाई यदि परिवार है, तो राजनीतिक संगठन की इकाई गाँव या शहर होते हैं।* परिवार के साथ मनुष्य का रक्त का संबंध है। *नागरिक के रूप में प्रत्येक मनुष्य ग्राम*

या शहर का एक सदस्य है। नागरिकता का यह बंधन ही मनुष्य को सभ्य के पद पर बिठाता है। मनुष्य के कार्य का क्षेत्र ग्राम या नगर है। वह पृथ्वी के इस छोटे से भाग से, जहाँ वह पैदा हुआ है या जहाँ वह बरसों रह कर उसे अपना घर मानने लगा है, प्रेम करने लगता है। इस गाँव या राजनीतिक घर को बनाने वाली सभी सड़कों, खेतों, चरागाहों और पहाड़ों या नदियों से भी उसे स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। वह इस गाँव या नगर के प्रबंध में भी दिलचस्पी लेने लगता है, क्योंकि उसके सारे जीवन और जीवन से सम्बन्ध रखने वाली छोटी छोटी बातों पर स्थानीय प्रबन्ध का प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः गाँव या शहर वह सब से छोटी इकाई है, जो नागरिक के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव डालती है। ग्राम या नगर का शासन-प्रबंध स्थानीय समितियाँ करती हैं, जिन्हें पंचायत, जिला बोर्ड और म्यूनिसिपल कमेटी आदि कहा जाता है।

ज़िला, प्रान्त और देश

गाँव राजनीतिक संगठन की इकाई है। ५० से १०० गाँव मिल कर एक थाने के रूप में संगठित होते हैं। तीन या चार थानों की एक तहसील और तीन चार तहसीलों को मिलाकर एक जिला बनाया जाता है। ज्यों ज्यों हम अपने राजनीतिक क्षेत्र को विस्तृत करते जाते हैं, त्यों त्यों शासन और संगठन का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है। कई जिले मिलकर एक प्रान्त बनता है और कई प्रान्त मिल कर एक देश बनता है। यही हमारा देश या राष्ट्र कहाता है।

देश हमारी सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। इस देश की उन्नति और स्वतंत्रता का प्रभाव समस्त प्रान्तों, नगरों और जिलों पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इसी के लिए कहा जाता है कि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी अधिक बड़ी होती हैं। इसी की स्वतंत्रता के लिए हजारों लाखों सैनिक गद्गद् होकर प्राणों की बलि देने को तैयार हो जाते हैं।

विश्वसंघ की ओर

राष्ट्र या देश हमारा सब से महत्त्वपूर्ण संगठन अवश्य है, लेकिन आदर्शवादी स्वप्नद्रष्टा कहते हैं कि यही मानव-संगठन का अन्तिम आदर्श नहीं है। इससे भी विशाल एक संगठन है, जिस में राष्ट्र और संसार की सब जातियाँ मिल कर आपस में भाई चारे का संबंध स्थापित करेंगी। गत महायुद्ध के बाद राष्ट्रसंघ के नाम से ऐसा एक प्रयत्न किया गया था। उसका आदर्श यह था कि सभी राष्ट्र परस्पर मित्र और बंधु बन कर रहें। यदि परस्पर स्वार्थ-संघर्ष का कोई प्रश्न भी उपस्थित हो तो उसका निपटारा आपसी बात-चीत से किया जाय न कि युद्ध के द्वारा। यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। इस महायुद्ध के बाद फिर उससे भी अधिक बड़े पैमाने पर और बड़ी तैयारियों के साथ विश्वशान्ति का प्रयत्न किया गया है और संयुक्त-राष्ट्रीय परिषद् (यूनाइटेड नेशन्स और्गनाइज़ेशन) स्थापित की गई है। निकट भविष्य का इतिहास यह बतायेगा कि इस प्रयत्न में मनुष्य सफल होता है या नहीं। लेकिन यह निश्चित है कि मनुष्य धीरे धीरे इसी ओर जा अवश्य रहा है। अनेक बड़े बड़े राष्ट्रों का सङ्गठन भी वस्तुतः विभिन्न देशों के पारस्परिक सहयोग और विश्वास के आधार पर हुआ है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका पहले ४८ विभिन्न रियासतों में विभक्त था। वे सब रियासतें स्वतंत्र थीं। लेकिन समय और परिस्थितियों ने उन्हें परस्पर मिल कर एक सङ्घराष्ट्र बनने के लिए प्रेरित किया। रूस और स्विट्ज़रलैंड आदि देशों में भी सङ्घराज्य कायम हैं। सब का इतिहास या कारण-परंपरा अलग अलग होने पर भी इन सब में मूल बात एक है—कुछ राज्यों का एकीकरण। ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न उपनिवेश आज अपनी इच्छा से कामनवैल्थ के सूत्र में बँधे हुए हैं। लेकिन आदर्शवादी स्वप्नद्रष्टा अब यह स्वप्न देखने लगे हैं कि संसार के विभिन्न राष्ट्रों की एक बड़ी शक्तिशाली सरकार हो। उन्हें यह विश्वास है कि एक दिन ऐसा अवश्य आवेगा, जब

सब राष्ट्र एक ही प्रेमसूत्र में सङ्गठित हो जायँगे; जैसे आज अमेरिका या स्विट्ज़रलैंड के राष्ट्र परस्पर सङ्गठित हैं। उस दिन आपसी सन्देह और अविश्वास दूर हो जायँगे; यद्यपि आज के सन्देह और द्वेषमय वातावरण में निकट भविष्य में इसकी सम्भावना बहुत कम दीखती है। वे स्वप्नवादी राष्ट्रसङ्घ की असफलता से निराश नहीं हैं और न संयुक्त राष्ट्रीय परिषद् के प्रयत्न के असफल हो जाने पर ही निराश होंगे। उनका कहना है मनुष्य जिस तरह हज़ारों वर्षों में अपने सङ्गठन की परिधि बढ़ाते बढ़ाते आज के राष्ट्र-सङ्गठन तक पहुँचा है, उसी तरह वह इससे भी अगली सीढ़ी तक पहुँचेगा अवश्य; भले ही संगठन की इस अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचने में कुछ देर लगे।

अन्य संगठन

आर्थिक और व्यापारिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक तथा धार्मिक और सांप्रादायिक संस्थाएँ भी छोटे बड़े क्षेत्रों में समाज के संगठन के उदाहरण हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ ऐसी ही एक संस्था है। हिन्दू महासभा, मुस्लिमलीग, आर्यसमाज, सनातन-धर्म सभा, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आदि भी ऐसी ही संस्थाएँ हैं।

अध्याय ५

नागरिक के कर्तव्य

हम पहले अध्याय में बता चुके हैं कि मनुष्य ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति और सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए समाज और संगठन के महत्त्व को अनुभव किया। लेकिन ऐसा करते हुए उसे कुछ नियमों की मर्यादा का पालन करना आवश्यक हो गया। वह जिस तरह एक के बाद एक बड़े संगठन का सदस्य बनता गया, उसके कर्तव्य भी अधिक व्यापक और विस्तृत होते गये।

जब तक वह अकेला था, उसे केवल अपनी चिन्ता थी, अपनी आवश्यकता की पूर्ति करनी थी। परिवार के बंधन में उसके लिए अपने सिवाय अपनी माता, पत्नी और संतान के प्रति भी कुछ कर्तव्यों का पालन आवश्यक हो गया। इसी तरह ग्राम, नगर या देश के प्रति भी उसके कुछ कर्तव्य हैं।

संगठन का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि सब मिल कर उन्नति कर सकें। जो काम एक व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता, वही काम दस व्यक्ति मिल कर सम्पन्न कर लेते हैं। यदि समाज उन्नत बलवान और समृद्ध होगा, तो उसका सदस्य भी उन्नति और समृद्धि प्राप्त कर सकता है। यदि किसी ग्राम की पञ्चायत या किसी देश की सरकार कमज़ोर हो जाती है, तब उस ग्राम या देश की हालत भी अच्छी नहीं रहती। इसलिए यह आवश्वक है कि प्रत्येक नागरिक अपने छोटे और बड़े संगठनों को दृढ़ और उन्नत करने में पूरी सहायता दे। जब तक नागरिक अपने संगठन को ऊँचा व बलवान बनाने में सहायक नहीं होते, तब तक कोई समाज उन्नति नहीं कर सकता। *अपने संगठन को दृढ़ करने के लिए मनुष्य को जो कार्य करने होते हैं, वे ही नागरिक के कर्त्तव्य कहाते हैं।* प्रत्येक व्यक्ति समाज में इसलिए सम्मिलित होता है कि उसकी अपनी उन्नति हो। बस, वह जो अपने लिए चाहता है, वही दूसरे को भी देना उसका कर्तव्य है। मैं चाहता हूँ कि मेरी गली साफ़ हो, मेरे घर के आगे कूड़ा न पड़े, तो मेरा भी कर्तव्य है कि मैं भी दूसरे के घर के आगे कूड़ा न फेकूँ। मैं खुद जीना चाहता हूँ, दूसरे को जीने देना भी मेरा कर्तव्य है। हर एक व्यक्ति को यह अनुभव करना चाहिए कि यदि मैं समाज के लिए नहीं हूँ, तो समाज भी तो सिर्फ मेरे लिए नहीं है। *समाज के हित की, दूसरे के हित की, रक्षा का नाम ही कर्त्तव्य है।* यदि प्रत्येक नागरिक अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगे, तो आज संसार की अशान्ति चाहे वह छोटे क्षेत्र में हो या बड़े क्षेत्र में,

चाहे एक ग्राम में हो, देश में हो या अन्तर्राष्ट्रीय संसार में, दूर हो सकती है। आज की अशान्ति का मूल कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हित और सुख की तलाश तो करता है, लेकिन अपने पड़ोसी, अपने समाज, अपने, ग्राम, शहर, प्रान्त या देश और दूसरे राष्ट्रों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थों की उपेक्षा करता है।

मुख्य कर्तव्य

यों तो नागरिक के सैकड़ों कर्तव्य हैं लेकिन उनके मुख्य भेद निम्नलिखित रूप से किये जा सकते हैं:—

१—अपने प्रति,

२—अपने परिवार के प्रति,

३—अपने नगर या गाँव के प्रति,

४—अपने देश के प्रति, और

५—समस्त संसार के प्रति।

अपने प्रति कर्तव्य

प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपनी शारीरिक, मानसिक, समाजिक और भौतिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहे। जब तक समाज के अंग ही पुष्ट न होंगे, समाज कैसे पुष्ट हो सकता है? कमजोर ईंटों से मजबूत मकान नहीं बन सकता। प्रत्येक मनुष्य को अपने शरीर की उन्नति के लिए स्वास्थ्य-प्रद नियमों का पालन करना जरूरी है। शुद्ध स्वास्थ्यप्रद भोजन, शुद्ध वायु, व्यायाम, सदाचार व संयममय जीवन तथा उच्च विचार और शिक्षा से शरीर स्वस्थ रहता है, मन और मस्तिष्क उन्नत होते हैं। शारीरिक उन्नति के साथ मानसिक और बौद्धिक उन्नति भी आवश्यक है। स्वस्थ, सदाचारी और प्रतिभाशाली अध्यवसायी नागरिक ही राष्ट्र को उन्नत कर सकते हैं।

अपने परिवार के प्रति

परिवार समाज या संगठन की सबसे छोटी इकाई है। परिवार ही सामाजिक और नागरिक शिक्षा का पहला स्कूल है। यहीं मनुष्य यह सीखता है कि उसे केवल अपनी नहीं, अपने माता-पिता, भाई-बहन की भी चिन्ता करनी है। वह उनके लिए अपने सुखों का बलिदान करता है। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह परिवार के दूसरे सदस्यों की रुचि, इच्छा और आवश्यकताओं को अपनी निजी इच्छा या जरूरत से ज्यादा महत्त्व दे। बालकों को तुच्छ समझकर उन्हें डराने धमकाने या पीटने के बजाय उनसे प्रेम का व्यवहार करना चाहिए। बच्चों को चाहिए कि वे भी अपने गुरुजनों का आदर करें। पति पत्नी और भाई भी एक दूसरे के प्रति सदिच्छा, सहानुभूति और प्रेम का परिचय दें।

अपने ग्राम या नगर के प्रति

ग्राम या नगर हमारा राजनीतिक घर है। परिवार के सदस्यों के प्रति हमारे जैसे कतव्य हैं, उसी तरह ग्राम या नगरवासियों के प्रति भी हमारे विशेष कर्तव्य हैं। हर एक आदमी जो हमारे गाँव (या नगर) में रहता है; हमारा नागरिक भाई है। परिवार के सदस्यों की भाँति नागरिकों के प्रति भी सहृदयता, सहानुभूति और सहयोग की भावना हममें रहनी चाहिए। यही हमारी सभ्यता की कसौटी है। ग्राम और ग्रामवासियों की जरूरतों को पूरा करने में हमें पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

ग्रामों की दुर्दशा—आजकल ग्रामों की दशा बहुत खराब है; वहाँ न शिक्षा है, न स्वास्थ्य और न सफाई की कोई व्यवस्था। आर्थिक स्थिति भी वहाँ की दयनीय है। लोग पौष्टिक और पर्याप्त भोजन नहीं पाते। वे पैदा जरूर करते हैं पर उनके पास रहता कुछ नहीं। युद्ध के कारण महँगाई के दिन कुछ अपवाद रूप हैं पर साधारणतः

ग्रामवासियों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब होती है। अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियों के कारण उनकी अवस्था और भी शोचनीय होती है। नागरिक शिक्षा का तो उन्हें ज्ञान ही नहीं होता। नालियों और गलियों में टट्टी पेशाब करना और कूड़ा करकट फेंकना तो वहाँ आम बात है। सच्चे नागरिक का कर्तव्य है कि वह ग्राम की सभी प्रकार की स्थितियों में सुधार का पूर्ण प्रयत्न करे। शिक्षा के प्रसार में जहाँ वह प्रयत्नशील हो, वहाँ सफाई और स्वास्थ्य के नियमों का स्वयं भी पालन करे और ग्रामवासियों को भी वैसा करने के लिए प्रेरित करे। खेतों के टुकड़े इतने छोटे छोटे हो गये हैं कि आर्थिक दृष्टि से वे हानिकारक हैं। ग्रामवालों में मुकदमेबाजी की बीमारी भी बढ़ रही है। इन दोनों को भी रोकने की जरूरत है।

पंचायत---लेकिन इन सब कामों को अच्छी तरह कर सकने के लिए *पहली ज़रूरत यह है कि ग्राम के प्रमुख संगठन पंचायत को मज़बूत किया जाय*। पंचायत ही ग्राम की सब आवश्यकताओं की पूर्ति का यथोचित प्रबंध करती है। *पंचायत सरकारी संगठन की पहली इकाई है*। हर एक नागरिक को यह अनुभव करना चाहिए कि वह अपने गाँव या शहर की प्रबंध-कमेटी का एक अनिवार्य अंग है। उसे अपने गाँव या शहर की हरएक बात में पूरी दिलचस्पी लेनी चाहिए। *स्वराज्य की प्रथम सीढ़ी पंचायत ही है, जिसके द्वारा सब ग्रामवासी अपने गाँव का प्रबंध करते हैं और अपनी सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं*। गाँव या शहर की हर एक घटना या समस्या पर हर एक ग्रामवासी या नागरिक की सम्मति लेना सम्भव नहीं होता, इसलिए एक पंचायत के सुपुर्द यह कार्य कर दिया जाता है। यह पंचायत ग्रामवासियों के द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों से बनती है।

पंचायत का चुनाव—लेकिन केवल पंचायत के जिम्मे सब काम

सौंप कर निश्चिन्त नहीं हुआ जा सकता। प्रत्येक नागरिक का इस सम्बन्ध में प्रथम कर्तव्य यह है कि प्रतिनिधियों के चुनाव में खास दिलचस्पी ले। चुनाव के समय नागरिकों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) पंचायत का प्रतिनिधि योग्य और व्यवहार-कुशल हो: ग्राम या नगर की सब सम्बद्ध समस्याओं से परिचित हो।

(२) उसमें स्वार्थ की अपेक्षा दूसरों का भला करने या जनसेवा का भाव ज्यादा हो।

(३) उसमें किसी विशेष जाति या सम्प्रदाय के प्रति पक्षपात या विद्वेष न हो।

जितने उम्मीदवार खड़े हों, इन गुणों की दृष्टि से उनमें से योग्यतम व्यक्ति को वोट देना चाहिए। यदि पंचायत के सदस्य योग्य, ईमानदार, समझदार और निस्वार्थ व्यक्ति होंगे, तो गाँव का प्रबंध भी सन्तोषजनक होगा। शहर की सफ़ाई, रोशनी, चिकित्सा और पढ़ाई का प्रबन्ध ठीक रहेगा। पञ्चायत के सदस्य आपसी झगड़ों और मुकदमों का फ़ैसला भी करते हैं। यदि वे निष्पक्ष और योग्य तथा सबके विश्वासपात्र होंगे, तब न्याय भी ठीक ठीक करेंगे।

गाँवों में जो काम पञ्चायत करती है, शहर में वही काम म्यूनिसिपल कमेटियाँ करती हैं। पञ्चायतों की तरह म्यूनिसिपिल कमेटियों के चुनाव में भी मतदाताओं को खूब सावधानी तथा सतर्कता से काम लेना चाहिए। रिश्तेदारी, बिरादरी या दोस्ती के लिहाज तथा रिश्वत के लालच में किसी अयोग्य उम्मीदवार को वोट देना बहुत बुरा है। अयोग्य और स्वार्थी प्रतिनिधियों के हाथों में अपने गाँव या शहर का प्रबन्ध सौंपकर हम सदा दुःख उठाएँगे। तब कोई इन्तजाम ठीक न होगा।

प्रबंध में रुचि—पञ्चायतों या स्थानीय शासन संस्थाओं में योग्य प्रतिनिधि भेजने मात्र से नागरिकों का कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता।

उन्हें इन संस्थाओं के कामों में पूरी दिलचस्पी भी लेनी चाहिए। उन्हें यह देखते रहना चाहिए कि पञ्चायतें ठीक काम कर रही हैं या नहीं, उनसे टैक्स के रूप में लिये गये पैसे का इस्तेमाल ठीक होता है या नहीं और उनकी जरूरतें ठीक तरह से पूरी की जा रही हैं या नहीं।

सहयोग—पञ्चायती शासन प्रबन्ध में इतनी सतर्कता के अतिरिक्त नागरिकों का यह भी प्रमुख कर्तव्य है कि वे इन सब संस्थाओं के काम में उन्हें पूरा सहयोग दें। पञ्चायत सफ़ाई का कितना प्रबन्ध क्यों न करें, जब तक जनता सफ़ाई के नियमों का स्वयं पालन न करे, स्वयं नालियों या गलियों में कूड़ा करकट फैंकने से बाज न आवे, तब तक गाँव की सफ़ाई नहीं हो सकती। पञ्चायत द्वारा बनाये गये नियमों का पालन भी ईमानदारी से करना हर एक का कर्तव्य है। नागरिकों को यह समझना चाहिए कि पञ्चायत या म्यूनिसिपल कमेटी के रूप में वे खुद अपना शासन स्वयं करते हैं। नागरिकता का आदर्श ही प्रत्येक समय एक दूसरे की सहायता करता है। समय-कुसमय पड़ोसियों की सहायता करना नागरिक का कर्तव्य है।

प्राचीन यूनान में प्रत्येक नागरिक निम्नलिखित प्रतिज्ञा करता था :—

"यह हमारा नगर है। हम अपनी कायरता या बेईमानी के किसी काम से इसका अपमान न करेंगे। न हम अपने दुखी साथियों का कार्य-क्षेत्र में साथ छोड़ेंगे। हम इस नगर की पवित्र वस्तुओं तथा आदर्शों की रक्षा के लिए लड़ेंगे, चाहे हम अकेले हों या बहुतों के साथ हों। हम नगर के नियमों का आदर से पालन करेंगे और उनकी अवहेलना करने वाले बंधुओं में भी ऐसे ही भाव भरने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। हम नागरिक कर्तव्यों की सार्वजनिक भावना को उत्तेजित करेंगे। इस प्रकार इन सब उपायों से हम इस नगर को जैसा हमें यह सौंपा गया है, उसकी अपेक्षा आने वाली पीढ़ी के लिए कम नहीं, अधिक महान् उन्नत और सुन्दर बनावेंगे।"

देश के प्रति कर्तव्य

ग्राम या नगर के प्रति नागरिक के जो कर्तव्य हैं, वही विशाल और व्यापक रूप में देश के प्रति हैं। देश की उन्नति में हमारी उन्नति है। यदि देश ही पराधीन, दुर्बल और दरिद्र है, तो हमारी उन्नति कभी नहीं हो सकती। देश केवल भूमि का नाम नहीं है। समस्त देशवासियों से मिलकर देश बनता है। इसलिए जहाँ नागरिक को बाहरी आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा के लिए अपना सिर तक कटाने को तैयार रहना चाहिए, वहाँ समाज के भिन्न भिन्न वर्गों—स्त्रियों, बालकों और दलितों के अधिकारों की रक्षा भी करनी चाहिए और विधर्मियों का आदर तथा मजदूर किसान आदि श्रेणियों के अधिकारों व सुखों का भी खयाल करना चाहिये।

केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव में योग्यतम प्रतिनिधि भेजने चाहिएँ। देश की सरकार को स्वार्थी अविश्वासपात्र अयोग्य हाथों में सौंपने से समस्त देश रसातल को जा सकता है। अपने अधिकारों के संबंध में हमें सतर्क रहना चाहिए और सरकार को आलोचनाओं द्वारा सदा यह स्मरण कराते रहना चाहिए कि प्रजा के साथ अन्याय करना उसके हक में किसी तरह अच्छा न होगा। नियंत्रण के साथ साथ सरकार को प्रत्येक कार्य में सहयोग देना भी नागरिक का कर्तव्य है। सरकार नागरिकों से चुने गये प्रतिनिधियों की संस्था है। इसका अर्थ यह हुआ कि नागरिक स्वयं अपने ऊपर शासन करते हैं और सरकार जो कानून बनाती है, जो टैक्स लगाती है, वह हमारे प्रतिनिधियों की अर्थात् हमारी सम्मति से लगाती है, उन कानूनों और आज्ञाओं का पालन करना हमारा कर्तव्य है।

समस्त देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक तथा साहित्यिक उन्नति में सहयोग देना, राष्ट्र की स्वाधीनता को अपने

प्राणों से बढ़कर मानना और उसके लिए हँसते हँसते बलि हो जाना, तथा अपने देश और उसकी भाषा, रहन-सहन, संस्कृति और सभ्यता से प्रेम करना आदि भी प्रत्येक नागरिक के कर्तव्य हैं।

इंगलैंड का हर एक नागरिक यह समझता है कि वह अपने देश की उन्नति और विकास में पूर्ण सहयोग दे सकता है और उस देश के भविष्य-निर्माण में उसका भी बड़ा हाथ है। इसी विश्वास और दृढ़ धारणा के कारण वह अपने राष्ट्र के नीति-निर्धारण तथा उन्नति में पूरा भाग लेता है। अभी तक भारतीयों में यह भावना उत्पन्न नहीं हुई। उनमें आत्मविश्वास की भावना का अभी पूर्ण विकास नहीं हुआ, यद्यपि वे स्वाधीन हो चुके हैं। इंगलैंड या दूसरे सभ्य देशों ने सदियों में जिस राजनीतिक और आर्थिक चेतना को विकसित किया है वह भारत ने भी उनसे प्राप्त कर ली है। आज भारत व्यावसायिक दृष्टि से बहुत ऊँचा हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों व संगठनों में भी उसने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया है।

संसार के प्रति कर्तव्य

देश-प्रेम या राष्ट्रीयता की भी एक सीमा होती है। अपने देश की उन्नति का अर्थ यह कभी नहीं होना चाहिये कि हम किसी दूसरे देश या जाति को हानि पहुँचाकर, उसके स्वत्वों का अपहरण करके और उसका शोषण करके अपने देश की उन्नति करें। *हम जिस तरह एक ग्राम या नगर संस्था के सदस्य होते हुए देश के भी नागरिक हैं, उसी तरह एक राष्ट्र के नागरिक होते हुए विश्व के नागरिक भी हैं।* आज अनेक देशों में राष्ट्रीयता ने जो संकुचित रूप धारण कर लिया है, वह मानवजाति के हित में बहुत बड़ा बाधक है। *आज की राष्ट्रीयता का रूप है दूसरे राष्ट्र से घृणा।* हम अपने देश को सबसे श्रेष्ठ मान कर दूसरे देश को पराधीन करने में संकोच नहीं करते। यही उग्र राष्ट्रवाद राज्यों और देशों में युद्ध कराता है, साहित्य और

कला की उन्नति की अपेक्षा विध्वंस और संहार के साधनों की प्रगति करता है। एक ओर मनुष्य संधि और शान्ति की चर्चा करता है, लेकिन दूसरी ओर उग्र राष्ट्रीयता हमें युद्ध करने के लिए प्रेरित करती है। यही कारण है कि संसार में शान्ति स्थापित नहीं हो पाती। श्री एस० वेलबर्ट के कथनानुसार १५०० ई० पू० से १८६० ई० तक लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष में आठ हजार से ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय संधियाँ हुई हैं। ये सब हमेशा के लिए की गई थीं। परन्तु इन संधियों में से हर एक का औसत जीवन काल सिर्फ दो वर्ष रहा है। संसार के बड़े बड़े युद्ध राष्ट्रीयता के विकृत रूप के परिणाम हैं। इन्हीं बातों को देख कर रूस के प्रसिद्ध विचारक श्री टालस्टाय ने कहा था—"देशभक्ति का अब अर्थ रह गया है कि जिस राज्य में हमारा जन्म हुआ है, उसके खास खास अधिकार-प्राप्त वर्गों के हित के लिए दूसरे देशों को लूटा जाय। लेकिन वह समय जल्दी आ रहा है, जब कि किसी को देशभक्त कहना उसका बहुत बड़ा अपमान समझा जायगा।"

हम जो अधिकार अपने राष्ट्र के लिए चाहते हैं, वही अधिकार दूसरे राष्ट्रों के लिए चाहें, यह प्रत्येक नागरिक या मनुष्य का कर्तव्य है। विश्वसंघ या अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व के लिए निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों को आधार मानना चाहिए—

(१) *स्वतंत्रता*, (२) *समानता* और (३) *विश्वबंधुत्व*। प्रत्येक राष्ट्र स्वतन्त्र हो, उसे समान अधिकार मिलें और सब राष्ट्रों में परस्पर बंधुभाव हो। कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र का शोषण न करे और न उसे गुलाम बनावे। अपने राष्ट्र के हित की तरह प्रत्येक राष्ट्र के हित की रक्षा नागरिक का कर्तव्य है।

परिवार, ग्राम, देश और विश्व के हितों में कहीं कहीं विरोध दीखता है, लेकिन उदार और व्यापक दृष्टिकोण से सोचने पर इन सब में समन्वय कायम किया जा सकता है। ये परस्पर विरोधी नहीं हैं।

फिर भी जहाँ एक के हित से दूसरे के हित को क्षति पहुँचती हो, वहाँ बड़े क्षेत्र को तरजीह दी जानी चाहिए।

अध्याय ६

नागरिक के अधिकार

पिछले अध्याय में नागरिक के विविध कर्तव्यों का विवेचन किया गया है। लेकिन प्रश्न यह पैदा होता है कि वह यह कर्तव्य क्यों करे ? उसे इनसे क्या लाभ होगा ? परिवार, ग्राम, नगर या देश उसकी उन्नति में कहाँ तक सहायक होंगे ? नागरिक यदि समाज के लिये उसके नियमों का पालन करता है, तो इसके बदले में समाज उसे क्या देता है ? उसके किन अधिकारों की रक्षा का आश्वासन देता है ? इस बात की क्या गारंटी है कि मनुष्य समाज में जिस उद्देश्य से सम्मिलित हुआ है, वह उसे मिल कर रहेगा ? समाज का अंग बनने के कारण वह कहीं पराधीन तो नहीं हो गया ? नागरिक के कर्तव्यों के साथ क्या समाज के कुछ कर्तव्य नहीं है ? वास्तव में ये प्रश्न बहुत गंभीर हैं और समय समय पर विविध देशों में उठते रहे हैं। मनुष्य को अपने सुखों, हितों और अधिकारों की रक्षा के लिये समाज के विविध संगठनों और विशेष कर राज्य से बहुत बार संघर्ष भी करना पड़ा है। जिन अधिकारों के लिए मनुष्य ने पिछली सदियों में निरंतर संघर्ष किया है, वे अधिकार संक्षेप से निम्नलिखित हैं—

१—शारीरिक स्वतन्त्रता,

२—सामाजिक स्वतन्त्रता,

३—राजनीतिक स्वतन्त्रता,

४—समानता।

इन पर थोड़े बहुत पृथक् पृथक् विवेचन की आवश्यकता है। हम यहाँ प्रत्येक पर संक्षेप से विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

शारीरिक स्वतंत्रता

मनुष्य को जीवित रहने का पूरा अधिकार है। राज्य का कर्तव्य है कि वह नागरिकों के जीवन की रक्षा करे। न उसे कोई दुष्ट व्यक्ति नष्ट कर सके और न राज्य या समाज ही उसे कोई कष्ट दे सके। मानव-जीवन भगवान की अनुपम देन है, वह ऐसी चीज़ नहीं कि कोई उसे यों ही छीन ले। प्रत्येक राज्य में पुलिस इसीलिए रखी जाती है कि चोर डाकुओं या हत्यारों से नागरिकों के जीवन की रक्षा की जाय।

शारीरिक स्वतन्त्रता का अर्थ केवल प्राणों की रक्षा नहीं है। स्वास्थ्य की रक्षा भी शारीरिक उन्नति के लिए आवश्यक है। दुष्ट आक्रमणकारी के साथ साथ दुर्भिक्ष तथा भीषण रोगों से भी बचाना राज्य या उसके अंग का कर्तव्य है। सम्पत्ति की रक्षा भी इसी के अन्तर्गत है। एक नागरिक जो कुछ कमाता है, उसे कोई चोर डाकू छीन न सके, इसकी गारंटी उसे मिलनी चाहिये। प्रत्येक नागरिक को यह भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह अपनी आजीविका के लिए कोई मार्ग चुन सके। वह जहाँ विवाह करना चाहे, करे। बहुत दफा राज्य स्वयं नागरिक को गिरफ़्तार करके जेल में डाल देता है अथवा उसे और कोई दंड दे देता है और इसके लिए वह किसी अदालत के निर्णय की प्रतीक्षा नहीं करता। यह भी मनुष्य की शारीरिक स्वतन्त्रता पर एक बड़ी भारी चोट है। इसीलिए सभी उन्नत राष्ट्रों के विधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा रहती है कि विना अदालत द्वारा दोष सिद्ध हुए राज्य किसी की शारीरिक स्वतन्त्रता का हरण नहीं करेगा।

१५ जून १२१५ ई० को ब्रिटेन के प्रसिद्ध मैगनाकार्टा में यह

घोषणा की गई थी कि किसी स्वतन्त्र व्यक्ति को बिना अदालती कार्रवाई के न कैद किया जायगा और न दंड दिया जायगा। घोषणा को हुए आठ सौ वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन आज भी ब्रिटिश नागरिक की वह स्वतन्त्रता अक्षुण्ण है। अमेरिका में भी इसी महान् सिद्धान्त को श्री जस्टिस मुलर ने इन शब्दों में दोहराया था—"इस देश में कोई भी व्यक्ति इतना ऊँचा नहीं है, जो कानून से ऊपर हो। कोई भी अफसर इस देश के कानून की अवहेलना नहीं कर सकता। उच्चतम से लेकर निम्नतम सरकारी कर्मचारी क़ानून की उपज हैं और वे उसे (क़ानून को) मानने के लिए विवश हैं। क़ानून के द्वारा ही हमारी स्वतन्त्रता स्थापित की गई है।" अमरीका के विधान में लिखा गया है कि "कोई आदमी बिना अदालती फैसले के जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायगा और न किसी की सम्पत्ति बिना उचित मुआविज़ा दिये सार्वजनिक कार्य के लिए ली जायगी।"

सामाजिक स्वतंत्रता

राज्य या समाज का यह भी कर्तव्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपना धर्म मानने, अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को अपनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहे। प्रत्येक मनुष्य को अपने विचारों और विश्वासों के प्रचार की आज़ादी होनी चाहिये। अपना धार्मिक और सांस्कृतिक संगठन करने का भी अधिकार मनुष्य को होना चाहिये। वह अपनी भावनाओं के अनुसार पूजा-पाठ तथा अन्य धार्मिक विधियों का पालन कर सके। इस प्रकार की व्यवस्था करते हुए राज्य को इस बात का ध्यान अवश्य ही रखना चाहिये कि किसी नागरिक को सिर्फ वहीं तक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, जहाँ तक कि उसके उपयोग से किसी दूसरे नागरिक को तकलीफ न पहुँचे। वास्तव में स्वाधीनता है ही वहाँ तक, जहाँ तक उसका दुरुपयोग न हो सके।

राजनीतिक स्वतंत्रता

देश के शासन में भाग लेने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार होना चाहिए। राज्य का संगठन सभी मनुष्यों के हित के लिए है, इस लिए उसके संचालन में और उसके नीति-निर्धारण में सभी का हिस्सा होना चाहिए। जाति, धर्म, लिंग या संपत्ति आदि किसी भी आधार पर किसी भी मनुष्य को शासन के संचालन में भाग लेने से वंचित नहीं करना चाहिए। इटली के विश्वविख्यात विचारक मेज़िनी ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए यहाँ तक लिखा है कि—"जब तक तुम्हारे देश-बंधुओं में से एक भी ऐसा है, जिसका राष्ट्रीय जीवन की उन्नति के लिए अपना चुना हुआ प्रतिनिधि नहीं है, तब तक तुम्हारा देश सब का और सब के लिए नहीं है।" अमेरिकन राजनीतिज्ञ कहते हैं कि जब सरकार हम पर टैक्स लगाती है, तब उसके काम करने में हमारी सम्मति अवश्य ली जानी चाहिए। बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं देने चाहिएँ। वस्तुतः नियम या कानून केवल सरकारी आज्ञा नहीं हैं। वे तो नागरिकों की इच्छापूर्ति के साधन हैं। सब नागरिक खुद या अपने प्रतिनिधियों के द्वारा मिलकर इस बात का फ़ैसला करते हैं कि उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं की किस तरह ज्यादा से ज्यादा पूर्ति की जा सकती है। इच्छा-पूर्ति के ये साधन ही कानून हैं। दूसरे शब्दों में कानून आज्ञा नहीं है, प्रार्थना है, जो नागरिक परस्पर मिल कर एक दूसरे से करते हैं।

प्रत्येक नागरिक के अपना शासन खुद चलाने के अधिकार का यह परिणाम अवश्यंभावी है कि किसी देश पर कोई दूसरा राष्ट्र शासन नहीं कर सकता। जब प्रत्येक देश के नागरिक अपने देश का स्वयं शासन करने में पूर्ण स्वतंत्र हों तब कोई राष्ट्र पराधीन हो ही नहीं सकता।

समानता

प्रत्येक नागरिक राष्ट्र की दृष्टि में समान है। स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-शूद्र, शिक्षित और अशिक्षित, हिन्दू या मुसलमान सभी को एक से अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ। सार्वजनिक स्थानोंपर जाने और शिक्षणालयों में पढ़ने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को है। सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह सब को उन्नति करने का समान अवसर दे। किसी वर्ग विशेष या समुदाय को कोई विशेष अधिकार न हो। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्रत्येक नागरिक को राज्य की ओर से निःशुल्क प्राप्त होनी चाहिए। सरकार को यह भी देखना चाहिए कि मिल-मालिक या ज़मींदार मज़दूरों और किसानों को अनुचित रूप से न दबा सकें। बालिगमात्र को वोट देने का अधिकार होना चाहिए। सिर्फ़ पागल, अपराधी या दिवालिये को वोट देने का अधिकार नहीं है।

ऐसे मौक़े आ सकते हैं, जब कि अन्न या वस्त्र की दुर्लभता के कारण दरिद्र जनता को बहुत कष्ट उठाना पड़े। तब सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह राशन की ऐसी व्यवस्था करे, जिससे गरीब लोग वस्त्र और अन्न से वंचित न रह जावें।

विभिन्न राष्ट्रों के वर्त्तमान नेताओं ने नागरिकों के अधिकारों की बहुत चर्चा की है। इस युद्ध के बाद विश्व की नयी व्यवस्था के संबंध में जो विचार हुए हैं, वे सब भी ऊपर लिखे सिद्धान्तों की व्याख्या मात्र हैं। जुलाई १९४२ में अमेरिका के प्रैज़िडैंट रूज़वेल्ट और ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० चर्चिल ने अटलांटिक चार्टर नाम से प्रसिद्ध घोषणा में कहा था—प्रत्येक राष्ट्र के नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे ही अपने देश के शासन-विधान के स्वरूप का फैसला करें। किसी देश में किसी प्रकार का प्रादेशिक परिवर्तन उस देश के निवासियों की सम्मति के बिना न हो। छोटे-बड़े, विजयी-

पराजित, प्रत्येक राष्ट्र को आर्थिक समृद्धि के लिए आवश्यक व्यापार और कच्चे माल की प्राप्ति में समान भाग मिले। श्रमजीवियों के रहन-सहन को उन्नत करने, आर्थिक प्रगति और सामाजिक सुरक्षा का प्रयत्न किया जाय।

प्रैज़िडैंट रूज़वेल्ट ने विश्व-व्यवस्था के लिए निम्नलिखित चार स्वतंत्राओं पर बल दिया है :—

१—*भाषण स्वातंत्र्य*—संसार का प्रत्येक नागरिक अपने विचारों का भाषणों और लेखों द्वारा प्रचार करने में स्वतंत्र हो।

२—*धार्मिक स्वातंत्र्य*—संसार का प्रत्येक नागरिक अपने विश्वास के अनुसार धार्मिक पूजा के अनुष्ठान करने में स्वतंत्र हो।

३—*अभाव से आज़ादी*—प्रत्येक देश के नागरिक भोजन, वस्त्र और निवास की दृष्टि से निश्चिन्त हों।

४—*भय से स्वतंत्रता*—सब प्रकार के विदेशी या विजातीय आक्रमण से निश्चिन्त होकर स्वाधीनता के भोग के लिए समस्त देशों में शस्त्रास्त्रों की इतनी कमी कर दी जाय कि कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण न कर सके।

भारतीय विधान-परिषद् ने विधान में नागरिकों के लिए, जिन अधिकारों व सिद्धान्तों की घोषणा की है, उनमें से कुछ मुख्य निम्न-लिखित हैं—

(क) प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त जीविका के साधनों की प्राप्ति।

(ख) उत्पत्ति के साधनों का इस तरह वितरण कि उससे समाज के अधिकतम कल्याण का सम्पादन हो।

(ग) किसी बालक व बालिका को किशोरावस्था में श्रम कार्य्य में न लगाया जाय।

(घ) प्रत्येक नागरिक को कार्य प्राप्त करने का अधिकार। बेकारी, बीमारी, बुढ़ापा तथा असमर्थता की अवस्था में राष्ट्र द्वारा उसकी सहायता।

(ङ) प्रत्येक नागरिक के लिए निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा।

(च) दलित जातियों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति की उन्नति। अस्पृश्यता को गैर कानूनी घोषित किया जायेगा। कोई सार्वजनिक स्थान अस्पृश्य जातियों के लिए निषिद्ध न हो।

(छ) धर्म, जाति, वर्ण, लिंग के आधार पर नागरिकों में कोई भी भेदभाव नहीं किया जायगा। सब नागरिक बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक सार्वजनिक स्थान में प्रवेश कर सकेंगे।

(ज) सब नागरिकों के लिए सरकारी नौकरियों का दरवाजा खुला रहेगा। कोई व्यक्ति, धर्म, जाति, वर्ण या लिंग के आधार पर किसी नौकरी के लिए आयोग्य नहीं रहेगा।

(झ) विचार प्रकाशन और भाषण, शान्तिपूर्वक निःशस्त्र संगठन और अपनी इच्छानुसार आजीविका के लिए कोई वृत्ति अपनाने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार होगा।

(ञ) प्रत्येक नागरिक भारत के किसी भी भाग में आ जा तथा बस सकेगा।

(ट) किसी व्यक्ति को न्यायालय द्वारा अपराधी घोषित किये बिना दण्डित न किया जा सकेगा।

(ठ) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति के रक्षण का अधिकार होगा।

विभिन्न राष्ट्रों में इस युद्ध के बाद पुनर्निर्माण की जो योजनाएँ बन रही हैं, उन सब का मूल आधार यह है कि जनता के प्रत्येक भाग—अमीर या गरीब, स्त्री या पुरुष—को उन्नति का समान अवसर मिले और प्रत्येक नागरिक की जीवनोपयोगी आवश्यकताएँ पूर्ण हों।

यही सब अधिकार हैं, जिनको प्राप्त करने के लिए नागरिक का भी यह कर्तव्य है कि वह समाज के सब नियमों का स्वयं पालन करे।

अध्याय ७

स्थानीय स्वायत्त शासन

प्रत्येक देश का शासन-विधान पृथक् पृथक् होता है, उसकी अपनी विशेषताएँ होती है, लेकिन एक विशेषता सभी उन्नत शासन-पद्धतियों में पाई जाती, और वह यह है कि स्थानीय शासन में जनता को असीम अधिकार दिये जाते हैं। और यह उचित भी है। प्रत्येक स्थान, प्रत्येक नगर या ग्राम की अपनी अपनी समस्याएँ होती हैं। उन समस्याओं में उस स्थान के निवासियों के अतिरिक्त किसी को रुचि नहीं होती। जालंधर में प्याऊ लगाने अथवा प्राइमरी स्कूल खोलने न खोलने के बारे में शिमला या अमृतसर के नागरिकों को क्या दिलचस्पी हो सकती है! इसी तरह एक ग्राम में नालियाँ बनवाने तथा कुएँ लगवाने के लिए दूसरे गाँव के निवासी क्यों पैसा देने लगे? एक बात यह भी है कि हम अपने गाँव की समस्याओं के बारे में जितनी जानकारी और सहानुभूति रखते हैं, उतनी दूसरे स्थान के बारे में नहीं रखते और रख भी नहीं सकते। इसीलिए विभिन्न ग्रामों और नगरों के स्थानीय शासन की जिम्मेवारी उन्हीं ग्रामों या नगरों की जनता के सुपुर्द की जाती है। इसी को स्थानीय स्वायत्त शासन कहते हैं। दूसरे देशों में इसकी प्रथा बहुत व्यापक है। वहाँ स्थानीय संस्थाओं के अधिकार बहुत व्यापक और विशाल हैं।

इन स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का बड़ा भारी लाभ यह है कि जनता इन्हीं संस्थाओं के द्वारा स्वराज्य और अपनी जिम्मेवारी सीखती है। स्वायत्त शासन ही अधिकारों के उपयोग और कर्तव्यों के पालन की प्रथम पाठशाला है। जब नागरिक अपने गाँव या नगर का

स्वयं प्रबंध करना सीख लेंगे, तब उससे बड़े जिले, प्रान्त और उसके बाद देश का शासन करने की योग्यता और कार्य-क्षमता भी उनमें आ जायगी।

स्थानीय शासन का कार्यक्षेत्र

जिन समस्याओं का प्रबन्ध साधारणतः स्थानीय शासन संस्थाएँ करती हैं, वे ये हैं —

शुद्ध पेय जल की प्राप्ति, अपने क्षेत्र के यातायात के मार्गों—सड़कों, पुलों—का प्रबंध, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफ़ाई, चिकित्सा, छिड़काव, रोशनी आदि का प्रबंध आदि आदि। ये सब बातें नागरिकों के जीवन से सबसे अधिक संबंध रखती हैं। इन सब को उन्हीं के सुपुर्द करने से जहाँ इन सब की व्यवस्था स्थानीय जनता की इच्छानुसार हो सकती है, वहाँ प्रान्त या देश के शासक वर्ग का उत्तरदायित्व और कार्यभार भी बहुत कुछ हलका हो जाता है।

भारत में स्थानीय शासन

भारत में स्थानीय शासन दो भागों में बाँटा गया है—देहाती और शहरी। इनकी भी नीचे लिखी अलग अलग श्रेणियाँ हैं।

देहातों में—गाँवों में पंचायत, तहसील या सब-डिविज़न में लोकलबोर्ड और जिले में ज़िलाबोर्ड। बंबई में सिर्फ जिलाबोर्ड और ताल्लुका बोर्ड हैं। किसी प्रांत में जिला बोर्ड को जिला कौंसिल भी कहते हैं।

शहरों में—छोटे कस्बों में नोटिफ़ाइड एरिया कमेटी, बड़े शहरों में म्यूनिसिपल कमेटी और बहुत बड़े शहरों में कारपोरेशन।

पंचायतें—भारतवर्ष में पंचायतों की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। ब्रिटिश शासन के भारत में आने पर शनैः शनैः पंचायतों की प्रथा लुप्तप्राय हो गई। अब फिर पंचायतें स्थापित करने की ओर जनता

का ध्यान गया है और पंजाब में नये कानून द्वारा फिर से ग्रामों में पंचायतें बनाई जाने लगी हैं। प्रत्येक गाँव में तीन से पाँच तक पंच चुने जा सकते हैं। चौकीदार रखने के लिये चन्दा देने वाले सभी ग्रामवासी वोट दे सकते हैं। १५) रु० वार्षिक लगान देने वाले पंच चुने जा सकते हैं। इन्ही पंचों में से एक 'सरपंच' चुना जाता है।

पंचायतों के मुख्य काम ये हैं—गाँव की सफ़ाई, गलियों और नालियों का निर्माण, पीने के पानी की व्यवस्था, श्मशान और कब्रिस्तान की भूमि नियत करना, पहरेदारी आदि का इन्तज़ाम। छोटे मोटे आपसी मुक़दमों का निपटारा भी पंचायतें कर देती हैं इससे लोगों को छोटे छोटे झगड़ों के लिए शहरों में जाने और अदालती खर्चों की असुविधाएँ नहीं होने पातीं। अपना खर्च चलाने के लिए इन पंचायतों को छोटे मोटे कर भी लगाने का अधिकार है। कहीं कहीं इन पंचायतों को जिला बोर्डों से आर्थिक सहायता भी मिलती है।

युक्तप्रान्त में पंचायतों के नये कानून द्वारा उन्हें बहुत व्यापक अधिकार दिये गये हैं। विधान परिषद ने भी पंचायतों के संगठन व अधिकारों का विधान में उल्लेख किया है।

लोकल बोर्ड—तहसील के छोटे छोटे गाँवों में जहाँ पंचायतें नहीं नहीं होतीं, सफ़ाई रोशनी आदि का काम लोकल बोर्ड के सुपुर्द किया जाता है। लेकिन वस्तुतः ज़िला बोर्ड व पंचायत के बीच एक शृंखला मात्र होने के कारण ये बोर्ड महत्त्व प्राप्त नहीं कर सके।

ज़िला बोर्ड—ज़िला के सब गाँवों का प्रबंध ज़िला बोर्ड के ज़िम्मे होता है। इसमें सारे ज़िले के प्रतिनिधि होते हैं। पहले इसके सदस्य सरकार की ओर से नियुक्त किये जाते थे, लेकिन अब अधिकांश सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं और कुछ सदस्य डिप्टी कमिश्नर की ओर से नियुक्त किये जाते हैं। ज़िला बोर्ड के पास नीचे लिखे काम होते हैं:—

सड़कों और छोटे छोटे रास्तों का बनाना व मरम्मत; स्कूल और चिकित्सालय की स्थापना और प्रबंध; सड़कों पर वृक्ष लगवाना; खेती के लिए बाँध, पुल, नहरें, कुएँ और तालाब बनवाना; विवाह, जन्म और मृत्यु के रजिस्टर रखना; दस्तकारी तथा खेती को प्रोत्साहन देना; अकाल के समय लोगों को सहायता देना; प्लेग, चेचक आदि महामारियों के निवारण का प्रबंध; यात्रियों के लिए सरायें बनवाना तथा पशुओं की नसल में सुधार इत्यादि।

इन सब कामों के लिए ज़िलाबोर्ड स्थानीय कर, विद्यार्थियों से फ़ीस, पेड़ों की आय, पुलों आदि के ठेके और हैसियत टैक्स आदि ले सकता है। सरकार से भी इन बोर्डों को सहायता मिलती है।

नोटिफ़ाइड़ एरिया कमेटी—छोटे शहरों की सफ़ाई, स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रबंध नोटिफ़ाइड एरिया कमेटियाँ करती हैं। बाज़ारों, गली-कूचों, नालियों और कुओं का निर्माण व मरम्मत और श्मशान व कबरिस्तान की व्यवस्था भी इन्हीं के काम हैं। इन कमेटियों को चुंगी लेने और घरों पर टैक्स लगाने का अधिकार प्राप्त है। सरकार की ओर से भी कुछ सहायता मिलती है। इनके अधिकांश सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं और कुछ सरकारी अफ़सर तथा गैर सरकारी सदस्य सरकार की ओर से नियुक्त किये जाते हैं।

म्युनिसिपल कमेटियाँ—कलकत्ता, मद्रास और बम्बई को छोड़ कर भारत के सभी बड़े नगरों में म्यूनिसिपल कमेटियाँ हैं। इनके कर्तव्य निम्नलिखित होते हैं। शहर की सफ़ाई, पानी के लिए वाटर वर्क्स, रोशनी, हस्पताल खोलना, महामारियों को रोकना, गंदे पानी के निकास के लिए नालियाँ बनाना, स्कूल, पुस्तकालय और वाचनालय खोलना, श्मशान व कबरिस्तान की देख रेख, आग बुझाने का प्रबंध, खतरनाक इमारतों को गिराना, मकानों के नक्शे पास करना लोगों के मनोरंजन के लिए बाग बनवाना, खेल कूद का प्रबंध, सड़कें बनवाना, खाद्य पदार्थों की शुद्धता का निरीक्षण, यदि संभव हो तो

स्कूल में गरीब बच्चों को दूध देना, आदि आदि।

इन सब कामों के लिए हजारों लाखों रुपयों की जरूरत होती है। खर्च चलाने के लिए म्यूनिसिपल कमेटी को कई प्रकार के टैक्स लगाने के अधिकार होते हैं, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

शहर में आने वाले सामान पर चुंगी, हाउस टैक्स, पानी के नलों पर महसूल, ताँगों व मोटरों पर टैक्स, पेड़ों की आमदनी आदि। अनेक बड़े कामों के लिए म्यूनिसिपल कमेटियाँ कुछ कर्ज भी लेती हैं। सरकार से भी किसी खास खास काम के लिए सहायता मिलती है।

कारपोरेशन—कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में कारपोरेशन हैं। इनके अधिकार म्यूनिसिपल कमेटियों से बहुत अधिक हैं। इन पर सरकारी नियंत्रण भी कुछ कम होता है। कारपोरेशन के प्रधान को मेयर कहते हैं। यह पद अत्यन्त सम्मान का होता है।

छावनियों की स्थानीय समस्याओं का प्रबंध करने के लिए छावनीबोर्ड बनाये जाते हैं। इनके प्रधान सदा सरकारी अफसर होते हैं और इनका नियंत्रण और निरीक्षण सेना विभाग के हाथ में रहता है।

स्थानीय स्वायत्त शासन की उपर्युक्त संस्थाओं का अभी भारत में विकास कम हुआ है। विदेशों में तो शान्तिस्थापन का कार्य भी इन स्थानीय संस्थाओं द्वारा होता है। इसके लिए उनकी अपनी पुलिस भी होती है। भारत में स्थानीय संस्थाओं का निरीक्षण प्रान्तीय सरकारें करती हैं। एक मंत्री इन संस्थाओं के निरीक्षण के लिए रखा जाता है। यदि कभी किसी कमेटी के कार्य में गड़बड़ पाई जाय तो सरकार को अधिकार है कि उसे भंग कर दे और वह नये चुनाव तक सारा शासन प्रबंध अपने हाथ में ले ले। स्थानीय शासन से ही नागरिकों को सब से अधिक काम पड़ता है, इस लिए उसके प्रबन्ध और कार्यपद्धति में सब नागरिकों को अधिक से अधिक दिलचस्पी लेनी चाहिये।

अध्याय ८

राजतंत्र से समाजवाद की ओर

विभिन्न शासन-पद्धतियों पर एक दृष्टि

पिछले अध्यायों में हमने नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य की विवेचना करते हुए स्थानीय शासन की पद्धति पर विचार किया है। वहाँ हमने यह भी देखा है कि स्थानीय शासन स्वराज्य और प्रजातंत्र की पहली सीढ़ी है। जिस प्रकार किसी ग्राम या नगर का शासन स्थानीय जनता करती है, उसी प्रकार किसी प्रान्त या देश का शासन भी उस प्रान्त या देश की जनता खुद करती है। इसे ही *प्रजातंत्र* या *लोकतंत्र* कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'रिपब्लिक' कहते हैं।

राजतंत्र

प्रजातंत्र आज के युग में सर्वोत्तम शासन पद्धति स्वीकार की जाती है। आज से कुछ समय पहले ऐसा न था। प्राचीन भारत और प्राचीन ग्रीस में भले ही प्रजातंत्र के उदाहरण पाये जाते हों, लेकिन उसके बाद प्रजातंत्र का सिद्धान्त प्रचलन में रहा। साधारणतः सब देशों में राजतंत्र या एकतंत्र की पद्धति ही प्रचलित रही। राजतंत्र के मूल में यह भावना काम करती है कि देश राजा की संपत्ति है। वही देश की समस्त संपत्ति और प्रजा का स्वामी है। उसे कानून बनाने और प्रजा पर शासन करने का अधिकार है। मध्यकाल में तो यहाँ तक कहा जाने लगा था कि उसका यह अधिकार परमात्मा द्वारा प्रदत्त है। इंगलैंड के राजा जेम्स ने सिंहासन पर बैठने से पूर्व लिखा था कि राजा ईश्वरीय अधिकार से राज्य करते हैं। प्रजा को उसके विरुद्ध चूँ करने का भी अधिकार नहीं। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि

और प्रतिबिंब है, इसलिए उसके विरुद्ध विद्रोह करना पाप है। १९ वीं सदी के प्रारंभ तक भी यह सिद्धान्त जोरों पर था। सन् १८१५ में रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया के सम्राटों ने अपने एक संधिपत्र में ईश्वरीय अधिकार की घोषणा करते हुए लिखा था कि "हमें ईश्वर ने लोगों पर शासन करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में भेजा है।" भारतवर्ष तथा अन्य एशियायी देशों में भी यही परंपरा काम कर रही थी। इस पद्धति में राजा कोई भी कानून बना सकता है, किसी दूसरे राज्य के साथ संधि या युद्ध कर सकता है, अपना देश किसी दूसरे के हवाले कर सकता है।

राजतंत्र के विरुद्ध क्रान्ति

लेकिन समय बदला। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि या देवता मानने की भावना भी बदली। १८ वीं सदी के तीसरे दशक में फ्रांस में एक महान् क्रान्ति हुई। राजा को खतम कर दिया गया। रूसो प्रभृति क्रान्ति के नेताओं ने जनता को यह संदेश दिया कि राज्य राजा और प्रजा के बीच में एक समझौते का परिणाम मात्र है। प्रजा राष्ट्र की स्वामिनी है। उसने सिर्फ राज्य का प्रबन्ध राजा या सरकार को सौंपा है और वह भी इस शर्त पर कि हम तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे, तुम्हें सरकार का खर्च चलाने के लिए टैक्स भी देंगे और इसके बदले में तुम सब दुःखों और आन्तरिक या बाह्य सब शत्रुओं से हमारी रक्षा करना। इंगलैंड में १७ वीं सदी में राजा के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हो चुका था और चार्ल्स का वध कर के वहाँ प्रजातंत्र की स्थापना कर दी गई थी। यद्यपि यह प्रजातंत्र कुछ ही वर्ष रहा, तथापि इसने इंगलैंड में यह भावना उत्पन्न कर दी थी कि राजा प्रजा की अनुमति के बिना न टैक्स लगा सकता है और न कोई कानून बना सकता है। इंगलैंड में यह भावना बहुत पहले पनप चुकी थी, लेकिन यूरोप के दूसरे देशों में फ्रांस की क्रान्ति के बाद

फैली। इस क्रान्ति से कुछ वर्ष पूर्व अमेरिका ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर के स्वाधीनता की घोषणा कर चुका था और उसने इस सिद्धान्त का जोरों से प्रतिपादन किया था कि *राज्य में बिना प्रतिनिधित्व के हम टैक्स नहीं देंगे।* प्रजातंत्र या लोकतंत्र के मूल में यही भावना है। समय की गति के साथ साथ विभिन्न राष्ट्रों में राजतंत्र का स्थान प्रजातंत्र लेता गया। १९१४ के महायुद्ध के बाद जर्मनी का क़ैसर ही समाप्त नहीं हुआ, अन्य भी अनेक देशों के राजा अपनी गद्दी से च्युत कर दिये गये।

पिछले युद्ध से कुछ पूर्व १९१२ ई० में नव चीन के निर्माता डा० सनयात सेन ने क्रान्ति कर के वहाँ प्रजातंत्र की स्थापना की थी। १९१७ में रूस के जार निकोलस की हत्या की गई और वहाँ प्रजातंत्र कायम हो गया। जर्मनी के कैसर विलियम द्वितीय १९१७ में जब भाग गए तब वहाँ भी प्रजातंत्र की स्थापना हो गई। १९२२ ई० में टर्की के सुलतान कमालपाशा से परास्त हुए और वहाँ प्रजातंत्र की स्थापना हुई। १९३१ ई० में स्पेन के राजा अलफैंसो को गद्दी छोड़ कर भागना पड़ा। इस युद्ध का रहे सहे राजतंत्री देशों पर बुरा प्रभाव पड़ा है। यूगोस्लेविया और ग्रीस में भी राजतंत्र समाप्त हो चुका है। इटली में जनता ने राजतंत्र के विरुद्ध बहुमत दे कर प्रजातंत्र की स्थापना का निश्चय कर लिया है। जिन देशों में आज तक प्रजातंत्र कायम नहीं हुआ है वहाँ भी निकट भविष्य में राजाओं की समाप्ति की भावना की जाने लगी है।

अधिनायकवाद या डिक्टेटरशिप

वस्तुतः आज राजतंत्र का युग नहीं रहा। प्रथम महायुद्ध के बाद कुछ राष्ट्रों में अधिनायकवाद (डिक्टेटरशिप) या एकतंत्र की लहर चली थी। इटली, जर्मनी, जापान, स्पेन तथा रूस में किसी न किसी रूप से अधिनायकवाद प्रचलित था। इटली में मुसोलिनी ने १९२२

ई० में और जर्मनी में हिटलर ने १९३३ ई० में समस्त शासन-सूत्र जनता से अपने हाथ में ले लिये। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक नित्शे (Nietzsche) ने लोगों के सामने यह विचार धारा बड़े ज़ोरों से रखी थी कि—धर्म, समाज, सदाचार, नीति आदि के बन्धन साधारण मनुष्यों के लिए हैं। जो उत्कृष्ट कोटि के लोग हैं, वे इनकी परवाह नहीं करते। वे अपने सहज गुणों के ज़ोर से इन दुर्बल रस्सियों को तोड़कर ऊपर उठ जाते हैं। जिसमें ऐसा व्यक्तित्व हो राष्ट्र का कर्तव्य है कि उसको विकास की सुविधाएँ दे। ऐसा मनुष्य महापुरुष है। छोटे मनुष्य झख मारेंगे और उसकी आज्ञा पर चलेंगे। वह जो कहेगा, वही नीति होगी, वही आचार होगा, वही क़ानून होगा। नित्शे की इस विचारधारा का परिणाम जर्मनी पर पड़ा और जर्मन लोगों ने जब अपने एक नेता में कुछ असाधारण कार्यक्षमता देखी, तो उसके नीचे एक सुशील आज्ञापालक की तरह चलने में संकोच नहीं किया। इटली व जर्मनी में अधिनायकवाद के प्रचलित होने के कुछ कारण और भी थे।

प्रथम महायुद्ध के विजेताओं में होता हुआ भी इटली असंतुष्ट था। लूट का माल दूसरों के हाथ लगा। इटली में लोगों की आर्थिक दशा बिगड़ गई, आत्म-विश्वास उठ गया, अशान्ति फैल गई। देश में बीसियों छोटे बड़े राजनीतिक दल बन गये। नेशनलिस्ट, बोलशेविस्ट, आदि क्रान्तिकारी दलों की आंतकवादी हलचलों और हड़तालों से अव्यवस्था और भी बढ़ गई। सरकार स्थिति सँभाल न सकी। ऐसी दशा में मुसोलिनी ने फासिस्ट पार्टी का संगठन किया। फासिस्ट एक तरह के आतंकवादी थे। इनके बल पर मुसोलिनी एक दृढ़ और निश्चित नीति लेकर सामने आया। उसके पास हज़ारों नौजवान स्वयंसेवक थे। २७ अक्टूबर १९२२ को वह उनके साथ रोम पहुँचा। उसने लोगों को एक ओर जहाँ भविष्य के सुनहले स्वप्न दिखाये, वहाँ दूसरी ओर अनुशासन-हीनता के लिए दंड का भय भी

दिखाया। इटली की जनता ने उसके आगे घुटने टेक दिये। उसके दृढ़ शासन में इटली शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।

जर्मनी भी पराजित होकर तबाह हो चुका था। उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी, उपनिवेश छिन गये थे, आर्थिक संकट मुँह बाये खड़ा था, लोगों के आत्माभिमान को गहरी ठेस लगी थी। यूरोप के विजयी राष्ट्रों ने उसे युद्ध के लिए जिम्मेवार ठहरा कर उस पर हर्जाने की भारी रकम लाद दी। वर्सेलीज़ की संधि की कठोर शर्तों के कारण वह लगातार कुचला जा रहा था। पराजित, निराश और नष्ट प्राय जर्मनी ने देखा कि इटली अधिनायकवाद के सहारे उन्नति कर रहा है। हिटलर ने भी मुसोलिनी की भाँति एक ओर जर्मनी को फिर उन्नत राष्ट्र बनाने का आश्वासन दिया, वहाँ दूसरी ओर दृढ़ता, अनुशासन और दंड नीति का भी आश्रय लिया। उसने जर्मन जनता को बताया कि उसके दिखाये मार्ग पर चलने से वह समस्त संकटों से मुक्त हो जायगी। जर्मन जनता इटली में एक नेतृत्व का सुफल देख चुकी थी। उसने भी हिटलर के नेतृत्व को शान्ति और भय के साथ स्वीकार किया। एक-नेतृत्व, एक-अनुशासन, एक-नीति और दृढ़ संकल्प के कारण जर्मनी उन्नति करता गया।

इस अधिनायकवाद के मूल में राज्य और उसके प्रतीक सरकार या एक प्रमुख नेता के प्रति अगाध श्रद्धा आवश्यक है। इस वाद में राष्ट्र की उन्नति चरम उद्देश्य है, व्यक्ति की उन्नति उसके साधन के रूप में होनी चाहिए। राष्ट्र की उन्नति के आगे वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को तुच्छ मानता है। इसके अनुसार नागरिक को राज्य के प्रति अपना सर्वस्व अर्पण करना होगा। उसका जो कुछ है, वह राज्य का है। राज्य के सुख में उसका सुख है और राज्य के दुख में उसका दुख है। वह राज्य के लिए ही जीता और मरता है। राज्य के प्रति यह अगाध श्रद्धा ही बाद में सरकार के प्रति अगाध श्रद्धा में बदल जाती है, क्योंकि वही राज्य का मूर्त चिह्न है। सरकार की आलोचना

या विरोध का फिर कोई स्थान ही नहीं रहता। इसलिए जनता सरकारी कामों में दखल नहीं दे सकती। यह स्थिति जब आगे बढ़ती है, तब सरकार पार्लमेंट या प्रतिनिधि सभा में भी जन-प्रतिनिधियों की आलोचना सहन नहीं करती। राज्य को सब शक्तियों और अधिकारों का केन्द्र मान लेने पर राज्य का सर्वोच्च शासक स्वभावतः दुर्धर्ष शक्ति बन जाता है। जनता अपने को राज्य से हीन मानने लगती है और प्रजातंत्र की यह मूल भावना कि वह स्वयं राज्य की स्वामिनी सत्ता है, नष्ट हो जाती है। समस्त शक्ति एक व्यक्ति में केन्द्रित हो जाती है। निरंकुश राजतंत्र और एकतंत्र या अधिनायकवाद में सिर्फ एक अन्तर होता है। निरंकुश राजतंत्र में सर्वोच्च सत्ता विरासत की—वंश परंपरा की—वस्तु होती है और एकतंत्र में जनता द्वारा चुने गये एक नेता में सारी शक्ति निहित हो जाती है।

जर्मनी का प्रथम महायुद्ध के बाद बना प्रजातंत्र विधान ताक पर रख दिया गया। सब शक्तियाँ और सत्ता जर्मनी के फ्यूहरर (नेता) हर हिटलर में केन्द्रित हो गईं। प्रेज़िडेंट और प्रधानमंत्री दोनों पद उसने सँभाल लिये। कोई नया कानून बनाना हो, किसी घरेलू या विदेशी समस्या का हल करना हो, उसी की इच्छा अन्तिम निर्णायक थी। वही मंत्रियों और सहकारियों को नियत करता था और अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त कर सकता था। और सभी राजनीतिक दल तो तोड़ दिये गये थे, सरकारी नीति की कोई भी आलोचना न कर सकता था, केवल हिटलर की अपनी नाज़ी पार्टी कायम रही। जर्मन पार्लमेंट रीशस्टैग विद्यमान रही, पर उसे कोई अधिकार न था। नाज़ी पार्टी का नेता भी हिटलर था।

इटली में भी यही कुछ हो रहा था। वहाँ राजा था, पार्लमेंट थी, लेकिन संपूर्ण शासन-सत्ता केवल फ़ासिस्ट पार्टी और अन्ततोगत्वा उसके प्रधान संचालक मुसोलिनी के हाथ में थी। उसने सब राजनीतिक पार्टियों को भंग कर देश को विविध पेशों के निर्वाचक दलों

कारपोरेशनों में बदल दिया और उन पर अपना कठोर नियंत्रण जारी रखा।

जर्मनी में हर हिटलर ने जिस विशुद्ध जातिवाद की भावना को उग्र रूप देकर अपनी शक्ति और भी बढ़ा ली थी उसका भी यहाँ परिचय दे देना आवश्यक है। हिटलर ने जर्मनों को यह बताया कि वे लोग आर्यों की श्रेष्ठतम शाखा नार्डिक में उत्पन्न हुए हैं। उनकी संस्कृति, और सभ्यता आर्य संस्कृति और सभ्यता का श्रेष्ठतम उदाहरण है। उसको अमिश्रित और शुद्ध रखना उनका पवित्र कर्तव्य है। इस जातिवाद और अपनी जाति को श्रेष्ठ समझने की भावना से राज्य के प्रति अन्ध श्रद्धा और भी बढ़ जाती है, क्योंकि राज्य के रूप में अपनी जाति, अपना रुधिर, अपना सहस्रों वर्षों का इतिहास मूर्त हो उठता है। अपनी जाति को सर्वोच्च समझने का परिणाम था दूसरी जातियों के प्रति घृणा या विरोध। केवल यहूदियों के प्रति ही यह घृणा नहीं उत्पन्न हुई; दूसरे देशों के निवासियों के प्रति भी विरोध और द्वेष की भावना ने जन्म लिया। नाज़ीपार्टी के एक प्रमुख नेता रोज़नबर्ग ने नाज़ी सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए लिखा था कि "वर्तमान बुराई की जड़ १७८९ की फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति है, जिसने कुलीन नार्डिक वंश के प्रभाव को कम करके अकुलीन जनता की शक्ति बढ़ा दी। इसी समय से उन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनसे मार्क्सवाद और बाद में रूस के साम्यवाद का जन्म हुआ।... जर्मनी को फ्रेंच राज्य-क्रान्ति के इन सब दुष्परिणामों को नष्ट करना है। जेक, पोल, रूसी और दूसरे स्लैव सब अकुलीन जातियाँ हैं। ये स्वतंत्रता की अधिकारिणी भी नहीं है।" जिस तरह जर्मनी अपने को विशुद्ध और सर्वश्रेष्ठ मानता था, उसी तरह मुसोलिनी भी इटली की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहा करता था कि—"मेरा विश्वास है कि इटली का पवित्र भाग्य एक दिन संपूर्ण विश्व पर सबसे महान् आध्यात्मिक प्रभाव डालेगा।"

यह अत्यंत मनोरंजक बात है कि राष्ट्रीयता की इस उग्रता के प्रचारक जहाँ अपने राष्ट्र को यह संदेश देना चाहते हैं, वहाँ यह भी चाहते हैं कि दूसरे देशों के निवासी इस सिद्धांत को न अपनावें। यदि सभी राष्ट्र अपने अपने देश से असीम प्रेम करने लगें, तो इनकी पराधीनता को कौन स्वीकार करेगा? फासिज्म के प्रवर्तक मुसोलिनी ने १९२७ ई० में कहा था कि 'फासिज्म ऐसा माल नहीं है, जिसे हम दूसरे देशों में भेजना चाहते हों।'

इटली और जर्मनी ने, इसमें सन्देह नहीं कि, अधिनायक-शासन में भौतिक उन्नति बहुत की। दोनों ही कुछ बरसों में शक्तिशाली राष्ट्र बन गए। इसका प्रभाव दूसरे राष्ट्रों पर भी पड़ा। स्पेन में फ्रैंको का शासन डिक्टेटरशिप का ही एक रूप है। स्वयं रूस में स्टालिन के हाथ में जो अपरिमित सत्ता है, उसे किसी भी तरह प्रजातंत्री नहीं कहा जा सकता। जर्मनी और इटली की भाँति वहाँ भी केवल एक कम्यूनिस्ट पार्टी है, दूसरी किसी पार्टी का संगठन नहीं हो सकता। कोई सरकार की नीति की आलोचना नहीं कर सकता। यद्यपि रूस के नेता अपने को समाजवादी मानते हैं, लेकिन वास्तव में शासन-चक्र में वहाँ भी अधिनायकवाद है।

टर्की में कमालपाशा ने जो राजनीतिक दल स्थापित किया था, आज तक उसके सिवा कोई नया दल संगठित नहीं हुआ। पहली बार १९४६ के चुनाव में विविध राजनीतिक दल संगठित करने की अनुमति जनता को मिली।

पिछले युद्ध की असाधारण परिस्थितियों में अनेक देशों में सरकारों ने अपने लिए असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिये थे। ये अधिकार प्रजातंत्र के आदर्श के तो विपरीत थे, किन्तु युद्ध की असाधारण परिस्थितियों में इनके सिवाय कोई दूसरा चारा भी न था।

प्रजातंत्र के मुख्य सिद्धान्त

यह युद्ध समाप्त होने पर विजेता राष्ट्रों ने जो घोषणाएँ की हैं,

उन सब में सब राष्ट्रों में प्रजातंत्र प्रचलित करने के वायदे किये गये हैं। प्रजातंत्र के रूप पर कुछ विचार हम पहले कर आये हैं। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के प्रेज़िडेंट अब्राहम लिंकन ने प्रजातंत्र का अर्थ यह किया था—*जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता पर शासन*। इंगलैंड के एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मिल के शब्दों में "सब लोग या लोगों का अधिकांश भाग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा जिस देश में शासन करता है, उसे लोकतंत्र शासन कहते हैं।"

क़ानून बनाने का अधिकार—प्रजातंत्र शासन का मुख्य आधार-भूत सिद्धान्त यह है कि क़ानून बनाने का अधिकार प्रजा के प्रति-निधियों को हो और शासक (मंत्रिमंडल) अपने कार्यों के लिए इन प्रतिनिधियों की सभा पार्लमेंट के सामने ज़िम्मेवार हो। अमेरिका में शासक (प्रेजिडेंट) उन्हें चुनने वाली जनता के सम्मुख जिम्मेवार हैं। दोनों हालतों में सरकार को उसी क्षण तक अपने पदों पर रहना चाहिये, जब तक पार्लमेंट या प्रजा उनसे सहमत हो। वस्तुतः *शासक वर्ग पर प्रजा का सीधे या प्रतिनिधियों द्वारा पूर्ण नियंत्रण ही उत्तरदायी शासन या प्रजातंत्रशासन की कुंजी है।* शासकों पर पूर्ण *नियंत्रण का सर्वोत्तम और सरलतम मार्ग यह है कि प्रतिनिधि सभा सरकार के समस्त आयव्यय पर पूरा काबू रखे और उसकी सम्मति के बिना सरकार एक भी पैसा ख़र्च न कर सके।* शासननीति का निर्धारण और क़ानूनों का निर्माण भी जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिये।

विचार स्वातंत्र्य—प्रजातंत्र का दूसरा मुख्य आधार है, प्रजा को दो या अधिक पार्टियों में से अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार हो। यह अधिकार तभी अक्षुण्ण बना रह सकता है, जब कि विभिन्न विचारों और नीतियों के प्रतिनिधियों को अपना संगठन करने, भाषण देने और लिखने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। उन पर किसी प्रकार का बंधन न हो। उन्हें बिना क़ानूनी कार्रवाई और अदालती फैसले के

कोई दंड न दिया जा सके। चुनाव के लिए यह भी आवश्यक है कि जब दो या अधिक पार्टियाँ हों तो वे सब अपने अपने विचारों का प्रचार करने में स्वतंत्र हों। रूस में एक ही पार्टी है, इसीलिए ब्रिटिश राजनीतिज्ञ उसे प्रजातंत्र राष्ट्र नहीं मानते।

बालिग मात्र को चुनाव का अधिकार—जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, सच्चे प्रजातंत्र के लिए यह भी आवश्यक है कि बिना किसी धर्म, लिंग, संपत्ति या शिक्षा के लिहाज के प्रत्येक वयस्क को अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन का अधिकार होना चाहिये। जो नागरिक टैक्स देता है, उसे प्रतिनिधि-चुनाव का अधिकार मिलना चाहिए और आज तो अप्रत्यक्ष कर* प्रत्येक नागरिक को—जो देश में रहता है और भोजन-वस्त्र का प्रयोग करता है—देना पड़ता है। इसलिए प्रत्येक नागरिक को मत देने का अधिकार होना चाहिए। इसके बिना कोई राष्ट्र सच्चे प्रजातंत्र का दावा नहीं कर सकता।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर जनता स्वयं भी मत देती है। पार्लमेंट या असेंबली के चुनावों के अवसर पर देश के सामने उपस्थित महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर जनता का मत ज्ञात होता रहता है। बीच बीच में भी निम्नलिखित तरीकों से जनता अपना मत प्रकट करती है :—

रैफ़रैंडम—प्रतिनिधि सभा में पेश होने वाले प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर समस्त जनता का मत लिया जाता है, मानो सारी जनता ही

---

*कर दो प्रकार के होते हैं-प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर। इन्कम टैक्स, स्टाम्प ड्यूटी आदि जो सीधे लिये जाते हैं, प्रत्यक्ष कर हैं। चुंगी, कस्टम आदि जो दुकानदार या व्यापारी से लिये जाते हैं अप्रत्यक्ष कर हैं, क्योंकि व्यापारी पदार्थ का मूल्य बढ़ा कर वह टैक्स ग्राहकों से ले लेता है। और इस तरह ग्राहक से सीधे न लिया जा कर भी वह उन्हीं की जेब से लिया जाता है।

असेंबली की सदस्य हो। इससे जनता पर खुद शासन की जिम्मेवारी आ पड़ती है।

इनिशियेटिव—जनता या मतदाताओं का एक बड़ा भाग किसी प्रस्ताव पर दस्तखत करके कानून बनाने के लिए शासकों के सामने पेश करता है। अगर जनता के बहुमत ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, तो वह कानून बन जाता है।

रिकाल—किसी निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधियों का विश्वास जब अपने प्रतिनिधि पर न रहे, तब वे व्यवस्थापिका सभा से उसे वापस बुला सकते हैं।

प्लेबिसाइट—सरकार की नीति का समर्थन या विरोध करने के लिए प्रत्येक नागरिक से मत लिया जाता है। हर हिटलर ने जर्मनी और आस्ट्रिया के नागरिकों से आस्ट्रिया को जर्मनी में मिलाने पर मत लिया था। पिछले दिनों इटली व ग्रीस में प्रजा ने प्लेबिसाइट (जनमत संग्रह) के द्वारा राजतंत्र के विरुद्ध मत देकर प्रजातंत्र की स्थापना की है।

गुप्त मत—प्रजातंत्र की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है की सभी मतदाता बगैर किसी दबाव के मनोवांछित व्यक्ति को ही मत दे सकें। अमीर या शक्तिशाली किसी तरह का दबाव मतदाता पर न डाल सकें, इसका उपाय यह है कि मत लेने का तरीका बिलकुल गुप्त होना चाहिए। गुप्तमत लेने का परिणाम यह होगा कि प्रत्येक मतदाता स्वतंत्रतापूर्वक अपने मनोवांछित उमीदवार को ही मत दे सकेगा।

मत गणना की साधारण पद्धति यह है कि जिस उमीदवार के ५० फी सदी से अधिक मत आवें, वह चुन लिया जाता है। इस पद्धति में एक बड़ा दोष यह है कि मतदाताओं के बहु-संख्यक-दल के तो सभी प्रतिनिधि चुन लिये जाते हैं, लेकिन अल्पसख्यक दल का एक भी प्रतिनिधि नहीं चुना जा सकता चाहे उस दल की संख्या ४९ फी

सदी ही क्यों न हो। इस तरह प्रतिनिधि सभा में जनता के एक बहुत बड़े अंश का किसी भी तरह प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। इस दोष को दूर करने के लिए मत (वोट) देने की कई अन्य पद्धतियाँ निकाली गई हैं।

सामुदायिक चुनाव पद्धति—इस पद्धति में मत-दाताओं की संख्या पर प्रतिनिधियों की संख्या को भाग देने से वह न्यूनतम आवश्यक संख्या निकल आती है, जिसका पाना किसी भी उम्मीदवार की सफलता के लिए अनिवार्य होता है। यदि कुल ४००० मतदाता हैं और ८० सदस्य चुने जाने हैं तो एक एक सदस्य को कोई से ५०० सदस्य मिलकर चुन सकते हैं। इसे सामुदायिक चुनाव पद्धति कहते हैं। इसके अनुसार एक विचार के ५०० व्यक्ति भी हों, तो वे अपना प्रतिनिधि चुन सकते हैं। साधारण चुनाव पद्धति के अनुसार कोई भी उम्मीदवार तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि वह कम से कम २००१ मत प्राप्त न कर ले।

सिंगल ट्रांसफरेबल वोट—इस पद्धति में मतदाता को प्रतिनिधि-सीटों की संख्या के बराबर वोट देने का अधिकार रहता है। लेकिन उसके सब वोट गिने नहीं जाते। वह उम्मीदवारों के नाम के आगे अपनी पसन्द के अनुसार पहला, दूसरा, तीसरा आदि नंबर लगा देता है। इसका अर्थ यह है कि यदि उसके अभिलषित प्रथम उम्मीदवार को आवश्यक अर्थात् औसत वोट मिल गये हैं, तो उसका यह वोट दूसरे नंबर वाले को और यदि वह भी चुन लिया गया है, तो तीसरे उम्मीदवार को हस्तान्तरित कर दिया जावे। कई उम्मीदवार प्रथम क्रम से आवश्यक औसत वोट प्राप्त नहीं कर सकते, तब दूसरे या तीसरे नम्बर पर उसे मिले हुए उन मत-दाताओं के वोट उसमें सम्मिलित किये जाते हैं जिनके वोटों की उनके प्रथम उम्मीदवारों को आवश्यकता नहीं रहती। यदि एक उम्मीदवार को १५०० वोट मिले हैं और औसत अनिवार्य संख्या सिर्फ ११०० है, तो उक्त वोटों

में से ४०० वोट निकाल कर उनके दिये क्रम से शेष उम्मीदवारों को बाँट दिये जाएँगे। ऐसा भी होता है कि एक उम्मीदवार को बहुत कम वोट मिले हैं और वह किसी तरह चुना नहीं जा सकता, तो उसको खारिज कर उसके वोटों को शेष उम्मीदवारों में क्रम से बाँट देते हैं। इस पद्धति का लाभ यह है कि इस में संख्या के अनुपात से प्रत्येक दल के प्रतिनिधि जा सकते हैं। भारतवर्ष के लिए विधान परिषद् का जो चुनाव प्रान्तीय असेंबलियों में हुआ है, वह इसी पद्धति से हुआ है।

प्रजातंत्र के भेद

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र—छोटी रियासतों या छोटे देशों में जनता स्वयं प्रत्येक बड़े प्रश्न पर अपना मत देती है। स्विटज़रलैंड की छोटी छोटी रियासतों में तथा उत्तरी अमेरिका के न्यू इंगलैंड नामक प्रदेश में इस प्रथा के दर्शन होते हैं। इस पद्धति को प्रत्यक्ष प्रजातंत्र या 'डाइरैक्ट डैमोक्रेसी' कहते हैं। प्रजातंत्र का यह रूप सिर्फ छोटी रियासतों में ही चल सकता है।

प्रतिनिधि-तंत्र—बड़ी रियासतों या बड़े राज्यों में जनता अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासन करती है। इसे प्रतिनिधि-तंत्र कहते हैं। यह प्रथा प्रायः समस्त संसार में प्रचलित है।

मर्यादित राजतंत्र—प्रतिनिधितंत्र के भी तीन मुख्य भेद हैं। जहाँ प्रतिनिधितंत्र राजतंत्र के साथ समझौता कर लेता है, वहाँ की शासन-पद्धति को *मर्यादित राजतंत्र* कहते हैं। इस पद्धति के अनुसार परंपरागत राजवंश की सत्ता तो होती है, शासन-सत्ता भी कानून के अनुसार उसी में केन्द्रित होती है, लेकिन व्यवहारतः राजा का कोई अधिकार नहीं होता। संपूर्ण शासन-शक्ति प्रतिनिधि-सभा के हाथ में रहती है। राजा का काम केवल प्रतिनिधियों के निश्चय पर हस्ताक्षर र देना भर है। प्रतिनिधियों की नीति ही राजा की नीति होती है।

इंगलैंड में जब अनुदार दल की सरकार होती है, तब उसकी नीति ही ब्रिटिश नरेश की नीति होती है और वह ब्रिटेन में पूँजीवाद के समर्थन में अपना घोषणा-पत्र जारी करता है। लेकिन दो दिन बाद यदि अनुदार दल का स्थान मजदूर सरकार ले लेती है तो ब्रिटिश-नरेश भी विभिन्न व्यवसायों के राष्ट्रीकरण की नीति के प्रतिपादन में अपनी घोषणा प्रकाशित करता है। इंगलैंड का राजा एडवर्ड अष्टम प्रजा की इच्छा के विरुद्ध अपनी प्रेमिका से विवाह तभी कर सका, जब उसने गद्दी छोड़ दी। वस्तुतः वहाँ राजा केवल वैधानिक प्रभु है, समस्त शासन-सत्ता जनता के हाथ में है।

मंत्रिमंडलात्मक—प्रजातंत्र का दूसरा रूप मंत्रिमंडलात्मक है। मर्यादित राजतंत्र में भी यह रूप रहता है और विशुद्ध प्रजातंत्र में भी, जहाँ राष्ट्र का सर्वोपरि प्रमुख अध्यक्ष के रूप में चुना जाता है। इसमें शासन की सत्ता मंत्रिमंडल के हाथ में रहती है। प्रजा या प्रधान नाममात्र का प्रभु होता है। ये मंत्री प्रायः जनता के प्रतिनिधियों में से चुने जाते हैं और जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। कानून बनाना तथा शासन-प्रबंध दोनों कार्य जनता के प्रतिनिधि-रूप में इन मंत्रियों के हाथ में होते हैं। यह मंत्रिमंडलात्मक प्रणाली इंगलैंड, फ्राँस, बेलजियम और कनाडा आदि में प्रचलित हैं।

प्रधानात्मक—प्रजातंत्र का तीसरा रूप प्रधानात्मक है। इसमें शासन की समस्त सत्ता एक प्रधान व्यक्ति के हाथ में सौंप दी जाती है। प्रधान का चुनाव जनता करती है और उसे शासन-शक्ति सौंप देती है। प्रधान व्यवस्थापिका सभा के प्रति जिम्मेवार नहीं होता और न उसके अविश्वास प्रकट कर देने के कारण त्याग पत्र देने के लिए विवश होता है। मंत्रियों की नियुक्ति भी वही करता है और उन्हें पद-च्युत भी कर सकता है। मंत्री भी व्यवस्थापिका सभा के सामने नहीं, प्रधान के सामने जिम्मेवार होते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यही शासन पद्धति प्रचलित है।

एकात्मक और संघविधान

पिछले अध्यायों में हम स्थानीय स्वायत शासन सत्ता के प्रसंग में यह बता आये हैं कि साधारणतः नागरिक अपने निकटवर्ती क्षेत्र के शासन में अधिक रुचि लेते हैं। वे अपनी स्थानीय समस्याओं को सुलझाने का स्वयं प्रयत्न करते हैं। उसमें वे दूरवर्ती व्यक्तियों या संस्थाओं के सहयोग की आवश्यकता नहीं समझते और उनके हस्तक्षेप को वे अवांछनीय समझते हैं। जो बात ग्राम या नगरवासियों के लिए है, वही बात प्रान्तवासियों के लिए भी ठीक है। वे भी चाहते हैं कि प्रान्त के शासन व प्रबंध में भी उन्हीं को अधिकतर अधिकार प्राप्त हों, केन्द्र का नियंत्रण उन पर न हो। केन्द्रीय सरकार उन्हें केवल वहीं तक सहयोग दे, जहाँ तक प्रान्तीय सरकारें उनसे मागें। वे अपनी स्वतंत्र सत्ता की भी माँग करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में स्वाधीनता और दूसरे के हस्तक्षेप न चाहने की भावना लगातार बढ़ती जा रही है। जो देश जितने बड़े होंगे वहाँ भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भेद भाव उतने ही अधिक होंगे और उतनी ही अपना शासन स्वयं करने की उनकी प्रवृत्ति बढ़ेगी। इस प्रवृत्ति के बढ़ने का यह परिणाम होता है कि राष्ट्र का विकेन्द्रीकरण हो जाता है और उसकी तमाम शक्तियाँ बिखरने लगती हैं। इस आशका और उसके दुष्परिणामों को दूर करने के लिए संघविधान की योजना अपनायी जाती है। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिए कि यह संघ-विधान वहीं काम कर सकता है जहाँ—

(१) राष्ट्रीय एकता का एक आध्यात्मिक आदर्श हो,

(२) सामान्य आर्थिक स्वत्वों के विकास व सामान्य समस्याओं को मिल जुल कर सुलझा लेने की तत्परता हो, और

(३) रक्षा व अन्तर्राष्ट्रीय साख की चिन्ता हो।

प्रसिद्ध विधान-शास्त्री डाइसी के शब्दों में संघविधान के लिए

दो शर्तें आवश्यक हैं। एक तो यह कि वे सब राज्य जो संघबद्ध होना चाहते हों, भौगोलिक, ऐतिहासिक और जातिगत दृष्टियों से इतने निकट हों कि उनकी जनता में एक सामान्य राष्ट्रीयता की अनुभूति संभव हो सके और दूसरी यह कि इन राज्यों के निवासियों को अपनी स्वतंत्र सत्ता के संबंध में भी ज्ञान हो। इस तरह संघ-शासन दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के समन्वय का एक प्रयत्न है—उसमें केन्द्रीकरण की आवश्यकता और अकेन्द्रीकरण की अनिवार्यता दोनों एक सी प्रबल होनी चाहिएँ। संघ-शासन जहाँ एक ओर प्रान्तों को बहुत से मामलों में पूरी आजादी देता है, वहाँ रेल, सेना, आर्थिक पद्धत आदि अनेक महत्त्वपूर्ण मामलों को अपने हाथ में भी रखता है, जिनसे समस्त देश की आर्थिक व राजनीतिक समृद्धि होती रहे। यदि किसी प्रश्न पर प्रान्तीय सरकार का संघ सरकार से मतभेद हो जाय, तो उसका निर्णय संघ सरकार नहीं कर सकती, फ़ैडरल कोर्ट या संघीय न्यायशाला में उस विवादास्पद प्रश्न का निर्णय होता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रान्त की स्वतंत्र सत्ता क़ायम रहती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, रूस और स्विटजरलैंड आदि में यही संघ-विधान प्रचलित है। भारत के नये विधान का भी आधार यही विधान होगा।

स्विट्ज़रलैंड में इटैलियन जर्मन और फ्रैंच, तीन भाषाएँ बोली जाती हैं। उसके विविध प्रान्तों में धार्मिक दृष्टि से भी मतभेद है। वहाँ शासन की मूलभूत सत्ता केन्द्रीय सरकार के हाथों में है। विदेशी नीति, शान्ति और युद्ध तथा मुद्रा, रेल, व्यापार आदि आर्थिक व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के हाथ में है। शान्ति और सुव्यवस्था की रक्षा, सार्वजनिक इमारतें, चुनाव और स्थानीय शासन का प्रबंध आदि प्रान्तीय सरकारों के हाथों में है। रूस जैसे महादेश में भी संघविधान बहुत अच्छी तरह काम कर रहा है। वहाँ लगभग, १९० विभिन्न जातियाँ हैं, जो करीब १५० विभिन्न भाषाओं और

बोलियों का प्रयोग करती हैं। परन्तु वे सब संघ-शासन द्वारा एक-राष्ट्रीयता के सूत्र में बँधी हुई हैं। रूस में प्रत्येक इकाई का अपना शासन-विधान है, अपनी धारा-सभाएँ हैं और अपनी कार्यकारिणी समितियाँ हैं, अपनी अदालतें तथा अपना कोश है। उनकी सीमाएँ उनकी स्वीकृति के बिना नहीं बदली जा सकतीं। संघ-शासन से संबंध विच्छेद कर लेने तक का उन्हें अधिकार है। परन्तु दूसरी ओर केन्द्रीय शासन को वे सब अधिकार प्राप्त हैं जो देश की शक्ति को बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। विदेशी नीति, युद्ध, संधि सेना, विदेशी व्यापार, आवागमन के साधन, डाक और तार, मुद्रा और बैंक आदि केन्द्रीय सरकार के हाथों में है। आर्थिक पुनर्निर्माण की राष्ट्रीय योजनाओं को कार्यान्वित करने का समस्त उत्तरदायित्व उसी पर है। संघ-विधान की इस पद्धति में नागरिक को अपनी निष्ठा प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनों सरकारों में रखनी पड़ती है। दोनों अपने अपने कार्यों के लिए क़ानून बना सकती हैं और नागरिकों पर टैक्स लगा सकती हैं।

इसके विपरीत एकात्मक शासन प्रणाली में सारी शासन-सत्ता और अधिकार केन्द्रीय सरकार में निहित रहते हैं और प्रान्तीय या स्थानीय सरकारें केवल उन्हीं अधिकारों का प्रयोग कर सकती हैं जो उन्हें केन्द्रीय सरकार से प्राप्त हों। केन्द्रीय सरकार उन अधिकारों को अपनी इच्छा से घटा या बढ़ा सकती है। इंगलैंड, फ्रांस आदि में यही शासन-प्रणाली प्रचलित है। भारतवर्ष में भी १९३५ के विधान से पूर्व यही प्रणाली प्रचलित थी। अब प्रान्तों को स्वायत्त शासन दे दिया गया है।

दोनों प्रवृत्तियाँ

आज-संसार में दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ काम कर रहीं हैं। एक ओर स्थानीय स्वशासन की भावना बढ़ती जा रही है और केन्द्रीय सरकार के हस्तक्षेप को न्यूनतम करने की विचारधारा का

प्रचार हो रहा है। लेकिन दूसरी ओर संसार की विविध विषम परिस्थितियों में जीवन के बीसियों पहलुओं में सरकार की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है और वह क्रमशः जनता के जीवन की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति पर स्वयं नियंत्रण करने लगी है। युद्ध काल में इस दूसरी प्रवृत्ति का प्रचार बहुत हुआ। भोजन, वस्त्र तथा जीवन की अन्य अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति सरकार का कर्तव्य है। इस भावना के साथ साथ प्रायः सभी देशों में सरकार ने व्यापार और व्यवसाय पर अभूत-पूर्व नियंत्रण किया है। यह काम एक ग्राम, नगर या एक जिला अपने बूते पर नहीं कर सकता था। इसके लिए प्रायः सभी देशों में अखिल देशीय योजना की आवश्यकता अनुभव की गई और परिणाम स्वरूप केन्द्रीय सरकारों ने अमित अधिकार अपने हाथों में ले लिये। जनता की स्वतंत्रता के अपहरण के साथ प्रान्तीय सरकारों को भी अपने अनेक अधिकार छोड़ने पड़े। राष्ट्रों में परस्पर तीव्र संघर्ष के खतरे से भी प्रान्तों को परस्पर अधिक दृढ़ सूत्र में ग्रथित होने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इससे केन्द्रीय सरकार की शक्ति बहुत बढ़ गई।

लेकिन इसके साथ साथ जनता में यह भावना भी लगातार बढ़ रही है कि राज्य के मामलों में उसकी आवाज अधिक से अधिक सुनी जावे और गरीब से गरीब के हित की रक्षा की जाय। इस दृष्टि से विभिन्न व्यवसायों के राष्ट्रीकरण की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। एक ओर जनता यह चाहती है कि राज्य उसकी स्वतंत्रता में कम से कम हस्तक्षेप करे, दूसरी ओर वह यह भी चाहती है कि राज्य उसकी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति करना अपना कर्तव्य समझे। इन दो परस्पर विरुद्ध दीखने वाली प्रवृत्तियों का समन्वय समाजवाद में पूर्ण होता है, जिसके अनुसार जनता स्वयं सरकार के रूप में संगठित हो कर न केवल राजनीतिक, बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी अपनी जिम्मेवारियाँ अधिक से अधिक बढ़ा रही है। यही साम्यवाद या समाजवाद की भूमिका है। लेकिन इसकी विस्तृत चर्चा हम आगे करेंगे।

दूसरा भाग

अध्याय १

भारतवर्ष का शासन विधान

विभिन्न शासन पद्धतियों और उनके सिद्धान्तों का परिचय हम पिछले पृष्ठों में प्राप्त कर चुके हैं। उन सबके प्रकाश में हम इस अध्याय में भारत के शासन-विधान का संक्षेप से विवेचन करेंगे। लेकिन इससे पूर्व कि हम आज की वैधानिक पद्धति का विवेचन करें यह अच्छा होगा कि अंग्रेजों के भारत में आने के बाद से अब तक के वैधानिक विकास पर एक दृष्टि डाल लें। इससे यह प्रकट हो जायगा कि भारत का वर्तमान शासन-विधान किन किन सीढ़ियों से गुजरता हुआ आज की स्थिति तक पहुँचा है और उसके भविष्य के गर्भ में क्या निहित है।

शासन-विधान का विकास

सबसे पहले अंगरेजों का भारत में आगमन ईस्ट इंडिया कंपनी के निर्माण के साथ हुआ। यह कंपनी १६०० ई० में पूर्वीय देशों के साथ व्यापार करने के लिए बनाई गई थी। इस कंपनी को ब्रिटिश सरकार ने व्यापार के लिए जो अधिकार पत्र या चार्टर दिया था, उसी में भारत सरकार के क़ानून-निर्माण के अधिकारों का अंकुर छिपा हुआ है। कंपनी को क़ानून बनाने और भारतीय विधान तैयार करने का अधिकार भी ब्रिटिश सरकार ने दिया था। इसके ६० साल बाद १६६१ में ब्रिटिश सरकार ने कंपनी को किले बनाने, मुद्रा जारी करने

तथा युद्ध और संधि करने के अधिकार देकर उसे व्यापारिक संस्था से राजनीतिक बना दिया।

लेकिन सब से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन १७६५ ई० में हुआ जब कि मुगल बादशाह शाहआलम ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में कंपनी को मालगुजारी वसूल करने का अधिकार दे दिया, और इस तरह कंपनी के हाथों में पहली बार भारतीय प्रजा के लिए सरकारी तौर पर अधिकार आ गये। इसी समय से वस्तुतः अंग्रेजों का भारत पर शासन प्रारंभ होता है। १६०० ई० से १७६५ ई० तक ईस्ट इंडिया कंपनी केवल व्यापारिक कंपनी के रूप में रही, यद्यपि वह भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करती रही। १७६५ ई० से १८५७ ई० तक ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन रहा। इस काल में भी ब्रिटिश सरकार कंपनी के कामों में हस्तक्षेप करती रही।

१७७३ में कंपनी द्वारा अधिकृत भारतीय प्रदेश के सुशासन के लिए ब्रिटिश पार्लमैंट ने गवर्नर जनरल और उसके चार सलाहकारों (कौंसिलरों) की नियुक्ति करके भारतीय शासन में ब्रिटिश पार्लमैंट का हस्ताक्षेप प्रारंभ किया, यद्यपि स्वामित्व कंपनी का ही माना जाता रहा। इसी समय एक सुप्रीम कोर्ट की भी स्थापना की गई। अब कंपनी के अधिकार केवल आर्थिक और व्यापारिक क्षेत्र तक ही सीमित रह गये। १७८४ में पिट के इंडिया ऐक्ट द्वारा ब्रिटिश पार्लमैंट ने कंपनी के भारतीय प्रदेशों के शासन के निरीक्षण के लिए लंडन में एक कंट्रोल बोर्ड बना कर पार्लमैंट के प्रति उत्तरदायी मन्त्रियों का भारतीय शासन पर नियन्त्रण स्थापित कर दिया। १८१३ और १८३३ के कानूनों द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी से व्यापार का एकाधिकार छीन लिया गया और उसकी स्थिति केवल ब्रिटिश सरकार के ट्रस्ट के तौर पर भारत में राजनीतिक शासन प्रबन्ध करने भर की रह गई। बंगाल के गवर्नर-को भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया गया। इन सब कानूनों का एक ही परिणाम था

कि पार्लमेंट का हस्तक्षेप कंपनी के काम में लगातार बढ़ता रहा और इस प्रकार का द्वैध शासन चलता रहा। कानून से एक ओर कंपनी तथा दूसरी ओर पार्लमेंट का एक बोर्ड मिल कर शासन करते थे।

१८३३ के चार्टर की विशेषता उसकी प्रमुख घोषणा है, जो शासन में भारतीयों के समान अधिकार के सिद्धांत को स्वीकार करती है। इस समय तक भारतीयों में कंपनी-शासन की भारतीय-विरोधी नीति से कुछ न कुछ असंतोष उत्पन्न हो चुका था। फलतः इस चार्टर की एक धारा में कहा गया था—"पूर्वोक्त प्रदेशों के कोई भी निवासी या बादशाह के कोई प्रजाजन जो वहाँ रहते हों, केवल अपने धर्म, स्थान, वंश या वर्ण के कारण कंपनी में किसी स्थान, पद या नौकरी से वंचित न रखे जावेंगे।"

सम्राट् के शासन में—१८५८ में ब्रिटिश पार्लमेंट ने जो कानून बनाया, उसने तो कंपनी का अन्त ही कर दिया। और इस तरह भारत में ब्रिटिश सत्ता का तीसरा काल प्रारंभ होता है। इससे पहले १८५७ में विद्रोह हो चुका था। यह विद्रोह यद्यपि सफल नहीं हुआ, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी को समाप्त कर दिया और शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। इसी समय पार्लमेंट के कंट्रोल बोर्ड को भारत मंत्री की कौंसिल में बदल दिया गया। भारत मंत्री ने बोर्ड के अध्यक्ष का स्थान लिया। इसी के साथ महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा की—"हम यह मानते हैं कि जिस तरह हम अपनी दूसरी प्रजाओं के साथ कर्त्तव्य पालन से बँधे हुए हैं, उसी तरह हम भारतीय प्रजा के साथ भी कर्त्तव्य से बँधे हुए हैं और सर्व शक्तिमान् की दया से हम सब कर्तव्यों का ईमानदारी और होशियारी से पालन करेंगे।" लार्ड डर्बी को इसी घोषणा के बारे में विक्टोरिया ने लिखा था कि इसका अर्थ यह है कि ब्रिटिश प्रजा की तरह ही भारतीयों को भी सब अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त होंगी। इसके बाद १८६१ में कानून द्वारा बंबई, बंगाल और मद्रास

में व्यवस्थापिका सभाएँ स्थापित की गईं। गवर्नर-जनरल की एक्जि-क्यूटिव कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों में वृद्धि की गई और इनमें कुछ भारतीय भी रखे गये। १८८२ में लार्ड रिपन ने स्थानीय शासन संस्थाओं की रचना की और १८९२ में वायसराय की एक्जिक्यूटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या १६ कर दी गई। ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई, उन्हें प्रश्न पूछने और सरकारी बजट पर आम बहस करने का भी पहली बार मौका दिया गया, परन्तु यह खयाल रखा गया कि ग़ैर सरकारी सदस्यों का बहुमत न हो जावे। १९०८ में ब्रिटिश सम्राट् एडवर्ड सप्तम ने प्रतिनिधि-तंत्र संस्थाओं की उपयोगिता बताते हुए उसे कुछ व्यापक रूप से प्रचलित करने का विचार प्रकट किया।

मिंटो-मार्ले सुधार—सन् १८९२ के बाद पार्लमेंट ने सन् १९०९ में महत्त्वपूर्ण कानून पास किया। इस समय से ब्रिटिश शासन का चौथा काल प्रारंभ होता है, क्योंकि प्रजा के प्रतिनिधि स्पष्ट और प्रभावशाली रूप से हमारे सामने आने लगते हैं। इसे मिंटो-मार्ले सुधार कहते हैं। इस ऐक्ट के द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलों के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या पहले से और भी अधिक बढ़ा दी गई। केन्द्रीय कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ा कर ६० तक और बंगाल कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या लगभग ४५ तक कर दी गई। प्रान्तीय कौंसिलों में ग़ैर सरकारी सदस्यों का बहुमत रखा गया लेकिन इसमें मनोनीत सदस्य भी थे। कौंसिलों को बहस करने के कुछ और अधिकार भी दिये गये।

भारत के राजनीतिक जीवन में पृथक् निर्वाचन पद्धति का, जिसकी विशेष चर्चा हम आगे करेंगे, श्रीगणेश भी मिंटो-मार्ले योजना के साथ ही होता है। परन्तु इस समय यह केवल मुसलमानों के लिए जारी की गई।

मांटफोर्ड सुधार—१९१७ में भारत मंत्री मि० मांटेगू ने एक

महत्त्वपूर्ण घोषणा की---"ब्रिटिश सरकार का भारत में यह उद्देश्य है कि शासन के हर एक विभाग से भारतवासियों का संपर्क दिन प्रतिदिन बढ़ाया जाय और स्वराज्य संस्थाओं का शनैः शनैः विकास हो, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अविच्छिन्न अंग भारत में धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन-पद्धति स्थापित हो सके।" इसी समय मांटफ़ोर्ड सुधारों के नाम से जो विधान तैयार हुआ वह १९१९ में प्रारम्भ हो गया। इसके दो भाग थे—एक केन्द्रीय और दूसरा प्रान्तीय। केन्द्रीय शासन १९४६ तक वैसे ही चलता रहा, लेकिन प्रान्तीय शासन १९३७ में सर्वथा बदल गया। इस प्रान्तीय शासन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(१) बंगाल, बंबई, मद्रास, संयुक्त, प्रान्त, पंजाब, बिहार तथा उड़ीसा, मध्य प्रान्त और आसाम के प्रान्तों में एक एक कौंसिल।

(२) द्वैध शासन पद्धति—सार्वजनिक स्वास्थ्य, अस्पताल, शिक्षा, खेती, कोआपरेटिव संस्थाएँ और उद्योग धंदे भारतीय मंत्रियों के सुपुर्द किये गये। इन्हें हस्तान्तरित विषय कहा जाता था। भूमि-कर, पुलिस, क़ानून, कर्ज़, आय-व्यय तथा कारखाने आदि सुरक्षित रखे गये। इन पर प्रान्तीय कौंसिल का कोई अधिकार न था। इन कौंसिलों की अवधि तीन वर्ष नियत की गई। दिल्ली, बलोचिस्तान, कुर्ग आदि छोटे प्रान्तों पर चीफ़ कमिश्नरों द्वारा भारत सरकार का सीधा नियंत्रण रहा।

(३) प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य बढ़ाये गये, लेकिन गैर-सरकारी सदस्य मनोनीत करने का अधिकार सरकार ने अपने पास सुरक्षित रखा।

(४) स्थानीय संस्थाओं पर सार्वजनिक नियंत्रण।

(५) प्रत्यक्ष, परन्तु सांप्रदायिक चुनाव।

(६) गवर्नर को कौंसिल के निर्णय स्वीकृत या अस्वीकृत करने के पूर्ण अधिकार।

केन्द्रीय शासन

१९१९ के विधान के अनुसार गवर्नर जनरल के हाथ में केन्द्रीय शासन की बागडोर दी गई। उसे शासन कार्य में सहायता देने के लिए आठ सदस्यों की एक समिति नियुक्त की गई। गवर्नर जनरल ही इस समिति का प्रधान होता था। कमांडर-इन-चीफ़ भी इस समिति का सदस्य होता था। सेना और रक्षा के अलावा देश का आन्तरिक प्रबन्ध, रेलवे और व्यापार, व्यवसाय और श्रम, आय-व्यय, कानून और शिक्षा, स्वास्थ्य तथा भूमि के महकमे इन सदस्यों के हाथ में होते थे।

किसी भी सरकार का शासन के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य होता है व्यवस्थापन या कानून बनाना। १९१९ के विधान के अनुसार क़ानून बनाने का अधिकार निम्नलिखित को था—(१) गवर्नर जनरल, (२) केन्द्रीय असेंबली और (३) कौंसिल आफ़ स्टेट।

किसी भी बिल के कानून बनने के लिए यह जरूरी था कि वह पहले उक्त दोनों व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा स्वीकृत हो और पीछे से उस पर गवर्नर-जनरल की मुहर लगे। बजट के अलावा और सब बिल पहले किसी भी सभा में पेश हो सकते थे, लेकिन बजट पहले केन्द्रीय असैंबली में पेश होना जरूरी था। यदि दोनों में से एक भी व्यवस्थापिका सभा ने उसे अस्वीकृत कर दिया तो वह कानून नहीं बन सकता था। लेकिन गवर्नर जनरल को असीम अधिकार थे। वह एक या दोनों व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा अस्वीकृत प्रस्ताव को अपने विशेषाधिकार से कानून बना सकता था और किसी भी स्वीकृत प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकता था। इतना ही नहीं, उसे किसी भी समय अपनी इच्छा से आर्डिनैंस निकाल कर ६ मास के लिए कोई कानून बनाने का अधिकार भी प्राप्त था।

व्यवस्थापिका सभाओं का संगठन—केन्द्रीय असैंबली और

कौंसिल आफ़ स्टेट में क्रमशः १४० और ६० सदस्य होते थे। परन्तु ये सब जनता द्वारा निर्वाचित नहीं होते थे। दोनों में क्रमशः ३६ और २६ सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते थे। इन दोनों सभाओं के सदस्यों के चुनावों में मतदाता की योग्यता की शर्त बहुत ऊँची रखी गई थी। जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो वही इनके चुनाव में भाग ले सकते थे। इस कारण बहुत कम—केवल ५ फ़ीसदी—जनता का प्रतिनिधित्व इन सभाओं में होता था। असैंबली का कार्य-काल केवल तीन वर्ष का था लेकिन गवर्नर जनरल को यह अधिकार था कि उसे पहले भी भंग कर दे या उसका कार्य-काल बढ़ा दे। युद्ध के नाम पर गवर्नर-जनरल ने असैंबली का चुनाव ६ साल तक रोक दिया था। १९३४ ई० के बाद असैंबली का चुनाव १९४५ में किया गया। कौंसिल आफ़ स्टेट का कार्य-काल ५ वर्ष का था।

इन दोनों व्यवस्थापिका सभाओं के अधिकार बहुत सीमित थे। बजट के बहुत से मदों पर इनकी राय तक नहीं ली जाती थी। गवर्नर जनरल की कार्य-समिति भी इनके प्रति जिम्मेवार नहीं होती थी। बजट के पास न हो सकने पर भी कार्यसमिति के सदस्यों को इस्तीफ़ा देने की जरूरत नहीं थी।

वैधानिक प्रगति का आन्दोलन

औपनिवेशिक स्वराज्य—परन्तु १९१९ के ये सुधार जब अमल में लाये गये, तब तक भारत की राजनीतिक महत्त्वकांक्षाएँ बहुत बढ़ चुकी थीं। इन सुधारों से लोकमत को संतोष नहीं हो सकता था। भारतीय नेता औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग कई वर्षों से कर रहे थे। उसी के लिए आन्दोलन जारी रहा। सरकार ने भी समय-समय पर भारत के प्रति अपने उद्देश्य के बारे में कई घोषणाएँ की थीं। सम्राट् ने ड्यू्क आफ़ कनाट द्वारा फरवरी १९२१ में, यह संदेश दिया—

"वर्षों से, शायद पीढ़ियों से, देश-भक्त और राजभक्त भारतीय अपनी मातृभूमि के लिए स्वराज्य का स्वप्न देखते आ रहे होंगे। आज आप के लिए मेरे साम्राज्य के भीतर स्वराज्य का श्रीगणेश हुआ है। मेरे अन्य उपनिवेश जिस 'स्वराज्य' का उपभोग कर रहे हैं, उस की ओर बढ़ने का आप के लिए यह सब से अच्छा अवसर है।" इस सन्देश की एक विशेषता यह थी कि इसमें 'स्वराज्य' शब्द का ही प्रयोग किया गया था, जिसका प्रयोग कांग्रेस करती थी और जिस का सर्व-प्रथम प्रयोग दादाभाई नौरोजी ने किया था। १९२८ में तत्कालीन प्रधान-मंत्री श्री रैम्जे मैकडानल ने यह आशा प्रकट की थी कि कुछ सालों में नहीं, कुछ महीनों में ही ब्रिटिश कामनवैल्थ में भारत भी औपनिवेशिक पद पाकर सम्मिलित हो जायगा। अक्तूबर १९२९ में वायसराय लार्ड अरविन ने एक लंबी चौड़ी घोषणा के सिलसिले में कहा था "१९१९ के सुधार कानून का अर्थ लगाने में ब्रिटेन और भारत दोनों ही देशों में ब्रिटिश सरकार की इच्छाओं पर सन्देह प्रकट किया गया है। इसलिए ब्रिटिश-सरकार ने मुझे यह स्पष्ट रूप से घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणा में यह अभिप्राय असंदिग्ध रूप से है कि भारत को अन्त में औपनिवेशिक दर्जा मिले।" लेकिन इन सब घोषणाओं से भी भारत को सन्तोष न हुआ। उसका कहना था कि यह उद्देश्य कब पूरा होगा, उसकी अवधि भी शीघ्र नियत होनी चाहिए। लेकिन सरकारी उच्च अधिकारी अवधि के बारे में चुप रहते हुए बार बार उसी घोषणा को दोहराते रहे।

साइमन कमीशन—१९१७ की घोषणा के अनुसार भारतीय वैधानिक प्रगति पर अपनी रिपोर्ट देने और भावी विधान की रूप-रेखा तैयार करने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया गया था, लेकिन इसमें एक भी भारतीय न रहने से सारे देश में असन्तोष की जो तेज लहर फैल गई थी, वह उसकी असन्तोषजनक रिपोर्ट पर और

भी ज्यादा हो गई थी। इस रिपोर्ट की तीन विशेषतायें थी—

(क) ब्रिटिश भारत व देशी रियासतों में एक अखिल भारतीय संघ-विधान।

(ख) प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की प्रगति।

(ग) केन्द्र में अनुत्तरदायी शासन।

लेकिन यह रिपोर्ट निकलने से पहले ही सरकार ने यह अनुमान कर लिया था और यह घोषणा कर दी थी कि "रिपोर्ट निकलने के बाद सरकार एक परिषद् का आयोजन करेगी, जिस में वह ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ विचार-विनिमय करके यह निश्चय करेगी कि भारत के लिए किन किन शासन-सुधारों की सिफ़ारिश पार्लमेंट से की जाय।"

गोलमेज़ कान्फ्रैंस—१९३० में जब कांग्रेस का सत्याग्रह आन्दोलन ज़ोरों पर था, लंडन में राउंट टेबल या गोलमेज़ कान्फ्रैंस बुलाई गई। इस में सरकार ने ब्रिटिश भारत व रियासतों के कुछ व्यक्तियों को प्रतिनिधि के तौर पर निमन्त्रित किया। कांग्रेस ने गोलमेज़ कान्फ्रैंस के इस अधिवेशन का बहिष्कार किया क्योंकि उसे इस बात का आश्वासन नहीं दिया गया था कि इस परिषद् का एक मात्र उद्देश्य भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य का खाका तैयार करना होगा। यह अधिवेशन १२ नवंबर १९३० से १९ जनवरी १९३१ तक रहा।

मार्च १९३१ में गांधी-अरविन पैक्ट द्वारा कांग्रेस और सरकार में समझौता हो गया। सत्याग्रह स्थगित हो गया और कांग्रेस के एक-मात्र प्रतिनिधि बनकर गांधी जी राउंड टेबल कान्फ्रैंस की दूसरी बैठक में शामिल हुए। कांग्रेस इस आशा पर सम्मिलित हुई थी कि विधान में जो कुछ भी संरक्षण या प्रतिबंध रखे जावेंगे, वे भारत के हित में होंगे। लेकिन वहाँ कोई समझौता न हो सका और गांधी जी वापस लौट आये। इन्हीं दिनों ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री ने यह कह कर

कि भारत के विभिन्न संप्रदायों के प्रतिनिधि परस्पर कोई निर्णय नहीं कर सके हैं, एक निर्णय दिया, जो सांप्रदायिक निर्णय या कम्यूनल एवार्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इस में यह नियत किया गया था कि प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं में हिंदू, हरिजन, मुसलमान, सिख, ईसाई, ऐंग्लो इडियन किस किस अनुपात में आवेंगे। इसका आधार भी जातिगत पृथक् चुनाव रखा गया।

सन् १९३२ के अन्त में ब्रिटिश सरकार ने छोटे पैमाने पर गोलमेज परिषद का एक और अधिवेशन किया; लेकिन चूँकि कांग्रेस फिर सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर चुकी थी, इसलिए वह उसमें शामिल नहीं हुई।

नया विधान

अनेक कमेटियों और गोलमेज कान्फ्रेंसों की बैठकों तथा पार्लमेंट में लम्बे विचार विनिमय के बाद एक बिल निश्चित किया गया। २ अगस्त १९३५ को ब्रिटिश सम्राट् की इस पर स्वीकृति मिली। और यह गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट की शकल में कानून की किताब में आ गया। इसके दो भाग हैं—१. प्रान्तीय शासन, २. केन्द्रीय शासन।

१—नये शासनविधान ने भारतीय शासन को केन्द्रीय स्थान पर संघ-शासन का रूप दिया। इसके सब विभाग अपने अपने क्षेत्र में पर्याप्त स्वतंत्र हैं।

२—अब तक केन्द्रीय शासन सिर्फ ब्रिटिश भारत तक सीमित था। लेकिन अब संघ असेंबली और कौंसिल आफ स्टेट में रियासतों के प्रतिनिधि भी शामिल किये जाने का निश्चय हुआ। रियासतों के तिहाई सदस्य रखे गये।

३—अनुत्तरदायी शासन की अपेक्षा नये विधान में रक्षा, वैदेशिक-संबंध, धार्मिक विभाग और कबीला क्षेत्रों के शासन के सिवा शेष महकमे जनता के प्रतिनिधि मंत्रियों के हाथ में सौंप दिये गये।

इन मंत्रियों को प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया।

४—मनोनीत सदस्यों की प्रथा बिलकुल खतम हो गई। सिर्फ कौंसिल आफ स्टेट में ६ सदस्य मनोनीत करने का अधिकार सरकार को दिया गया।

५—मंत्रियों का वेतन स्वयं नियत करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को दिया गया।

६—वायसराय या गवर्नर-जनरल के अधिकार इस विधान में भी असीम थे। देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित रखना, सरकारी कर्मचारियों तथा देशी नरेशों के हितों की रक्षा करना, भारतीय अल्पसंख्यक जातियों के अधिकारों और अंग्रेजी व्यापार को सुरक्षित रखना, आर्थिक स्थिरता आदि बातें वायसराय के अधीन रहीं। व्यवस्थापिका सभा से पास किये गये बिलों को रद्द करने और अस्वीकृत बिलों को पास करने का अधिकार पहले के ही समान इस विधान में भी स्वीकृत किया गया। आर्डिनैंस जारी कर सकने और आवश्यकता अनुभव करने पर मंत्रिमंडल या व्यवस्थापिका सभा के बिना भी शासन का पूर्ण संचालन करने का अधिकार भी उसे दिया गया।

७—दोनों व्यवस्थापिका सभाओं को निम्नलिखित विषयों पर क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया—१—भारत की आन्तरिक रक्षा, २—बाह्य मामले, ३—मुद्रा, ४—भारतीय रेलवे, ५—डाक और तार, ६—तट-कर और ७—इन्कमटैक्स।

८—दोनों व्यवस्थापिका सभाओं का चुनाव सांप्रदायिक या जातिगत रखा गया था, जिसका आधार सांप्रदायिक निर्णय था। रियासती प्रतिनिधियों का निर्वाचन जनता द्वारा हो या वे नामज़द किये जायँ इसका फैसला रियासती राजाओं पर छोड़ा गया था।

९—१९३५ के शासनविधान का बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त था प्रान्तों में गवर्नरों के विशेषाधिकारों और शक्तियों के साथ पूर्ण स्वराज्य।

प्रान्तीय शासन

सन् १९३५ के शासनविधान के अनुसार ब्रिटिश भारत के ११ बड़े प्रान्तों* को स्वशासन या स्वराज्य का अधिकार दिया गया। इस विधान के अनुसार प्रान्तीय शासन का मुखिया सम्राट् की ओर से गवर्नर होता है। वह जन-प्रतिनिधि मंत्रियों की सलाह से शासन करता है। गवर्नर-जनरल की भाँति गवर्नरों को भी प्रान्त में शान्ति कायम रखने तथा अल्पमतों के अधिकारों की रक्षा के लिए विशेषाधिकार दिये गये हैं। संपूर्ण मंत्रि-मंडल को बरखास्त करके वह प्रान्त के शासन की बागडोर सीधे तौर से अपने हाथ में ले सकता है। उसे आर्डिनैंस जारी करने का अधिकार भी है।

मंत्रिमंडल—१९३५ के शासनविधान के पूर्व प्रान्तों में कुछ विभाग गवर्नर अपने पास रखता था और कुछ विभाग हस्तान्तरित कर दिये गये थे। लेकिन अब कोई सुरक्षित विभाग नहीं है। अब मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित सदस्यों के बहुमत वाले दल के नेता द्वारा अपने दल में से चुना जाता है। मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका सभा के प्रति पूर्ण उत्तरदायी है। उस का वेतन भी वही नियत करती है। किसी भी स्थिति में अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर या बजट की रकमें पास न हो सकने पर मंत्रिमंडल को त्यागपत्र देना पड़ता है।

प्रान्तीय सरकार के अधीन मुख्य विभाग ये हैं—शिक्षा, स्थानीय स्वराज्य, चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, लगान, दुर्भिक्ष निवारण, कृषि, आबपाशी, उद्योग-व्यवसाय, पुलिस तथा न्याय। मंत्रिमडल के विभिन्न सदस्यों में ये महकमे बँटे हुए होते हैं और वे अपने अपने

---

* सिंध को बंबई से तथा उड़ीसा को बिहार से पृथक् प्रान्त बना दिया गया। सीमा प्रान्त को भी पूर्ण स्वायत शासन दिया गया।

विभाग के मुख्य शासक होते हैं। छोटे बड़े प्रान्तों के अनुसार मंत्रियों की संख्या भी तीन से लेकर ११ तक होती है।

प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाएँ—यह प्रान्तीय स्वराज्य का सब से मुख्य अंश है। शासनसंबंधी नीति निर्धारित करने, टैक्स लगाने, आय-व्यय स्वीकार करने और क़ानून बनाने के सब अधिकार जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों को सौंप दिये गये हैं। १९३५ के विधान से पूर्व प्रान्तीय असेंबलियों में सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यों की संख्या काफ़ी होती थी, लेकिन अब एक भी सदस्य मनोनीत नहीं होता।

प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं का चुनाव १९३२ के सांप्रदायिक निर्णय के आधार पर पृथक् चुनाव की पद्धति से होता है।

सब प्रांतों में व्यवस्थापिका सभा के एक से नियम नहीं हैं। मद्रास, बबई, बंगाल, संयुक्त प्रांत, आसाम तथा बिहार में दो हाउस हैं—असेंबली और कौंसिल अथवा लोक सभा और रईसी सभा। लेकिन पंजाब, मध्यप्रांत, उड़ीसा, सिंध और सीमा-प्रांत में एक एक ही व्यवस्थापिका सभा है। असेंबली का कार्यकाल पाँच वर्ष है, उसके बाद नया चुनाव करना होगा, लेकिन कौंसिल या रईसी सभा के लिए कोई कार्य-काल नियत नहीं किया गया। प्रति तीन वर्षों के बाद इस भवन के एक तिहाई सदस्य अवकाश प्राप्त किया करेंगे और उनकी जगह नया चुनाव होगा।

दोनों हाउस अपना सभापति आप चुनते हैं। असैंबली और कौंसिल में यदि किसी प्रश्न पर मत-भेद हो जावे, तो गवर्नर इन दोनों का सयुक्त अधिवेशन बुला कर उस पर मत लेता है और सम्मिलित निश्चय को कार्य रूप में लाता है। पर यदि कौंसिल के प्रस्ताव को असेंबली अस्वीकृत कर दे तो उसके लिए दोनों का संयुक्त अधिवेशन नहीं किया जाता। कोई भी बिल या प्रस्ताव किसी भी सभा में पहले पेश हो सकता है, पर बजट नहीं। वह पहले असैंबली में ही पेश होगा और उसे रईसी कौंसिल रद भी नहीं कर सकती।

यों प्रान्तीय सभाओं के अधिकार काफ़ी विस्तृत हैं; लेकिन गवर्नरों के असीम अधिकारों के कारण वे सीमित हो गए हैं। कोई बिल तब तक कानून नहीं बन सकता, जब तक कि उस पर गवर्नर के हस्ताक्षर न हो जावें। गवर्नर किसी बिल को (क) अस्वीकार कर सकता है या (ख) गवनर-जनरल के पास विचारार्थ भेज सकता है अथवा (ग) सभाओं को पुनर्विचारार्थ वापस कर सकता है। गवर्नर आवश्यकता पड़ने पर ९० धारा के अन्तर्गत अपनी ओर से कानून भी जारी कर सकता है। वह मन्त्रियों के कार्यों में भी हस्तक्षेप कर सकता है।

जिले से गाँव तक—प्रांतों को डिविज़न या कमिश्नरी आदि भिन्न भिन्न भागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक कमिश्नरी कई जिलों में विभक्त की जाती है। कमिश्नरी का प्रमुख शासक कमिश्नर और ज़िले का प्रमुख शासक डिप्टी कमिश्नर होता है। यह जिला भी तहसीलों में विभक्त होता है और तहसीलें थानों में। एक थाने में ५० से लेकर १०० तक गाँव होते हैं।

ज़िले का उच्च अधिकारी डिप्टी कमिश्नर समस्त जिले की शासन व्यवस्था का ज़िम्मेवार होता है। भूमि-कर तथा अन्य करों का संग्रह भी इसका काम है। फ़ौजदारी अभियोगों का न्यायाधीश होने के कारण ज़िला मजिस्ट्रेट का कार्य भी इसे ही करना पड़ता है। सरकारी खज़ाना, महकमा माल, ज़िला बोर्ड तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं का निरीक्षण भी डिप्टी कमिश्नर की कार्य सूची में अंकित है।

ज़िले की पुलिस, सुपरिंटेंडेंट आफ़ पुलिस के हाथ में होती है। सभी पुलिस अधिकारी उसी के नीचे रह कर काम करते हैं। महकमा माल के लिए एक माल अफ़सर होता है। भूमि संबंधी झगड़ों के न्याय के अधिकार उसे प्राप्त होते हैं। क़ानूनगो तथा पटवारियों का एक बड़ा महकमा उसी के अधीन काम करता है जो ज़मीनों, फसल और लगान आदि का बाकायदा हिसाब रखता है।

प्रत्येक तहसील की शासन-व्यवस्था के लिए तहसीलदार नियत किये जाते हैं। यह अपनी तहसील में न्याय का काम भी करता है और सब कर्मचारियों की देखभाल भी।

तहसील के अन्दर ४०-४५ गाँवों की एक ज़ैल होती है, जिसका उच्चाधिकारी ज़ैलदार कहलाता है। डिप्टी कमिश्नर चाहे, तो इसका चुनाव भी करा सकता है। गाँवों के नंबरदार इसमें वोट देते हैं। ज़ैलदार नंबरदारों और पटवारियों के काम की देखभाल करता है, सरकारी अफसरों को उनके काम में सहायता देता है और अपराधियों की तलाश में पुलिस की मदद करता है।

गाँव का मुखिया नंबरदार कहलाता है। चौकीदार इसकी सहायता करता है। हिसाब किताब के लिए एक पटवारी होता है। शासन-प्रबंध और भूमि का लगान संग्रह करने के लिए गाँव राष्ट्रीय विभाजन की सब से छोटी इकाई है और इसका प्रबन्ध इन्हीं तीन चार कर्मचारियों के हाथ में होता है।

अध्याय २

युद्ध काल और वैधानिक प्रगति

हम पिछले अध्याय में कह आये हैं कि १९३५ के विधान का प्रांतीय अंश अमल में आ चुका है। केन्द्रीय अंश भी अमल में आने की तैयारी हो चुकी थी। संघ-विधान अमल में आने से पूर्व की दो आवश्यक शर्तें फ़ैडरल कोर्ट तथा रिजर्व बैंक की स्थापना हो चुकी थी। भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो रियासती राजाओं को संघ-विधान में सम्मिलित होने के लिए तैयार कर रहे थे। लेकिन संघ विधान का भाग्य अच्छा न था। सन् १९३९ के अंत में यूरोप में महायुद्ध छिड़ गया। सरकार की समस्त शक्ति युद्ध के चाल-

संचालन में लग गई। राजा लोग अभी तक संघ-विधान से सहमत नहीं हुए थे। कांग्रेस का विरोध जारी था। अन्त में इस विधान को स्थगित कर के सरकार ने समस्त शक्तियों से युद्ध में सहयोग देने की अपील की।

इस युद्ध के प्रारंभ के साथ ही भारत के वैधानिक संघर्ष में एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ। ब्रिटिश भारत के ११ प्रांतों में से सात पर कांग्रेसी मंत्रिमंडल शासन कर रहे थे। कांग्रेस ने अंग्रेजी सरकार से इस युद्ध के उद्देश्यों पर प्रकाश डालने के लिए कहा और यह भी पूछा कि वे भारत पर किस तरह लागू किये जाएँगे। इसका अर्थ यह था कि सरकार निश्चित शब्दों में घोषणा करे कि भारत को पूर्ण स्वाराज्य कब दिया जायगा। तत्कालीन वायसराय ने इस माँग का जो जवाब दिया, उसका आशय यह था कि अभी मित्र-राष्ट्रों के युद्धोद्देश्य प्रकट नहीं किये जा सकते। १९१७ की मांटेगू घोषणा में भारत संबंधी उद्देश्य स्पष्ट है कि भारत को धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन दिया जायगा। सरकार भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहती है। युद्ध समाप्त होने पर एक गोलमेज़ कान्फ्रेंस बुलाई जायगी और उसमें भारतीय विधान पर विचार किया जायगा। स्वराज्य प्राप्त करने के लिए पहले भारतीयों को अपनी सांप्रदायिक समस्या को सुलझाना होगा तथा रियासती नरेशों का भी ध्यान रखना होगा, क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों में ब्रिटिश सरकार का विशेष उत्तर-दायित्व है। भारत मंत्री मि० एमरी ने भी औपनिवेशिक स्वराज्य को भारत का लक्ष्य घोषित किया। कांग्रेस इससे संतुष्ट नहीं हुई। उसके सब मंत्रि-मंडलों ने शासन-चक्र चलाने से इन्कार कर दिया और अपने अपने पदों से इस्तीफ़ा दे दिया। इस तरह अधिकांश प्रांतों में १९३५ का प्रान्तीय विधान भी समाप्त हो गया और गवर्नरों ने समस्त शासन-कार्य अपने हाथ में ले लिया।

वायसराय ने जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए श्री मोदी,

श्री नलिनी रंजन सरकार और श्री अणे आदि कई प्रमुख भारतीयों को अपनी कार्य-समिति में सम्मिलित किया और सदस्यों की संख्या १५ कर दी, जिनमें ११ भारतीय थे। लेकिन इससे भारतीयों को संतोष नहीं हुआ। कांग्रेस ने युद्ध समाप्त होने तक केन्द्रीय असैंबली के लोक-प्रतिनिधियों की अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा, उसे मानने से सरकार ने इन्कार कर दिया। इससे असंतोष बहुत बढ़ गया। उधर जर्मनी और जापान लगातार बढ़ते आ रहे थे। इसलिए सरकार जनता का सहयोग पाने को बहुत उत्सुक थी।

सर क्रिप्स के प्रस्ताव—१९४२ के प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारतीय नेताओं से बातचीत करने के लिए भारत में भेजा। उसने कुछ नये प्रस्ताव पेश किये। उनका सारांश यह था—

१—भारतीय संघ का दर्जा आन्तरिक व्यवस्था व विदेशी संबंधों के क्षेत्र में ब्रिटिश कामनवेल्थ के अन्य उपनिवेशों के समान होगा।

२—भारतीय संघ के विधान का निर्माण ब्रिटिश पार्लमेंट नहीं, वरन् जनता के द्वारा चुनी गई परिषद् करेगी।

३—इस विधान-परिषद् में देशी राज्यों का सम्मिलित होना अनिवार्य होगा।

४—इस संघ में शामिल होने या होने के लिए प्रान्त स्वतन्त्र होंगे। वे फिलहाल अपनी वर्तमान वैधानिक स्थिति को कायम रख कर बाद में भी संघ में शामिल हो सकेंगे और यदि वे चाहेंगे तो अपने लिए अलहदा विधान भी बना सकेंगे।

५—इस विधान-परिषद् और अंग्रेजी सरकार के बीच एक संधि पर हस्ताक्षर किये जाएँगे, जिसमें परिवर्तन-कालीन बातों का समावेश होगा।

६—इस संधि में अंग्रेजी सरकार द्वारा दिये गये आश्वासनों

के आधार पर जातीय और धार्मिक अल्पसंख्यक वर्गों के संरक्षण का पूरा निर्वाह होगा।

७—युद्ध के समाप्त हो जाने पर प्रान्तीय चुनाव होंगे और उसके फ़ौरन बाद प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्य मिलकर आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर विधान-परिषद् का चुनाव करेंगे। विभिन्न राजनीतिक दल परिषद् के चुनाव की पद्धति परस्पर सहमत होकर बदल भी सकते हैं।

८—रियासतों को भी आबादी के अनुपात से अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार रहेगा।

लेकिन इन प्रस्तावों का बहुत विरोध हुआ। इसमें पाकिस्तान की स्पष्ट स्वीकृति थी। भारत दो ही नहीं अनेक भागों में बँट सकता था। लेकिन इससे भी बड़ी बात यह थी कि तात्कालिक समस्या के लिए कोई समझौता नहीं हो सका। भारतीय नेता सेना और युद्ध विभाग को भी भारतीय सदस्य के हाथ में देना चाहते थे, जब कि वायसराय शासनचक्र को अपने हाथ में रखने को उत्सुक थे।

१९४२ का आन्दोलन—सर क्रिप्स असफल हो कर वापस लौट गये। इस से भारतीय जनता में असंतोष बहुत बढ़ गया। कांग्रेस ने अंग्रेजों से कहा कि हम भारत का स्वयं शासन करेंगे, तुम भारत छोड़ कर चले जाओ। ८ अगस्त १९४२ को अ० भा० कांग्रेस कमेटी ने 'भारत छोड़ो' की माँग की, और सरकार द्वारा यह माँग पूरी न किये जाने पर सत्याग्रह की धमकी दी और गांधी जी को सत्याग्रह-संचालन के पूर्ण अधिकार दे दिये।

सायंकाल को यह प्रस्ताव पास हुआ और दूसरे दिन प्रातःकाल सरकार ने म० गांधी और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों को गिरफ़्तार कर लिया। यह समाचार समस्त भारत में बिजली की तरह फैल गया। जनता का असंतोष और क्रोध कल्पनातीत और अभूतपूर्व रूप से फूट पड़ा। सारे देश में हड़तालें हुईं, मिलें कई दिनों तक

बंद रहीं. सरकारी इमारतें जला दी गईं, रेलवे इंजन तोड़ दिये गये, तार काट दिये गये और अनेक स्थानों पर पुलिस से संघर्ष के बाद कई नगरों पर जनता का शासन भी कुछ दिनों के लिए स्थापित हो गया। बहुत जगह उपद्रव हुए। सरकार ने कठोरता से आन्दोलन का दमन किया। हजारों कांग्रेसी कार्य-कर्ता जेल में डाल दिये गये। कई जगह फौज भी बुलाई गई और गाँवों पर सामूहिक जुर्माने किये गये। इधर देश में वैधानिक संकट वैसा ही बना रहा।

शिमला कान्फ्रेंस—५ मई १९४४ को गांधी जी बीमारी के कारण जेल से रिहा किये गये। लेकिन वैधानिक संकट जारी रहा। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य नहीं छोड़े गये। अधिकांश प्रान्तों में मन्त्रि-मंडलों के बजाय गवर्नर ही शासन करते रहे। लेकिन यह स्थिति न देश के लिए लाभकर थी और न सरकार के लिए। लार्ड वैवल, जो अब भारत के वायसराय थे, इंग्लैंड गये और वहाँ ब्रिटिश सरकार से परामर्श के बाद यहाँ वापस आ गये। उन्होंने यहाँ आने के बाद १४ जून १९४५ को एक घोषणा की। इसका आशय यह था कि मैं संगठित राजनीतिक दलों की प्रतिनिधि-भूत अपनी कार्य समिति का निर्माण करना चाहता हूँ; इसलिए मैं सब राजनीतिक दलों को निमन्त्रण दूँगा। विदेशी मामले, अर्थ तथा गृह-विभाग भी भारतीयों के सुपुर्द किये जायँगे। सेना कमांडर-इन-चीफ के मातहत रहेगी। अन्य उपनिवेशों की भाँति भारत में भी एक ब्रिटिश हाई कमिश्नर रखा जायगा। यह कार्यसमिति असेंबली के प्रति उत्तरदायी नहीं रहेगी, यद्यपि इसमें जनता के लोकप्रिय प्रतिनिधि रहेंगे। वायसराय को वीटो का अधिकार रहेगा, यद्यपि वह इसका प्रयोग बहुत कम करेगा। इस घोषणा के बाद ही कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सब सदस्य भी छोड़ दिये गये। जून के अंतिम सप्ताह में विविध राजनीतिक दलों की एक कान्फ्रेंस शिमला में की गई। वायसराय की योजना के अनुसार उसकी कार्य-समिति में प्रतिनिधित्व का आधार राजनीतिक न होकर

सांप्रदायिक था। कार्य-समिति में सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर रखी गई। कांग्रेस ने समझौते के लिए इस योजना में अनेक दोष होते हुए भी इसे स्वीकार कर लिया, लेकिन मुस्लिम लीग का यह आग्रह था कि कोई भी गैरलीगी मुसलमान कार्यसमिति में नियुक्त न किया जाय। पंजाब के प्रधान-मंत्री सर खिजर हयात खाँ तथा अन्य मुस्लिम नेता इससे सहमत नहीं हो सके। फलतः कई सप्ताहों के घोर परिश्रम के बाद यह कान्फ्रेंस असफल घोषित कर दी गई।

इसर कान्फ्रेंस हो रही थी, इधर इंगलैंड की सरकार में उथल-पुथल हो गई। मि० चर्चिल की अनुदार-दल सरकार का स्थान नये चुनावों में मजदूर-दल सरकार ने ले लिया। वायसराय वैधानिक संकट को हल करने के लिए दृढ़-संकल्प थे। इन नई परिस्थिति में उन्होंने एक बार फिर इंगलैंड की यात्रा की और वापस आकर उन्होंने यह घोषणा की कि प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं के नये चुनाव शीघ्र किये जायँगे। भारत का भावी विधान निर्माण करने के लिए विधान परिषद् बुलाई जायगी। मध्यवर्ती काल के लिए अपनी कार्य-समिति में जनता के प्रतिनिधि लेने का प्रयत्न करूँगा।

नये चुनाव—इसके कुछ समय बाद सारे देश में केन्द्रीय असेंबली और प्रान्तीय असैंबलियों के नये चुनाव हुए। ये चुनाव कई साल पहले हो जाने चाहिये, लेकिन युद्ध की असाधारण परिस्थितियाँ कारण बताकर स्थगित कर दिये गये थे। इन चुनावों के परिणाम-स्वरूप प्रायः सब सामान्य सीटों पर कांग्रेस का तथा मुस्लिम सीटों पर मुस्लिम लीग का अधिकार हो गया।

———

अध्याय ३

विधान-परिषद्

ब्रिटेन का मजदूर दल भारतीय स्वराज्य के लिए कई बार वचन दे चुका था। उसने शासन-सूत्र हाथ में लेने के बाद इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया और भारतीय स्थिति का अध्ययन करने के लिए ब्रिटिश पार्लमेंट का एक प्रतिनिधि-मंडल भारत में भेजा। उसके दस सदस्य थे। इस प्रतिनिधि-मंडल ने सारे भारत का चक्कर लगाया और विविध नेताओं से बातचीत करके यह वापस लन्दन चला गया। इसके वहाँ पहुँचने के कुछ समय बाद भारतमंत्री लार्ड पैथिक लारैंस, व्यापार सचिव सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा नौसेना सचिव श्री अलैग्जेंडर भारतवर्ष आए। इन्हें ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समस्या का अन्तिम हल ढूँढने तथा शीघ्र से शीघ्र पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने में भारत की सहायता करने के लिए यहाँ भेजा था। यह मंत्रिमिशन यहाँ कई मास तक रहा। इसने भारत की विविध राजनीतिक पार्टियों से महीनों तक विचार-विनिमय किया। आपस में किसी समझौते पर पहुँचने के लिए शिमला में एक कान्फ्रेंस भी की गई।

मंत्रि-मिशन की योजना

जब कई सप्ताह के प्रयत्नों का भी कोई परिणाम न निकला, तब उक्त मंत्रि-मिशन ने १६ मई को निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किये :—

(१) एक अखिल भारतीय संयुक्त-राष्ट्र होना चाहिये जिसमें

ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनों सम्मिलित हों और इनके अधीन ये विषय रहने चाहियें—विदेशी मामले, रक्षा और यातायात। इस भारतीय संयुक्त-राष्ट्र को अपने विषयों के व्यय के लिए आवश्यक धन उगाहने का भी अधिकार होना चाहिये।

(२) भारतीय संयुक्त राष्ट्र में एक शासन-परिषद् तथा एक व्यवस्थापिका-परिषद् होनी चाहिये जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि रहें। व्यवस्थापिका-परिषद् में कोई महत्त्वपूर्ण सांप्रदायिक मामला प्रस्तुत होने पर उसके निर्णय के लिए दोनों प्रमुख वर्गों के जो प्रतिनिधि उपस्थित हों उनका पृथक् पृथक् तथा समस्त उपस्थित सदस्यों का बहुमत आवश्यक होगा।

(३) केन्द्रीय संगठन के लिए निर्धारित विषयों को छोड़ कर अन्य समस्त विषय तथा समस्त अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को प्राप्त होंगे।

(४) देशी राज्य उन सब विषयों और अधिकारों को अपने अधीन रखेंगे जिन्हें वे केन्द्र को सुपुर्द नहीं कर देंगे।

(५) प्रान्तों को अपने पृथक् समूह बनाने का अधिकार होगा जिनकी शासन परिषद् तथा धारा-सभा होगी और प्रत्येक प्रान्त-समूह यह तय करेगा कि कौन कौन से विषय समान रूप से सामूहिक शासन में रहें।

(६) भारतीय राष्ट्र तथा प्रान्त-समूहों के विधानों में इस प्रकार की धारा रहनी चाहिये जिसके द्वारा कोई भी प्रान्त अपनी धारा-सभा के बहुमत से प्रथम १० वर्ष के बाद और फिर प्रति दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सके।

विधान-परिषद्

भावी विस्तृत विधान को तैयार करने के लिए एक विधान परिषद् का प्रस्ताव करते हुए मिशन ने कहा—

किसी नये विधान को तैयार करने के लिए स्थापित की जाने वाली परिषद् के संगठन के सम्बन्ध में सबसे पहली समस्या यह होती है कि जनता का अधिक से अधिक विस्तृत आधार पर ठीक प्रतिनिधित्व प्राप्त किया जाय। स्पष्टतः सब से अधिक संतोषजनक प्रणाली वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन करना होगी। लेकिन इस समय इस प्रकार की व्यवस्था करने का प्रयत्न करने से नये विधान के तैयार करने में ऐसा विलंब होगा जो किसी भी प्रकार स्वीकार्य न होगा। व्यावहारिक रूप से इसका दूसरा उपाय केवल यह है कि हाल में ही निर्वाचित प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं का निर्वाचक संस्थाओं के रूप में प्रयोग किया जाय। चुनाव का सब से अधिक न्याय्य और व्यावहारिक यह तरीका होगा कि—

(क) प्रत्येक प्रान्त की जन-संख्या के अनुपात से उसके लिए अधिक से अधिक स्थान निश्चित कर दिये जायँ। स्थूल रूप से प्रत्येक १० लाख व्यक्तियों के पीछे एक स्थान दिया जाय। यह वयस्क मताधिकार के प्रतिनिधित्व का श्रेष्ठतम बदल है।

(ख) इस प्रकार निश्चित किये गये स्थानों को प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख संप्रदायों के बीच उनकी जन-संख्या के अनुपात से बाँट दिया जाय।

(ग) यह व्यवस्था की जाय कि प्रत्येक समुदाय के लिए उक्त स्थानों के प्रतिनिधि प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् के उसी समुदाय के सदस्यों द्वारा चुने जायँ।

प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् निम्न प्रकार निर्दिष्ट संख्या में अपने प्रतिनिधि चुने और व्यवस्थापिका सभा का प्रत्येक भाग अर्थात् साधारण, मुस्लिम और सिक्ख सदस्यों के वर्ग अपने प्रतिनिधि आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार चुनें।

क—विभाग में मद्रास, बंबई, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त और उड़ीसा प्रान्त थे।

ख—विभाग में पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त और सिन्ध प्रान्त थे।

ग—विभाग में बंगाल और आसाम प्रान्त थे।

ब्रिटिश भारत के कुल प्रतिनिधि २९२ थे और इनमें से ७८ मुस्लिम सदस्य थे।

देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की अधिकतम संख्या ९३ रखी गई।

विशेष—चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के प्रतिनिधित्व के लिए दिल्ली तथा अजमेर की ओर से निर्वाचित केन्द्रीय व्यवस्था परिषद के सदस्यों को तथा कुर्ग व्यवस्थापिका कौंसिल द्वारा निर्वाचित एक प्रतिनिधि को (क) विभाग में जोड़ दिया जायगा।

ख—विभाग में बृटिश बिलोचिस्तान का एक प्रतिनिधि जोड़ा जायगा।

परिषद् के उक्त संगठन के बाद उसकी कार्यविधि भी विधान ने नियत की, जिसके मुख्य अंश निम्नलिखित हैं—

(१) प्रारम्भिक बैठक के बाद प्रान्तीय प्रतिनिधि क, ख और ग इन तीन वर्गों में विभक्त हो जायँगे। ये विभाग अपने अपने समूह के प्रान्तों के विधान को तयार करेंगे। और यह भी तय करेंगे कि क्या उन प्रान्तों के लिए कोई सामूहिक विधान तैयार करना चाहिए, और तैयार किया जाय तो कौन से विषय सामूहिक विधान के अन्तर्गत रहने चाहिए।

(२) इन विभागों और देशी राज्यों के प्रतिनिधि संयुक्त भारत का विधान तैयार करने के लिए फिर एकत्र होंगे।

(३) नई वैधानिक व्यवस्था के अमल में आते ही किसी भी प्रान्त को यह अधिकार होगा कि वह उस समूह से बाहर निकल जावे जिसमें उसे रखा गया है। नये विधान के अन्तर्गत पहला चुनाव

होने के बाद नई प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् इस प्रकार का निर्णय कर सकेगी।

(४) शासन-शक्ति के हस्तान्तरित होने के कारण उत्पन्न कुछ मामलों के सम्बन्ध में संयुक्त भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् तथा ब्रिटेन के बीच किसी प्रकार की संधि आवश्यक होगी।

जुलाई के उत्तरार्ध में मंत्रि-मिशन की योजना के अनुसार सभी प्रान्तीय असैंबलियों ने विधान परिषद् के सदस्यों का चुनाव कर लिया। कांग्रेस-मिशन द्वारा प्रस्तावित गुटबन्दी के विरुद्ध थी। उसने कहा कि विधान परिषद् के तीन विभाग अनिवार्य नहीं करने चाहिए। ऐसा करना जहाँ सिक्खों पर, उन्हें जबर्दस्ती मुसलमानों के अधीन कर के, भारी अन्याय है, वहाँ आसाम और सीमाप्रान्त पर भी अन्याय है, जहाँ की जनता किसी तरह उन गुटों में सम्मिलित होने के लिए उत्सुक नहीं है। कांग्रेस ने यह भी आपत्ति प्रकट की कि असैंबली के यूरोपियन सदस्यों को चुनाव में भाग लेने का अधिकार नहीं होना चाहिए। विधान परिषद् को पूर्ण स्वामित्व देना चाहिए। लेकिन इन सब कमियों के होते हुए भी कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया।

अन्तःकालीन सरकार

विधान-निर्माण के कार्य के साथ साथ भारत का शासन भी चलाना है, इसलिए एक लोक-प्रिय अन्तःकालीन सरकार की स्थापना की भी उक्त मिशन ने सिफ़ारिश करते हुए वायसराय से अनुरोध किया कि वे राजनीतिक दलों के सहयोग से उक्त सरकार की स्थापना कर लें। इस अन्तःकालीन सरकार के लिए वायसराय ने विभिन्न प्रतिनिधियों से फिर विचार-विनिमय किया और अन्त में १४ सदस्यों की एक समिति का प्रस्ताव रखा। इसके अनुसार ५ मुसलमान, ५ सवर्ण हिन्दू, १ हरिजन, १ पारसी तथा १ सिख और १ ईसाई

रखे गये। पाँचों मुसलमान मुस्लिमलीग के थे और सवर्ण हिन्दू व हरिजन कांग्रेसी थे। कांग्रेस ने अपनी संख्या में से एक कांग्रेसी मुस्लिम रखने पर जोर दिया; लेकिन मुस्लिमलीग ने इसका विरोध किया। फलतः कांग्रेस ने अन्तःकालीन सरकार में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। इस तरह शिमला-कान्फ्रेंस की पुनरावृत्ति ११ मास बाद फिर दिल्ली में हुई। विधान-परिषद् में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया और दोनों ने इसके सदस्यों के चुनाव में बहुत उत्साह से भाग लिया।

अध्याय ४

देश में रक्तपात और देश का विभाजन

लीग द्वारा संघर्ष—ज्यों-ज्यों स्वराज्य अधिक निकट आता गया, देश की समस्याएँ विकटतर होती गईं। इधर देश किसी तरह विधान-परिषद् के द्वारा भावी समस्याएँ हल होने की आशा कर रहा था, उधर मुस्लिम लीग ने जुलाई १९४६ के अन्तिम सप्ताह में विधान-परिषद् के बहिष्कार की घोषणा कर के अपने उस निश्चय को वापस ले लिया, जो उसने मंत्रि मिशन की योजना को स्वीकार करने के सम्बन्ध में किया था। सरकारी निश्चय के विरुद्ध लीग ने प्रत्यक्ष संघर्ष प्रारम्भ करने का भी निश्चय किया और अध्यक्ष मि० जिन्ना को संघर्ष प्रारम्भ करने व उसके संचालन के पूरे अधिकार दे दिये। लीग ने पहली बार सरकार से असहयोग का निश्चय किया और बहुत से प्रतिष्ठित मुसलमानों ने सर, खाँ बहादुर और नवाब आदि के खिताब सरकार को वापस कर देने की घोषणा की। इस घोषणा के साथ ही सारे देश में लीगी नेताओं, कार्यकर्त्ताओं और पत्रों ने सांप्रदायिक विष उगलना शुरू कर दिया और स्थिति लगातार बिग-

डती गई। गृह युद्ध की विभीषिका सारे देश पर छा गई।

बंगाल में रक्तपात—१६ अगस्त को बंगाल में मुस्लिम लीगी सरकार ने प्रत्यक्ष संघर्ष के उपलक्ष में सार्वजनिक छुट्टी घोषित कर दी। कलकत्ते में मुस्लिम लीगियों ने प्रदर्शन के समय एक भीषण उपद्रव कर के गृहयुद्ध का सूत्रपात कर दिया। इसमें पहले दो दिन हिन्दुओं का नृशंसतापूर्वक बध हुआ, पर तीसरा दिन प्रारम्भ होते-होते हिन्दू भी पूरी तरह संगठित हो गये। मुसलमानों पर प्रत्याक्रमण प्रारम्भ हुआ। इसमें हजारों हिन्दू व मुसलमान मारे गये। कुछ समय बाद पूर्वी बंगाल में नोआखाली में मुसलमानों ने और भी अधिक नृशंस व संगठित आक्रमण कर के समस्त हिन्दू समाज को आतंकित कर दिया। हजारों हिन्दू घर जला दिये गये, हजारों हिन्दू अपनी स्त्रियों के सामने मौत के घाट उतार दिये गये और हजारों स्त्रियों को बलात् मुसलमान बना दिया गया और उनके साथ विवाह कर लिया गया। सैकड़ों स्त्रियों के अंगच्छेद कर दिये गये। नोआखाली के समाचार सुनते ही सारे देश में तहलका मच गया। इस समय तक केन्द्र में पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तःकालीन सरकार स्थापित हो चुकी थी। लेकिन वह पूर्वीय बंगाल के इस नृशंस उपद्रव पर कोई रोक न लगा सकी। बंगाल का गवर्नर अँग्रेज था और वहाँ मुस्लिम लीगी सरकार थी। प्रान्तीय सरकार आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र थी। हिन्दुओं पर होने वाले इस बर्बर अत्याचार की प्रतिक्रिया बिहार में हुई। वहाँ मुसलमान अल्पसंख्या में थे, उन पर आक्रमण किया गया। हजारों मुसलमान मारे गये। महात्मा गाँधी ने इसके विरोध स्वरूप अनशन की घोषणा की और पं० नेहरू स्थिति का वीरतापूर्वक मुकाबला करने बिहार पहुँचे। वहाँ की सरकार ने भी इसका अत्यन्त कठोर दमन किया। बिहार में तो शान्ति हो गई, लेकिन देश के पश्चिमी भाग में सांप्रदायिकता का नग्न ताण्डव मुस्लिम लीग ने प्रारम्भ कर दिया। लाहौर, मुलतान,

डेरा इस्माइल खाँ तथा सीमा प्रान्त के अन्य शहरों में मुस्लिम लीगी नेशनल गार्ड और गुंडों ने मुस्लिम पुलिस व अधिकारियों की सहायता से जो नृशंस कांड किया, इससे देश की स्थिति बहुत बिगड़ गई और देश गृहयुद्ध के निकट पहुँच गया।

केन्द्रीय सरकार में लीग—एक ओर देश को गृहयुद्ध की ज्वालाएँ इस तरह झुलसा रही थीं, दूसरी ओर कांग्रेस के नेता जल्दी से जल्दी इस भीषण महाविनाश के मूल में अँग्रेजी शक्ति को पाकर उससे जल्दी से जल्दी मुक्ति प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे केन्द्रीय सरकार के नेता और विशेष कर म० गाँधी इस स्थिति से देश को बचाने के लिए जल्दी से जल्दी देश को स्वराज्य दे देने की माँग करने लगे। केन्द्रीय सरकार का मन्त्रि-मंडल एक के बाद एक ऐसे कार्य करता जा रहा था, जिससे अंग्रेजों का प्रभुत्व प्रत्येक विभाग पर कम से कम होता गया। यह सब देख कर वायसराय लार्ड वैवल ने मुस्लिम लीग से मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने के लिए अनुरोध किया। प० नेहरू मुस्लिम लीग को इस शर्त पर लेने के लिए सहमत हो गये कि वह मन्त्रिमण्डल के संयुक्त उत्तरदायित्व की नीति को अपना ले। लार्ड वैवल ने लीग की ओर से ऐसा आश्वासन दे भी दिया। फलतः लीग के पाँच प्रतिनिधि मन्त्रिमण्डल में ले लिये गये। कुछ लोग आशा करने लगे कि कांग्रेसी व लीगी मंत्री मिल कर देश को गृहयुद्ध की ज्वालाओं से बचा लेंगे। किन्तु संयुक्त उत्तरदायित्व का आश्वासन झूठा था। लीगी मन्त्रियों ने आकर सरकार के समस्त शासन चक्र को और भी विषाक्त कर दिया। मुसलमान मंत्री से लेकर छोटे से छोटे मुस्लिम क्लर्क और चपरासी तक में केन्द्रीय सरकार को अव्यवस्थित करके उसे अपंग करने की भावना काम कर रही थी। देश का विभाजन न हुआ था, किन्तु प्रायः प्रत्येक मुस्लिम कर्मचारी मुस्लिम लीगी व पाकिस्तानी था। बड़े-बड़े उत्तरदायी अधिकारी साम्प्रदायिक विष फैला रहे थे। लार्ड वैवल अपने आश्वासन के संबंध

में बिलकुल मौन धारण कर गये।

६ दिसम्बर की घोषणा—इस तरह स्थिति बराबर बिगड़ती आरही थी कि ब्रिटिश सरकार ने ६ दिसम्बर को एक घोषणा करके स्थिति और भी अधिक खराब कर दी। इस घोषणा में ब्रिटिश मंत्रि-मिशन की घोषणा की एक धारा को स्पष्ट करते हुए कहा गया कि—"यदि कोई विधान किसी ऐसी विधान-परिषद द्वारा तैयार किया गया हो, जिसमें भारतीय जनता के किसी बड़े भाग का प्रतिनिधित्व न हो, तो सम्राट् की सरकार कभी यह इरादा नहीं रखती कि ऐसा विधान देश के किसी अनिच्छुक भाग पर जबर्दस्ती लादा जाय।" इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि मुस्लिमलीगी सदस्य यदि चाहें तो भारतीय विधान-परिषद् मुस्लिम बहुल प्रदेशों के लिए कोई विधान तैयार नहीं कर सकती। दो भागों में देश के विभाजन का स्पष्ट संकेत पाकर मुस्लिम लीग का रुख और भी अधिक कठोर हो गया। विधान परिषद् से मुस्लिमलीग का असहयोग पहले की भाँति रहा। लार्ड वैवल स्थिति को किसी तरह सुधारने में असमथ हो रहे थे। २० फरवरी १९४७ को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० एटली ने दो घोषणाएँ कीं। एक तो यह कि जून सन् १९४८ तक भारत को स्वराज्य दे दिया जायगा और दूसरी यह कि लार्ड वैवल के स्थान पर लार्ड मौंटबेटन वायसराय बनाये जावेंगे। घोषणा में यह भी कहा गया था कि 'इनको भारत की भावी समृद्धि और सम्पन्नता को दृष्टि में रखते हुए भारत सरकार का दायित्व भारतीयों के हाथ में सौंपने का भार दिया जायगा।" स्वराज्य प्राप्ति का समय यद्यपि निश्चित कर दिया गया था, तथापि महात्मा गाँधी ने १३ मास के समय को बहुत अधिक कहा और जल्दी से जल्दी स्वराज्य की माँग की। उनका कहना था कि इन तेरह महीनों में समस्त देश युद्ध की ज्वालाओं से भस्म हो सकता है। लार्ड मौंटबेटन २३ मार्च को भारत में आये।

लार्ड मौंटबेटन—लार्ड मौंटबेटन ने भारत में आते ही

विभिन्न नेताओं से विचार-विनिमय शुरू कर दिया। हम ऊपर बता चुके हैं कि भारत सरकार की सारी मशीनरी ही मुस्लिम लीग के असहयोग के कारण लँगड़ी होती जा रही थी और इस कारण वह सांप्रदायिक ज्वाला को शान्त करने में नितान्त असमर्थ थी। देश के नेता विभाजन को ही इसका व्यावहारिक उपाय मानने को विवश हो रहे थे। म० गांधी अन्त तक देश के विभाजन का विरोध करते रहे, किन्तु अन्य नेताओं को इसके सिवा शान्ति-स्थापन का कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। लीगी नेता किसी तरह सहयोग व शान्ति पर सहमत नहीं थे और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सब कुछ करने को तैयार थे। लार्ड माउंटबेटन ने समस्त स्थिति पर विचार करके ब्रिटिश सरकार से विचार विनिमय किया। ३ जून १९४७ को ब्रिटिश सरकार ने भारतीय इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घोषणा की।

३ जून १९४७ की घोषणा

ब्रिटिश सरकार ने तीन जून १९४७ को जो महत्त्वपूर्ण घोषणा की, वह स्वातंत्र्य-संग्राम के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखती है। इसके मुख्य भाग निम्नलिखित हैं :—

(१) भारत की अन्तःकालीन सरकार की स्थिति ब्रिटेन की अधीनस्थ नहीं, औपनिवेशिक सरकार की सी होगी। इसके द्वारा भारत को जून १९४८ से भी पहले औपनिवेशिक स्वराज्य दे देने का वचन दिया गया।

(२) औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना के लिए आवश्यक बिल शीघ्र ही पार्लमेंट में पेश किया जायगा।

(३) भारतीय विधान परिषद् की सत्ता और अधिकार को स्वीकार करते हुए नयी विधान परिषद् की स्थापना का भी निर्देश कर दिया गया। इसमें कहा गया था—"सम्राट् की सरकार

मौजूदा विधान-परिषद् के काम में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालना चाहता।...यह भी स्पष्ट है कि इस परिषद् द्वारा बनाया गया विधान देश के उन प्रदेशों पर लागू नहीं हो सकता, जो इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं है।' इन प्रदेशों का लोकमत जानने का सर्वोत्तम व्यावहारिक साधन यह बताया गया था कि "वे (प्रदेश) अपना विधान मौजूदा विधान-परिषद् में बैठकर बनाना चाहते हैं अथवा एक नयी विधान-परिषद् में, जिसमें उन प्रदेशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों, जो वर्तमान विधान परिषद् से पृथक रहना चाहते हैं। जब इस बात का निर्णय चुकेगा, तब यह निश्चय करना संभव होगा कि (ब्रिटिश सरकार द्वारा) शासनधिकार किस सत्ता अथवा किन सत्ताओं को सौंपा जाना चाहिए।"

(४) बंगाल व पंजाब की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों को (यूरोपियन सदस्यों को छोड़ कर) मुस्लिम व ग़ैर मुस्लिम भागों में विभक्त कर के प्रत्येक विभाग द्वारा बहुमत के आधार पर यह निश्चित करने की भी व्यवस्था की गई कि वे प्रान्त का विभाजन चाहते हैं या नहीं। यदि इन प्रान्तों का कोई भी भाग अपने बहुमत से प्रान्त-विभाजन का निर्णय करे, तो गवर्नर जनरल एक सीमा कमीशन नियत कर प्रान्तों के मुस्लिम व ग़ैरमुस्लिम प्रदेशों की सीमा का निर्धारण करेगा। फिर प्रान्तों के विभक्त भाग को यह भी निश्चित करने का अधिकार दिया गया कि वह मौजूदा विधान-परिषद् में सम्मिलित होगा अथवा एक नई विधान-परिषद् में।

(५) सिंध की व्यवस्थापिका सभा को बहुमत के आधार पर दोनों विधान-परिषदों में से चुनाव करने का अधिकार दिया गया। सीमाप्रान्त की असेम्बली में कांग्रेसी सदस्यों का बहुमत था, इसलिए उसे यह अधिकार न देकर असेम्बली के निर्वाचकों को दिया गया। आसाम के सिलहट ज़िले को जनमत द्वारा पूर्वी बंगाल या आसाम में से चुनाव का अधिकार दिया गया था।

(६) रियासतों को मंत्रिमिशन की योजनानुसार ही अपने बारे में स्वयं निश्चय करने की स्वतंत्रता कायम रखी गई थी।

पाकिस्तान का निर्माण

स्पष्टतः ३ जून की योजना में देश को बिलकुल स्वतंत्र दो भागों में विभक्त करने क अन्तिम निश्चय किया गया था। देश के राष्ट्रीय नेता और भारत की समस्त राष्ट्रीय जनता अपने देश के विभाजन से सहमत नहीं थी, किन्तु वे विवश थे। विदेशी शासन व गृहयुद्ध की ज्वाला से मुक्ति का और कोई उपाय उन्हें दिखाई नहीं देता था। इसलिए लाचार होकर इस घोषणा को देश ने स्वीकार कर लिया। पंजाब व बंगाल ने अपना निर्णय प्रान्त के विभाजन के पक्ष मे दिया। सिलहट ज़िले ने पूर्वी बंगाल से मिलने का निश्चय किया, व उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त और सिंध ने नई विधान परिषद् में सम्मिलित होने के पक्ष में निर्णय दिया। फल-स्वरूप पाकिस्तान का बनना अनिवार्य हो गया। १८ जुलाई १९४७ को ब्रिटिश पार्लमेंट ने १५ अगस्त १९४७ को देश के दोनों खंडों को पृथक्-पृथक शासन-सत्ता देने का बिल पास कर दिया। इसके अनुसार देश का विभाजन इस तरह हो गया—

हिन्दुस्तान—पूर्वी पंजाब, युक्तप्रान्त, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्यप्रान्त, मद्रास, आसाम, कुर्ग, दिल्ली और अंडमान द्वीप समूह।

पाकिस्तान—बलोचिस्तान, सीमाप्रान्त, सिंध, पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल, (आसाम के सिलहट ज़िले को सम्मलित कर के)।

बहावलपुर खैरपुर व कलात की रियासतें पाकिस्तान में शामिल हो गईं। धीरे-धीरे भारत की सीमावर्ती सभी रियासतें भी भारतीय संघ में सम्मिलित हो गईं।

पंजाब व बंगाल को लीग के घोर विरोध करने पर भी हिन्दू-

बहुल और मुस्लिम-बहुल प्रदेशों में बाँट दिया गया। सर रैडक्लिफ ने विवादग्रस्त सीमा का निर्धारण अपने फैसले द्वारा कर दिया।

इस तरह मुस्लिम लीग और मि० जिन्ना का स्वप्न पूर्ण हो गया और देश दो भागों में बँट गया। पाकिस्तान बन गया, किन्तु यहाँ इस आन्दोलन के इतिहास पर एक दृष्टि डालना अनुचित न होगा।

पाकिस्तान की कल्पना—पाकिस्तान का विचार सब से पहले प्रसिद्ध मुस्लिम कवि सर मुहम्मद इकबाल ने १९३० के लीग के अधिवेशन में पेश किया था। उन्होंने कहा था कि—"मैं पंजाब, सीमा प्रान्त, सिंध और बलोचिस्तान को एक पृथक् देश के रूप में संगठित देखना चाहता हूँ। इस देश को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त हो अथवा यह पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र रहे। मुझे पश्चिमोत्तर-भारत के मुसलमानों का अन्तिम उद्देश्य पश्चिमोत्तर भारतीय मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना प्रतीत होता है।" १९३३ में, जब कि लंदन में गोलमेज कान्फ्रैंस हो रही थी, कुछ मुस्लिम विद्यार्थियों ने ३ करोड़ मुसलमानों की ओर से पाकिस्तान के नाम से पृथक् मुस्लिम देश की माँग की थी। १९३५ में एक दूसरे मुस्लिम लेखक ने वर्तमान बंगाल, आसाम और हैदराबाद को भी पाकिस्तान में सम्मिलित कर देने की माँग की। हैदराबाद दक्षिण के मुस्लिम नेता डा० सैयद अब्दुल लतीफ ने १९३८-३९ में एक नई योजना पेश की। इसके अनुसार भारतवर्ष एक संगठित राष्ट्र नहीं, तथापि उस का विभाजन आवश्यक नहीं था। उनका विचार था कि भारत को १५ सांस्कृतिक क्षेत्रों में बाँट दिया जाय, जिनमें से ४ मुस्लिम और ११ हिन्दू हों। प्रत्येक क्षेत्र को अपना स्वतंत्र शासन अपने आप निर्धारित करने की पूरी स्वाधीनता हो। और वे सब स्वतंत्र राष्ट्र फिर एक केन्द्रीय सरकार में संगठित हों। उस केन्द्रीय सभा के अधिकार बहुत सीमित हों। मुस्लिम लीग ने इस समय तक भी पाकिस्तान की योजना को

स्वीकार नहीं किया था। वह इस सम्बन्ध में बहुत समय तक चुप रही और विभिन्न मुस्लिम विचारक व्यक्तिगत रूप से पाकिस्तान का प्रश्न उठाते रहे। लीग संघ-विधान की चर्चा करती रही। फिर भी १९३५ के विधान के अनुसार सात-आठ प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारों के स्थापित हो जाने के बाद मुस्लिम लीग ने भारत में प्रजातंत्र-शासन का विरोध प्रारंभ कर दिया था और प्रान्तीय मुस्लिम लीग में हिन्दू और मुसलमानों की पृथक् पृथक् जाति के रूप में चर्चा होने लगी थी। सितम्बर १९३९ में मुस्लिम लीग वर्किंग कमेटी ने घोषणा की कि भारतवर्ष की जनता विभिन्न जातियों में बँटी हुई है, इसलिए एक राष्ट्र के आधार पर एक राज्य का आदर्श इसके लिए उपयोगी नहीं होगा। सन् १९४० के खुले अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने लाहौर में बाकायदा पहली बार पाकिस्तान की माँग पेश की और अपने महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव में कहा—"ऐसी कोई वैधानिक योजना इस देश में अमल में नहीं आ सकती और न मुसलमानों को स्वीकृत हो सकती है, जिसे निम्नलिखित भौतिक सिद्धान्तों के आधार पर न बनाया जाय—

"भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरी के समीप स्थित इकाइयों की ऐसी हद बन्दी हो कि आवश्यक हेर फेर के बाद, जहाँ मुसलमान बहुसंख्या में हैं (जैसा कि भारत के उत्तर पश्चिमी और पूर्वी भागों में है) वहाँ उन्हें मिला कर स्वाधीन राज्यों की स्थापना की जाय, जिनमें शामिल होने वाली इकाइयाँ स्वशासन-भोगी और पूर्ण सत्ता-शाली रहें।" इस प्रस्ताव के बाद तो मुस्लिम लीग ने 'हिन्दू और मुसलमान दो पृथक् पृथक् राष्ट्र हैं, इसलिए उन्हें अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वाधीनता मिलनी चाहिए' इस नारे का लगातार और बहुत जोरों के प्रचार प्रारंभ कर दिया। लेकिन बार बार पूछे जाने पर भी मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की विस्तृत व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं किया कि उसकी सम्मति में कौन कौन से प्रदेश पाकिस्तान में आवेंगे

और पूर्वी पंजाब या पश्चिमी बंगाल, जहाँ हिन्दू संख्या में अधिक हैं, किस विभाग में रखे जावेंगे।

म० गाँधी का समझौता-प्रस्ताव—कांग्रेस ने मुस्लिम लीग से समझौते की चर्चा कई बार चलाई। म० गाँधी ने यह प्रस्ताव पेश किया कि युद्ध के बाद भारत के प्रत्येक प्रदेश के निवासियों से जनमत लिया जाय कि वे पाकिस्तान नामक स्वतंत्र राष्ट्र में रहना चाहते हैं या भारत को एक राष्ट्र मान कर उसके साथ रहना चाहते हैं। जिन प्रदेशों का बहुमत पाकिस्तान के पक्ष में होगा, उन्हें भारत के स्वतंत्र होने के बाद पाकिस्तान का स्वतंत्र पृथक् राष्ट्र बनाने का अधिकार होगा। विदेशी मामलों, रक्षा, यातायात, तटकर, व्यापार आदि के ठीक-ठीक संचालन के लिए दोनों राष्ट्रों में पृथक् संधि होगी। दोनों पृथक् राज्यों में अल्प-संख्यकों के हितों के संरक्षण के लिए कुछ आवश्यक विधान रहेंगे। मि० जिन्ना ने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकृत कर दिया। वे जन-मत तो लेना चाहते थे, लेकिन केवल मुसलमानों का, जब कि महात्मा गाँधी भौगोलिक आधार पर प्रत्येक क्षेत्र के सब निवासियों का मत लेना आवश्यक समझते थे। हिन्दू और मुसलमान पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं इस सिद्धान्त को उन्होने स्वीकार नहीं किया। उनकी सम्मति थी कि प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र अपने में एक इकाई है और उसे स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार होना चाहिए।

पाकिस्तान की व्याख्या दिसम्बर १९४५ में मि० जिन्ना ने एक प्रेस वक्तव्य देते हुए निम्नलिखित रूप से की—"पाकिस्तान के पश्चिमी भाग में पश्चिमोत्तर-सीमाप्रांत, बलोचिस्तान, सिंध और पंजाब रहेंगे, जब कि पूर्वी पाकिस्तान में बंगाल और आसाम रहेंगे। पाकिस्तान में प्रजातंत्र पद्धति रहेगी और हिंदुओं या अन्य अल्प-संख्यक जातियों के हितों को संरक्षण दिया जायगा।"

मंत्रिमिशन का मन्तव्य—ब्रिटिश-मंत्रिमंडल-मिशन ने १९४६ के प्रारंभ में पाकिस्तान की माँग पर मुस्लिम नेताओं से बहुत विचार-

विनिमय किया। उसने अपने वक्तव्य में इस प्रश्न की विस्तार से चर्चा करते हुए यह घोषणा की कि मुस्लिम लीग जिस पाकिस्तान को चाहती है, वह संभव नहीं है। उसने अपने वक्तव्य में लिखा था—

"पाकिस्तान की भावना मुसलमानों में इतनी दृढ़ और व्यापक है कि उसे केवल कागजी संरक्षणों द्वारा शान्त नहीं किया जा सकता। इसलिए हमने सब से पहले मुस्लिम लीग की माँग के अनुसार पूर्ण स्वतंत्र पाकिस्तान राष्ट्र के प्रश्न पर विचार किया। इस पाकिस्तान में दो क्षेत्र होंगे। एक उत्तर पश्चिम में, जिसमें पंजाब, सिंध, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त और ब्रिटिश बलोचिस्तान होंगे। दूसरा उत्तर पूर्व में, जिसमें बंगाल और आसाम रहेंगे। लीग इस बात के लिए उद्यत थी कि आगे चलकर सीमा-निर्धारण में आवश्यक परिवर्तन कर लिये जायँ लेकिन उसने इस बात पर जोर दिया कि पहले पाकिस्तान के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय। पाकिस्तान का पृथक राष्ट्र स्थापित करने का पहला तर्क इस आधार पर था कि मुस्लिम बहुमत को यह अधिकार है कि वह अपनी इच्छानुसार अपनी शासन-प्रणाली का निर्धारण कर सके। दूसरा तर्क यह था कि आर्थिक तथा शासन की दृष्टि से पाकिस्तान को व्यवहार्य बनाने के लिए इसमें ऐसे पर्याप्त क्षेत्र को मिलाने की आवश्यकता है जहाँ मुसलमान अल्प संख्या में हैं।

उपर्युक्त ६ प्रान्तों के पाकिस्तान में भी गैर-मुस्लिम अल्पमतों की जन संख्या जैसा कि नीचे के आँकड़ों से स्पष्ट है, काफी अधिक होगी :—

उत्तर पश्चिमी क्षेत्र	मुसलमान	गैर-मुसलमान
पंजाब	१,६२,१७,२४२	१,२२ १०,५७७
उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त	२७,८८,७९७	२,४९,२७०

सिंध	३२,०८,३२५	१३,२६,६८३
ब्रिटिश बलोचिस्तान	४,३८,९२०	६२,७०१
	२,२६,५३,८९४	१,३८,४०,२३१
	६२·०७%	३७·९३%
उत्तर पूर्वी क्षेत्र		
बंगाल	३,३०,०५,४३४	२,७३,०१,०९१
आसाम	३४,४२,४७९	६७,६२,२५४
	३,६४,४७,९१३	३,४०,६३,३४५
	५१·६९%	४८·३१%

शेष ब्रिटिश भारत की १८,८०,००,००० जन संख्या में फैले हुए मुस्लिम अल्पमत की संख्या प्रायः २ करोड़ है।

इन आँकड़ों से पता लगता है कि मुस्लिम लीग के दावे के अनुसार एक पूर्ण स्वतन्त्र पाकिस्तान राष्ट्र की स्थापना से साम्प्रदायिक अल्पमतों की समस्या हल न हो सकेगी। हम इस बात को भी न्याय-संगत नहीं समझते कि पंजाब बंगाल व आसाम के उन ज़िलों को स्वतंत्र पाकिस्तान में सम्मिलित किया जाय, जहाँ की जन-संख्या में गैर मुसलिमों का बहुमत है। जो भी तर्क पाकिस्तान की स्थापना के पक्ष में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, हमारे दृष्टिकोण से वही गैर-मुस्लिम बहुमत के क्षेत्रों को पाकिस्तान से पृथक् करने के पक्ष में प्रयोग किये जा सकते हैं। यह बात सिक्खों की स्थिति पर विशेष प्रभाव डालती है।

इस लिए हम ने इस बात पर विचार किया कि क्या एक छोटा स्वतन्त्र पाकिस्तान जिसमें केवल वही क्षेत्र हों, जहाँ मुसलमानों का बहुमत है, समझौते का आधार बनाया जा सकता है? इस प्रकार के

पाकिस्तान को मुस्लिम लीग बिलकुल अव्यावहारिक समझती है क्योंकि इससे (क) पंजाब की अम्बाला और जालंधर की पूरी कमिश्नरियाँ (ख) जिला सिलहट को छोड़ कर सारा आसाम प्रान्त और (ग) पश्चिमी बंगाल का एक बड़ा भाग जिसमें कलकत्ता भी, जहाँ मुसलमानों की संख्या २३·०६ प्रतिशत है, सम्मिलित है, पाकिस्तान में से निकल जायँगे। हमारा स्वयं भी विश्वास है कि ऐसा कोई भी हल जिसके द्वारा बंगाल और पंजाब का विभाजन हो, जैसा कि इस पाकिस्तान से होगा, इन प्रान्तों की जन संख्या के बहुत बड़े भागों की इच्छा के विरुद्ध होगा। बंगाल और पंजाब दोनों की अपनी अपनी समान भाषाएँ हैं और दोनों के साथ लंबा इतिहास और परम्परायें संबद्ध हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब का विभाजन करने पर सिक्ख भी विभाजित हो जायँगे और दोनों भागों की सीमाओं पर पर्याप्त संख्या में सिक्ख रह जायेंगे। इस लिए हम बाध्य होकर इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि पाकिस्तान का बड़ा या छोटा कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र साम्प्रदायिक समस्या का स्वीकृत हल प्रस्तुत नहीं कर सकते।

उपर्युक्त जोरदार तर्कों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण शासन-संबंधी, आर्थिक और सैनिक प्रश्न भी हैं। समस्त यातायात और डाक व तार का संगठन संयुक्त भारत के आधार पर स्थापित किया गया है। इसे छिन्न-भिन्न करना भारत के दोनों भागों के लिए अहितकर होगा। देश की संयुक्त रक्षा का प्रश्न और भी अधिक दृढ़ है। भारतीय सेनाएँ सामूहिक रूप से समस्त भारत की रक्षा के लिए संगठित की गयी हैं। सेना को दो भागों में बाँटना भारतीय सेना की उच्च योग्यता और दीर्घकालीन परम्पराओं पर आघात करेगा और उससे बड़ा खतरा उपस्थित हो सकता है। भारतीय नौसेना और भारतीय हवाई सेना का प्रभाव घट जायगा। प्रस्तावित पाकिस्तान के दो भागों में सब से अधिक आक्रमण के योग्य भारत की दो सीमाएँ सम्मिलित हैं

और गहरे प्रदेश की रक्षा-व्यवस्था के लिए पाकिस्तान के क्षेत्र अपर्याप्त सिद्ध होंगे।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय यह है कि विभाजित ब्रिटिश भारत के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ने में देशी रियासतों को अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

सब से अन्तिम बात यह भौगोलिक तथ्य है कि प्रस्तावित पाकिस्तान के दो हिस्से एक दूसरे से प्रायः ७०० मील की दूरी पर हैं और युद्ध तथा शान्ति दोनों ही कालों में इन दोनों भागों के बीच यातायात की व्यवस्था भारत की सद्भावना पर निर्भर रहेगी। इसलिए हम ब्रिटिश सरकार को यह सलाह देने में असमर्थ हैं कि जो शक्ति आज ब्रिटिश सरकार के हाथों में है वह बिलकुल स्वतन्त्र दो राष्ट्रों को सौंप दी जावे।"

ब्रिटिश मंत्रिमंडल के मिशन ने इसीलिए मुस्लिम प्रान्तों को अलग अलग गुट बनाने का अधिकार देकर बीच के एक सुझाव को पेश किया। किन इससे भारतीय स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। इसके बाद लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए जो कुछ किया और ब्रिटिश सरकार ने इसमें जो भाग लिया, उसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। मुस्लिम लीग को पाकिस्तान तो मिल गया, किन्तु उसकी महत्त्वाकाँक्षाओं की पूर्ति नहीं हुई। पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल के सम्पन्न प्रान्त उसे नहीं मिले। काश्मीर रियासत भी उससे मिलने को सहमत नहीं हुई। इसलिए उसने कबायलियों को सहायता देकर काश्मीर पर आक्रमण की योजना बनाई। पठान बड़ी संख्या में इस आक्रामक सेना में भरती हो गये। पीछे से पाकिस्तानी सेना ने स्वयं भी आक्रमण में भाग लिया। आक्रामक सेना के श्रीनगर के पास तक पहुँच जाने पर काश्मीर-सरकार ने भारत संघ में सम्मिलित हो जाने की घोषणा कर दी। फलतः वहाँ भारतीय सेनाओं को जाना और आक्रमणकारियों को पीछे हटाने के लिए युद्ध करना पड़ा। यह

युद्ध करीब सवा साल तक चलने के बाद संयुक्तराष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से इस शर्त पर बन्द किया गया है कि रियासत में पूर्ण शान्ति स्थापित होने पर स्थानीय जनता से मत लिया जायगा कि वह पाकिस्तान में सम्मिलित होना चाहती है या भारतीय संघ में ।

विभाजन का परिणाम

देश के विभाजन का भौगोलिक दृष्टि से भारतीय सीमा पर यह प्रभाव पड़ा—विभाजन से पूर्व देश का क्षेत्रफल १८,६५,२७८ वर्गमील था और आबादी करीब ४० करोड़ । अब क्रमशः ये दोनों संख्याएँ १६,२९,५७० वर्ग मील और ३३ करोड़ रह गई हैं । पूर्वी पंजाब का क्षेत्रफल लगभग ३५००० वर्गमील और जनसंख्या १ करोड़ २० लाख है ।

आबादी का परिवर्तन—देश के विभाजन को सब लोग सहन कर सकते थे और पाकिस्तान निवासी हिन्दू और सिख बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल सकते थे । आखिर मुस्लिम शासन में ६०० सौ साल (१२ वीं सदी से १८ वीं सदी तक) पंजाब रहा है । अपनी योग्यता व प्रतिभा के बल पर मुस्लिम शासन में हिन्दू अपनी ऊँची स्थिति बना चुके थे । यदि ऐसा हो जाता तो देश के विभाजन को लोग सहन कर लेते, किन्तु पिछले डेढ़ दो वर्ष से सांप्रदायिक उन्माद की जो ज्वाला देश में जल रही थी, उसने समस्त संसार के इतिहास में अभूतपूर्व स्थिति पैदा कर दी । पूर्वी पंजाब में मुसलमानों पर और पश्चिमी पंजाब में हिन्दू सिखों पर भीषण अत्याचार प्रारंभ हुए । पीड़ित व सताये हुए लोग अपने सदियों के पुराने घर-बार और हजारों लाखों रुपये के कारोबार को छोड़ कर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान जाने लगे । सीमाप्रान्त, सिंध और पश्चिमी पंजाब में भीषण रक्तपात, नरसंहार, लूटमार और बाजारों के बाजार जला देने के जो भयंकर काण्ड हुए, उनका स्मरण करके आज भी रोंगटे

खड़े हो जाते हैं। पैशाचिकता का नग्न तांडव हुआ। चलती हुई रेल-गाड़ियों को नहरों व नदियों के पुलों पर रोक के खुले आम लूटा गया और सैकड़ों हजारों लोगों को मार कर पानी में फेंक दिया गया। हजारों स्त्रियाँ भगाई गईं। करोड़ों रुपये की सम्पत्ति जला दी गई या लूट ली गई। भारतवर्ष आने वाले पुरुषों व स्त्रियों की तलाशी लेकर उनसे शरीर पर के कपड़ों के अलावा सब कुछ छीन लिया गया। इस काण्ड की प्रतिक्रिया पूर्वी पंजाब व दिल्ली में भी हुई। इन सब घटनाओं ने अल्पसंख्यकों का पाकिस्तान व पूर्वी पंजाब में रहना असम्भव कर दिया। स्वतन्त्र भारत की सरकार के सामने अपने जन्म के साथ ही यह समस्या अत्यन्त विकट रूप से सामने आई। एक ओर दिल्ली सदियों की पराधीनता के बाद स्वतंत्र होने का समारोह मना रहा था, दूसरी ओर लाहौर हिन्दू व सिखों के रक्त की होली खेल रहा था। भारत सरकार ने बिना विलम्ब किये पाकिस्तान की हिन्दू व सिख जनता को भारत लाने का प्रबन्ध किया। हवाई जहाजों का ताँता लग गया, सैकड़ों स्पेशल गाड़ियाँ चलाई गईं, लारियों व मोटरों की कतारें चलीं और उनकी रक्षा के लिए पुलिस व सेना की भी कुछ व्यवस्था की गई। परन्तु ६१ लाख लोगों को लाना आसान काम न था। लाहौर, शेखूपुरा व लायलपुर आदि जिलों से मीलों लम्बे, पैदल जत्थे रवाना हुए। इन जत्थों में ३० से ४० हजार तक व्यक्ति थे। इन जत्थों के लिए वायुयानों द्वारा भोजन, खाद्यान्न, औषधियाँ तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ भेजी गईं। मार्ग में इन पर मुसलमानों के छापामार दलों ने आक्रमण भी किये। स्त्रियों व बच्चों का अपहरण हुआ। इन सब शरणार्थियों को भारत की सीमा में लाकर उनके भोजन व निवास की अस्थायी व्यवस्था की गई। इस पर भारत-सरकार का करोड़ों रुपया व्यय हुआ। पूर्वी पंजाब से मुसलमान भी इसी तरह पाकिस्तान भेजे गये। देश में राज्य-क्रांतियाँ पहले भी हुई हैं; किन्तु इस तरह कल्पनातीत संख्या में जनता का

अपने सदियों के बसाये हुये घर व कारोबार छोड़ने का उदाहरण शायद समस्त इतिहास में नहीं मिलेगा।

अध्याय ५

देश स्वतंत्र हो गया

गत अध्याय में वर्णित कल्पनातीत और रोमांचकारी भयंकर काण्ड देश के विभाजन के परिणाम-स्वरूप हुआ। लेकिन यह भारी मूल्य चुका कर देश इतनी जल्दी स्वतंत्र अवश्य हो गया। १७६५ ई० में क्लाइव ने भारत के पूर्वी सिरे पर दीवानी के अधिकार लेकर देश में अँग्रेजी शासन की नींव डाली थी। उसके बाद से वह निरंतर बढ़ता गया और समस्त देश उनके कठोर नियंत्रण व अधिकार में आ गया। १५ अगस्त १९४७ को वह शासन समाप्त हो गया और भारतवर्ष स्वाधीन हो गया। स्वतंत्र भारत की प्रगति व समस्याओं का विवेचन करने से पहले हमें उस कानून से परिचित हो जाना चाहिए, जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतंत्रता प्रदान की।

औपनिवेशिक स्वराज्य का कानून

१५ अगस्त १९४७ की भाँति १८ जुलाई १९४७ की तिथि का भी भारतीय स्वातंत्र्य के इतिहास में अपना एक महत्त्व है। इसी दिन ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा स्वीकृत होकर भारतीय स्वतंत्रता बिल ऐक्ट बना था। इस बिल के उद्देश्य यह थे—दो स्वतंत्र उपनिवेशों के निर्माण की व्यवस्था करना, नई परिस्थितियों में भारतीय शासन संबंधी सन् १९३५ के ऐक्ट की अनावश्यक धाराओं की जगह नयी धाराएँ रखना तथा दो उपनिवेशों के निर्माण के परिणाम स्वरूप अन्य बातों की व्यवस्था करना।" यद्यपि इस बिल में दो उपनिवेशों

की स्पष्ट चर्चा थी, तथापि ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० एटली ने कहा कि यह बिल अन्तिम निर्णय नहीं है, वरन् एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसके कारण भारतवर्ष तथा पाकिस्तान के प्रतिनिधियों को अपने-अपने विधान बनाने तथा अति कठिन संक्रमणकाल की व्यवस्था करने का अवसर मिल जाय।

इस ऐक्ट की पहली धारा में कहा गया था कि १५ अगस्त १९४७ से भारतवर्ष में दो स्वतंत्र उपनिवेश बनेंगे, जिनके नाम क्रमशः इंडिया और पाकिस्तान होंगे। इस ऐक्ट की दूसरी तीसरी और चौथी धाराओं में दोनों उपनिवेशों के प्रदेश की व्याख्या की गई थी। पाकिस्तान में बलोचिस्तान, सीमा प्रान्त, सिंध, पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल की गणना करके ब्रिटिश भारत के शेष प्रदेशों को इंडिया का नाम दिया गया। यह भी गुंजायश रखी गई कि दोनों उपनिवेश पारस्परिक सहमति से सीमा में परिवर्तन कर लें भारतीय रियासतों को एक या दूसरे उपनिवेश में सम्मिलित होने की स्वतंत्रता दी गई। विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं की सहमति से दोनों उपनिवेशों के गवर्नर-जनरल बनाये गये।

पहले ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा पास किये गये नियमों को बदलने या रद करने का अधिकार भारत की असेम्बली को न था। नये क़ानून द्वारा यह बंधन हटा लिया गया। गवर्नर-जनरल से असेम्बली के निर्णय को रद करने का अधिकार भी ले लिया गया। सम्राट् की अनुमति के लिए भी अब कोई प्रस्ताव रिजर्व करने की आवश्यकता नहीं रही। गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार छीन लिये गये। इस क़ानून के अनुसार ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा पास किया गया कोई क़ानून तब तक लागू नहीं हो सकता, जब तक कि भारतीय धारा सभा उसे स्वीकार न कर ले। एक और महत्त्वपूर्ण अधिकार दोनों उपनिवेशों को यह दिया गया कि उनकी धारा सभाएँ आन्तरिक और बाह्य सभी क्षेत्रों के क़ानून बना सकती हैं।

रियासतें व ब्रिटिश सरकार—पहले सम्राट् की सरकार ब्रिटिश भारत की सरकार के लिए उत्तरदायी थी। वह देशी रियासतों और कबायली जातियों से संधियों और संबंधों के आधार पर संबंधित थी। नये क़ानून द्वारा "निर्धारित तिथि से सम्राट् की ब्रिटिश सरकार पर उन प्रदेशों के शासन का कुछ भी उत्तरदायित्व न रह जायगा, जो उस तिथि तक ब्रिटिश भारत में सम्मिलित थे। उसी दिन से भारतीय रियासतों के संबंध में सम्राट् की सार्वभौम सत्ता की भी इतिश्री हो जायगी। इसके साथ साथ वे संधियाँ और समझौते भी, जो ऐक्ट के पास होने के समय सम्राट् और भारतीय रियसतों के संबंध के विषय में प्रचलित थे, वे कार्य, जो सम्राट् भारतीय रियासतों के संबंध में कर सकते थे, वे बंधन जो सम्राट् पर भारतीय रियासतों तथा उनके नरेशों के संबध में लागू थे, और वे सब अधिकार जो उस दिन तक संधियों, प्रथाओं, स्वीकृतियों तथा अन्य कारणों से भारतीय रियासतों में सम्राट् के थे, नियत दिन से समाप्त समझे जावेंगे।"

इस ऐक्ट में यह भी हिदायत दी गई कि ऐक्ट की उक्त व्यवस्था दोनों उपनिवेशों पर पृथक् पृथक् लागू होगी और १५ अगस्त १९४७ से दोनों की न तो उभयनिष्ठ सरकार रहेगी और न व्यवस्थापक सभा। विधान परिषदों को संघीय धारा सभा के भी अधिकार दे दिये गये। भारत मंत्री को इंडियन सिविल-सर्विस तथा अन्य पदों पर नियुक्ति करने का अधिकार था, वह छीन लिया गया। वस्तुतः भारत मंत्री का पद ही उठा दिया गया।

एक धारा द्वारा गवर्नर-जनरल को हिदायत दी गई कि वे भारतवर्ष से ब्रिटिश सेना के हटाये जाने की व्यवस्था करें। कुछ और भी धाराएँ थीं, जिनमें परिवर्तन काल के लिए कुछ व्यवस्था की गई थी।

१५ अगस्त—यह है उस महत्त्वपूर्ण क़ानूनका सारांश जो ब्रिटिश

पार्लमेंट ने भारत के संबंध पास किया था। इस कानून पर १४-१५ अगस्त की बीच की रात को बारह बजे अमल किया गया। विधान-परिषद् में वायसराय लार्ड मौंटबेटन ने सम्राट् की ओर से स्वाधीनता संदेश देते हुए यह घोषणा की कि अब वे वायसराय नहीं, एक वैधानिक गवर्नर-जनरल बन कर रहेंगे। विधान-सभा के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र प्रसाद ने इसका जवाब देते हुए कहा कि "आज से ब्रिटेन का भारत पर प्रभुत्व समाप्त होता है और हमारा ब्रिटेन के साथ ऐसा संबंध कायम होता है, जो बराबरी का है।" भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्र के नाम संदेश देते हुए कहा—'आज है वह पुण्य दिवस, भाग्य विधाता द्वारा नियत किया हुआ वह दिन, जब कि सदियों की नींद और संघर्ष के बाद भारत फिर सजग, सजीव, समर्थ और स्वाधीन होकर उठ खड़ा हुआ है। ......हमारे लिए इतिहास का एक नया अध्याय प्रारंभ हो रहा है। इस इतिहास के नायक हम होंगे।" विधान-परिषद् ने वायसराय की मार्फत ब्रिटिश सरकार को सूचना दी कि उसने देश का शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया है।

विधान-परिषद् के सब सदस्यों ने निम्नलिखित प्रतिज्ञा की—

"इस शुभ मुहूर्त पर जब हिन्दवासियों ने त्याग और तप से स्वतंत्रता हासिल कर ली है मैं (सदस्य का नाम) जो इस विधान-परिषद् का सदस्य हूँ, अपने को बड़ी नम्रता से हिन्द और हिन्दवासियों की सेवा के लिए अर्पण करता हूँ, ताकि यह प्राचीन देश संसार में अपना उचित और गौरवपूर्ण स्थान पा लेवे और संसार में शान्ति स्थापना करने और मानव जाति के कल्याण में अपनी पूरी शक्ति लगा कर खुशी खुशी हाथ बँटा सके।

स्वतंत्र सरकार का संगठन

पं० जवाहर लाल नेहरू के प्रधानमंत्रित्व में नया मंत्रि-मंडल

बनाया गया। विदेश मंत्री का काम भी उन्होंने स्वयं लिया। सरदार बल्लभ भाई पटेल गृह-सूचना तथा रियासत विभाग के अध्यक्ष और उपप्रधानमंत्री नियत हुए। श्री राजेन्द्रप्रसाद खाद्य-मंत्री और सरदार बलदेवसिंह युद्ध-मंत्री नियत किये गये। ग्यारह अन्य नेता विभिन्न विभागों के मंत्री बनाये गये।

विधान-निर्माण के लिए बनाई गई विधान-परिषद् को व्यवस्थापक सभा का भी कार्य सौंप दिया गया। लार्ड मौंटबेटन स्वतंत्र भारत के वैधानिक गवर्नर-जनरल बनाये गये।

प्रान्तीय सरकारों का भी पुनर्निर्माण किया गया। १५ अगस्त से पूर्व ही सब गवर्नरों ने अपने त्याग पत्र दे दिये थे। मद्रास व ई को छोड़ कर सभी प्रान्तों के गवर्नर भारतीय नियत किये गये। कुछ समय बाद इनमें विभिन्न आवश्यकताओं से परिवर्तन किये गये। मद्रास व बंबई के अंग्रेज गवर्नर भी अपनी अवधि समाप्त होने पर चले गये। अब १९४९ के प्रारंभ में विभिन्न प्रान्तों के गवर्नर निम्नलिखित हैं :—

पूर्वी पंजाब—श्री चन्दूलाल त्रिवेदी।
पश्चिमी बंगाल—श्री कैलाशनाथ काटजू
बिहार—श्री माधव श्रीहरि अणे।
मद्रास—भावनगर के महाराजा।
युक्त प्रान्त—श्रीमती सरोजिनी नायडू।
मध्य प्रान्त—श्री मंगलदास पकवासा।
उड़ीसा—श्री आसफ अली।
बंबई—श्री महाराजसिंह।
आसाम—श्री श्रीप्रकाश

पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल में नये मंत्रिमंडल बनाये गये। अन्य प्रान्तों के मंत्रिमंडलों में भी छोटे मोटे परिवर्तन हुए और इस

तरह भारत के स्वतंत्र होने के बाद नये सिरे से केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों का संगठन हो गया।

अध्याय ६

भारत के विविध राजनीतिक दल

भारत में विविध राजनीतिक दल हैं। देश की राजनीति पर इनका अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है। देश की समस्याओं को समझने के लिए इन दलों के इतिहास व उनके दृष्टिकोण से परिचित होना आवश्यक है :—

कांग्रेस

इंडियन सिविल सर्विस के एक रिटायर्ड सदस्य मि० एलन औक्टेवियन ह्यूम द्वारा १८८५ ई० में स्थापित इंडियन नेशनल कांग्रेस आज भारत की सब से बड़ी राजनीतिक संस्था है। इसके आज लाखों सदस्य हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी आदि सभी धर्मों के स्त्री पुरुष इसके सदस्य हैं।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सितंबर १८८८ में बंबई में हुआ था। उस समय कांग्रेस के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे—

१—भारत में राष्ट्रीय चेतनता का भाव पैदा करना।

२—भारतीय राष्ट्र का उत्थान।

३—भारत के दुःखों को दूर करा कर भारत व ब्रिटेन में अच्छे संबंध स्थापित करना।

कुछ साल बाद कांग्रेस के नेता दो दलों में विभक्त हो गये। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, ला० लाजपतराय और श्री विपिन चन्द्र पाल कुछ उग्र विचार रखते थे। बंगाल के टुकड़े कर देने से बंगाल में और उसके साथ साथ अन्य प्रान्तों में भी सरकार के प्रति

असंतोष बढ़ रहा था। विदेशी माल के बहिष्कार के आन्दोलन ने उग्र विचार के लोगों का बल बहुत बढ़ा दिया। नरम दल इतना आगे बढ़ना नहीं चाहता था। दोनों में विरोध शुरू हुआ। नरमदल ने कांग्रेस पर अधिकार कर लिया और गरमदल कांग्रेस से अलग हो गया। १९१६ में दोनों दल फिर मिल गए। और यहीं से कांग्रेस का आन्दोलन व्यापक होने लगा। श्रीमती एनी बेसेंट के होमरूल आंदोलन से इसे और भी बल मिला। १९१९ में जब नये शासन-सुधारों की घोषणा हुई, तो फिर दोनों दलों में मतभेद हो गया। कांग्रेस ने बहुमत से इन्हें अस्वीकार्य घोषित किया। इस पर नरमदल सदा के लिए कांग्रेस से अलग हो गया। १९२० में महात्मा गांधी ने कांग्रेस का शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का इसी वर्ष देहान्त हो गया। शेष गरमदली नेता गांधी जी के साथ हो गये और बचे खुचे नरमदली नेता कांग्रेस से अलग हो गए। इसके बाद कांग्रेस का इतिहास, गांधी जी का जीवन और भारत की राष्ट्रीय प्रगति का इतिहास वस्तुतः एक हो गए।

युद्ध के बाद जब सरकार ने रौलट ऐक्ट पास किया, तो कांग्रेस ने गान्धी जी के नेतृत्व में इस का तीव्र विरोध किया। गान्धी जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी और देशव्यापी आन्दोलन छिड़ गया। जलियाँवाला बाग में पुलिस ने एक सभा पर गोली चलाई, इससे देश में असन्तोष और बढ़ा। ख़िलाफ़त और जलियाँवाला-गोलीकांड के सवाल को लेकर म० गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने असहयोग की घोषणा कर दी। सैकड़ों लोगों ने सरकारी नौकरियाँ और पदवियाँ छोड़ दीं। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल कालिज छोड़ दिये, अदालतों और विदेशी कपड़े का बहिष्कार होने लगा। प्रिंस आफ़ वेल्स का उनके भारत आने पर बहिष्कार किया गया। मुसलमानों ने भी इस आंदोलन में पूरा साथ दिया। कांग्रेस स्वयं-सेवक दल को ग़ैर-क़ानूनी करार देने से इस संघर्ष ने सत्याग्रह का रूप धारण कर

लिया। देशबन्धु श्री चित्तरंजन दास और पं० मोतीलाल नेहरू लाखों की आमदनी छोड़ कर सत्याग्रह का नेतृत्व करने लगे। २०००० सत्याग्रही स्वयंसेवक जेलों में पहुँच गये। गांधी जी ने बारडोली में लगानबन्दी का सत्याग्रह करने की घोषणा की, लेकिन इन्हीं दिनों चौरीचौरा का हत्याकांड हो गया। गांधी जी का यह संग्राम अहिंसात्मक था। उन्होंने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। कुछ ही समय में सांप्रदायिक विद्वेष फैल जाने के कारण कांग्रेस का प्रभाव समस्त देश में कुछ कम हो गया।

कुछ साल ऐसे ही बीते। देश के वातावरण पर कांग्रेस का प्रभाव कम ही रहा, परन्तु जब सरकार ने भारत को नये शासन-सुधार देने की जाँच के लिए साइमन कमीशन बिठाया, तब उसमें एक भी भारतीय न देखकर समस्त भारत में फिर असंतोष छा गया। साइमन कमीशन का देशव्यापी बहिष्कार हुआ। पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में सब राजनीतिक दलों ने शासन-विधान की योजना तैयार की। कलकत्ता कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा माँग की कि सरकार एक वर्ष तक औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे, अन्यथा कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करेगी। लाहौर में पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद और पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा का प्रस्ताव पास कर दिया गया। तब से अब तक कांग्रेस का ध्येय यही है।

स्वराज्य प्राप्ति के लिए कांग्रेस ने १९३० में सत्याग्रह कर दिया। कई कानून तोड़े गये और ५०-६० हजार स्वयं सेवक गिरफ्तार हो गये। गांधी-वायसराय समझौते से इस सत्याग्रह की समाप्ति हुई। गांधी जी कांग्रेस की ओर से गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए लंडन गये। वहाँ से आते ही उन्होंने दूसरी बार सत्याग्रह शुरू कर दिया। लेकिन १९३४ में यह वापस ले लिया गया।

जब १९३७ में नया प्रान्तीय विधान शुरू हुआ, तो कांग्रेस ने भी चुनाव लड़े। कांग्रेस को इन चुनावों में इतनी सफलता मिली कि ६ प्रांतों—मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रान्त, बिहार, उड़ीसा और मध्य-प्रदेश में कांग्रेसी मन्त्रिमंडल बन गये। पीछे से सीमा-प्रान्त और आसाम में भी कांग्रेसी सरकार स्थापित हो गई।

प्रांतों का शासन-सूत्र हाथ में लेते ही कांग्रेस ने शराब-बन्दी का भारी क़दम उठाया। इससे प्रान्तीय सरकारों को लाखों रुपये की हानि उठानी पड़ी। अस्पृश्यता-निवारण के सिलसिले में तथा किसानों और मज़दूरों की सहायता के लिए कई कानून पास किये गये। मंत्रियों का वेतन ५०० रुपया मासिक नियत किया गया। इस समय कांग्रेस का सम्मान इतना अधिक व्यापक था कि १९३८ में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या ६० लाख हो गई, जब कि दो वर्ष पूर्व यह संख्या सिर्फ ६ लाख थी।

कांग्रेस आठ प्रान्तों का शासन-चक्र चलाती रहती, यदि दो साल बाद ही यूरोप में युद्ध न छिड़ जाता। ब्रिटिश सरकार के साथ भारत सरकार ने भी युद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने युद्ध के प्रयत्नों में सहयोग देने से इन्कार कर दिया और मंत्रि-पदों से इस्तीफ़ा दे दिया। कांग्रेस की इस संबंध में यह नीति थी कि भारतवर्ष संसार में स्वतंत्रता, न्याय और समानता आदि वे सब आदर्श कार्यान्वित होते हुए देखना चाहता है जिनके नाम पर यह युद्ध लड़ा जा रहा है। भारतवर्ष इस पुण्य कार्य में अवश्य सहयोग देता, लेकिन ऐसा सहयोग केवल स्वतंत्र भारत दे सकता है, जिसमें इन आदर्शों का स्वयं पालन होता हो। विदेशी दासता की शृंखलाओं में बँधा भारत युद्ध में सहायता दे कर केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद को बल देता है। इस युद्ध में भारतीय लोकमत की सहमति के बिना उसे युद्ध में घसीटना अन्याय भी है। सरकार युद्धोद्देश्यों को प्रकट नहीं कर रही थी और अटलांटिक चार्टर के

संबंध में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि० चर्चिल के यह वक्तव्य देने के कारण कि उसका भारत से कोई संबंध नहीं है, कांग्रेसी क्षेत्रों में असंतोष लगातार बढ़ता गया। सरकार के साथ समझौते के लिए कई प्रयत्न हुए, लेकिन सरकार आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं हुई। इससे असंतुष्ट होकर कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा कर दी। कांग्रेस के प्रायः सभी नेता, प्रान्तों के भू०पू० मंत्री और असेंबलियों के सदस्य जेलों में डाल दिये गये। यह सत्याग्रह १९४१ के अंत तक रहा, जब कि सरकार ने सब राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया।

जापान के युद्ध में कूद पड़ने के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत खराब हो गई थी। जापान की सेनाएँ मार्च १९४२ में बरमा पर अधिकार कर चुकी थीं। ऐसे नाजुक समय में ब्रिटिश सरकार की ओर से कुछ प्रस्ताव लेकर सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स भारत में आये। उनसे कोई समझौता न होने पर कांग्रेस ने बंबई में ८ अगस्त को सरकार से 'भारत छोड़ो' की माँग की और सत्याग्रह-संचालन के अधिकार महात्मा गाँधी को दे दिये। सरकार ने उन्हें तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं को बात-चीत का और कोई मौका दिये बिना प्रातःकाल ही गिरफ्तार कर लिया। सारे देश में हजारों कांग्रेसी गिरफ्तार किये गये। इन गिरफ्तारियों से भारत में असंतोष ने जो भीषण रूप धारण किया, उसकी चर्चा हम पीछे कर आये हैं।

कांग्रेस पर से १४ जून १९४५ को पाबंदी उठाई गई और उसके नेताओं को जेल से रिहा कर के शिमला बुलाया गया। इसके बाद केन्द्र और प्रान्तों में जो चुनाव हुये, उनसे यह प्रकट हो गया कि कांग्रेस का देश पर कितना प्रभाव है। केन्द्रीय असेंबली में ५७ सीटों पर कांग्रेस का अधिकार हो गया। हिन्दू महासभा, जस्टिस पार्टी, कम्यूनिस्ट पार्टी आदि विविध राजनीतिक दलों को उसने चुनाव में बुरी तरह हराया। २९ सीटों पर तो कांग्रेसी निर्विरोध

चुने गये। सम्मिलित चुनाव के सभी क्षेत्रों में कांग्रेस की जीत हुई। कांग्रेस के ६० उमीदवारों में से केवल ४ उमीदवार हारे।

ब्रिटिश भारत के निम्नलिखित आठ प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमंडल काम करने लगे—

आसाम, युक्तप्रान्त, सीमाप्रान्त, उड़ीसा, बंबई, बिहार, मध्यप्रांत और मद्रास।

लेकिन इसके बाद तो सारी दुनिया ही पलटने लगी। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए जिस तरह हिंसा और बर्बरता का आश्रय लिया, उसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। कांग्रेस के सामने बड़ी विषम समस्या थी। पंजाब व बंगाल में सांप्रदायिकता का तांडव देख कर उसने दोनों प्रान्तों के विभाजन की राय दी और अन्त में उसने ३ जून को देश-विभाजन की योजना को भी स्वीकार कर लिया। अगस्त ४७ में भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया और कांग्रेस ने अन्य गैर कांग्रेसी प्रमुख पुरुषों के सहयोग से देश का शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया।

देश के स्वतंत्र होते ही कांग्रेस के सामने सांप्रदायिक विद्वेष की जो विकट समस्या आई, उसके कारण कांग्रेस बहुत चिन्तित हो गई। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में उसने देश की सांप्रदायिक एकता को कायम रखने की बहुत कोशिश की। कांग्रेसी सरकारों ने इधर बहुत शक्ति लगाई। इसके प्रयत्नों का ही यह परिणाम हुआ कि देश में मुसलमान रह सके। कांग्रेस का अब भी यह मंतव्य था कि हिन्दू और मुसलमान दो पृथक् राष्ट्र नहीं हैं। देश में सांप्रदायिकता या धार्मिकता के आधार पर नहीं, विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर शासन होना चाहिए। उसने एक प्रस्ताव में यह स्पष्ट किया कि यद्यपि वह देश के विभाजन पर सहमत हो गई थी, किन्तु वह भारत में दो या दो से अधिक राष्ट्रों की सत्ता को स्वीकार नहीं करती। उसका यह विश्वास सही था कि सारा भारत एक राष्ट्र है, जो अटूट

सांस्कृतिक व ऐतिहासिक कड़ियों से जुड़ा हुआ है।

नया विधान—देश के स्वतंत्र होने के बाद कांग्रेस के विधान में भी परिवर्तन की आवश्यकता समझी गई। अब तक वह स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करने वाली संस्था थी। अब देश का शासन-सूत्र उसके हाथ में था। महात्मा गांधी ने कांग्रेस को राजनीति छोड़ कर विशुद्ध रचनात्मक कार्य करने की सलाह दी। लेकिन कांग्रेस ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया, फिर भी उनकी बहुत सी बातों को स्वीकार कर लिया। कांग्रेस का उद्देश्य भारतीयों की उन्नति व ऐसे सम्मिलित सहकारी स्वराज्य की स्थापना करना स्वीकार किया गया, जिसमें सब का सहयोग हो तथा जो सब को समान अवसर देने एवं राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की समानता पर आधारित हो तथा जिसका लक्ष्य विश्वशान्ति तथा विश्व-बंधुत्व की स्थापना हो। देश के प्रत्येक वयस्क को चन्दा दिये बिना प्रारम्भिक कांग्रेस पंचायतों के चुनाव में मत देने का अधिकार दिया गया। इन पंचायतों की सदस्यता के लिए मद्यनिषेध, खादी धारण तथा १) शुल्क शर्तें रखी गई हैं। इन पंचायतों के सदस्य प्रति एक लाख की आबादी के पीछे कांग्रेस प्रतिनिधियों का चुनाव करेंगे।

कांग्रेस के संगठन में एक और बड़ा परिवर्तन हुआ है। पहले रियासतों में कांग्रेस का संगठन नहीं था। लेकिन अब उनके भारतीय संघ में सम्मिलित हो जाने के कारण उनमें भी कांग्रेस की स्थापना कर दी गई है। वहाँ की प्रजा-परिषदें ही कांग्रेस के रूप में परिणत हो गई हैं।

देश के स्वतंत्र होने के बाद से कांग्रेस के सामने दो मुख्य समस्याएँ और उपस्थित हुईं—कांग्रेसी सदस्यों की अनैतिकता और आर्थिक कार्य-क्रम। कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि बहुत से कांग्रेसी कार्यकर्ता शासन चक्र हाथ में आ जाने के कारण सेवा का भाव छोड़ कर स्वार्थ-साधना में लग गये हैं और देश में भ्रष्टाचार बहुत

बढ़ गया है। इस दिशा में कांग्रेस ने बार बार जनता का ध्यान खींचा है और रचनात्मक कार्यक्रम की ओर अधिक ध्यान देने की प्रेरणा की है।

दूसरी समस्या भी कम टेढ़ी नहीं है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद मजदूर व किसान अपनी स्थिति सुधारने की माँग करने लगे। यह स्वाभाविक था और कांग्रेस इसके लिए वचन-बद्ध थी। कांग्रेस ग्रामोद्योगों के प्रचार को भी आवश्यक समझती थी, किन्तु इधर देश की आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि बड़े उद्योगों व उद्योगपतियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इसलिए कांग्रेस ने मध्य मार्ग अपनाया। समस्त उत्पादन देश-हित के लिए हो, किसी वर्ग का शोषण न हो, मजदूरों को न केवल उद्योग के लाभ में भाग मिले, किन्तु संचालन व प्रबंध में भी उनका सहयोग लिया जाय, जमींदारी प्रथा समाप्त की जाय। वर्ग-संघर्ष को रोकने के लिए पंचायत व आपसी समझौते की प्रथा को स्वीकार किया गया। ग्रामोद्योगों को उन्नत करने का निश्चय किया गया और मजदूरों के आन्दोलन में कांग्रेसियों को भाग लेने का अनुरोध किया गया। औद्योगिक शान्ति कायम रखने के लिए कांग्रेस ने एक पृथक् मजदूर-विभाग की भी स्थापना की।

कांग्रेस को शासक दल की हैसियत से विभिन्न कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, इसलिए उसके प्रति कहीं कहीं असंतोष भी प्रकट होने लगा है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि आज देश की सब से अधिक लोकप्रिय संस्था वही है।

मुस्लिम लीग

भारत की दूसरी सब से बड़ी राजनीतिक और संगठित पार्टी मुस्लिम लीग थी। पिछले कुछ सालों में इसका प्रभाव और संगठन बहुत बढ़ गया था।

आल-इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना १९०६ में हुई। इसका उद्देश्य मुसलमानों में पृथकता का भाव पैदा कर के राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना था। १९१६ में कांग्रेस से समझौते के कारण इसका प्रभाव कुछ बढ़ गया था, लेकिन पीछे सदस्यों में आपसी फूट और वैमनस्य के कारण इसका प्रभाव नहीं के बराबर हो गया। यह नवाबों, जगीरदारों, जमींदारों या संपन्न मुसलमानों की संस्था रही। इसका साधारण जनता में कोई प्रभाव न था। १९३६ तक यही हालत रही। मि० जिन्ना के हाथ में जब से मुस्लिम लीग की बागडोर आई, इसका संगठन और प्रभाव बहुत बढ़ गया। नये विधान के अनुसार प्रान्तीय शासन के अमल में आने पर मुस्लिम लीग ने कांग्रेसी सरकारों के मार्ग में रुकावटें पैदा कीं। इन रुकावटों को दूर करने तथा केन्द्रीय स्वाधीनता के उद्देश्य में सहयोग प्राप्त करने के लिए गांधी जी ने मि० जिन्ना से समझौते की बात-चीत प्रारंभ की, लेकिन इस बात चीत का कोई फल न निकला। उधर ब्रिटिश सरकार कोई भी नया वैधानिक कदम उठाने से पहले हिन्दू-मुसलमानों के समझौते पर जोर देती रही। इससे विवश होकर कांग्रेस ने समझौते की बड़ी कोशिशें कीं, लेकिन मुस्लिम लीग किसी समझौते पर तैयार न हो सकी, वह लगातार कांग्रेस से दूर होती गई।

मुस्लिम लीग का संगठन ज्यों ज्यों व्यापक होता गया, त्यों त्यों उसमें नया रक्त भी आने लगा और उसके प्रभाव के कारण १९३७ में इसने अपना उद्देश्य भारत की पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दिया, परन्तु साथ ही मुसलमानों के स्वार्थों और अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी पर जोर दिया। दो साल तक वह अल्प-संख्यकों के अधिकारों के स्पष्टीकरण का आन्दोलन करती रही। कांग्रेस ने कई बार अल्प-संख्यकों के धर्म, भाषा, संस्कृति, आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा का आश्वासन दिया, लेकिन फिर भी लीग उससे संतुष्ट नहीं हुई। वह अपने धर्म, संस्कृति और भाषा के खतरे की आवाज़

बार बार उठाती रही।

१९३८ के अन्त में यूरोपियन युद्ध प्रारंभ हो गया। इस अवसर पर लीग ने कहा कि युद्ध में मुसलमानों का सहयोग तभी मिल सकता है, जब कि सरकार मुसलमानों की एक-मात्र संस्था के रूप में लीग को स्वीकार कर के मुसलमानों की सब माँगे स्वीकार करे। भारत में इंग्लैंड सा प्रजातन्त्र शासन नहीं चल सकता, क्योंकि इसका अर्थ होगा बहुसंख्यक हिन्दुओं का राज, और मुसलमान हिन्दुओं के शासन में रहना स्वीकार नहीं कर सकते। भारतीय लोकमत लिये बिना भारत को युद्ध में डालने के विरुद्ध जब कांग्रेसी सरकारों ने इस्तीफे दे दिये, तब मि० जिन्ना ने मुसलमानों से मुक्ति-दिवस—कांग्रेसी शासन से राहत का दिन—मानने की अपील की।

१९४० में मुस्लिम लीग ने एक नया कदम उठाया और लाहौर के अधिवेशन में भारत को दो राष्ट्रों में बाँटने की माँग पेश की। प्रस्ताव में कहा गया था कि संघ-विधान और यूरोपीय देशों का सा प्रजातंत्र मुसलमानों को कभी स्वीकृत नहीं हो सकता। मुसलमान किसी भी ऐसे विधान को नहीं मानेंगे, जो उनकी सम्मति व स्वीकृति से न बनाया गया हो। मुसलमान ऐसा ही विधान स्वीकार कर सकते हैं, जिसका आधार भारत के मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों (पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर) को एक अलग पूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र बनाना हो। भारत के दूसरे हिन्दू-प्रधान प्रान्तों में भी मुसलमानों के हितों की पूरी गारंटी दी जाय। इस तरह के दो टुकड़े कर देने की माँग का नाम ही पाकिस्तान योजना प्रसिद्ध हो गया है। यह भी माँग की गई कि इन दोनों राष्ट्रों को अपनी अपनी सेना रखने, अपनी मुद्रा चलाने आदि का पूर्ण अधिकार हो। इसका आधार उनकी यह कल्पना है कि मुसलमान अलग राजनीतिक जाति है। १९४१ के अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने हैदराबाद रियासत को भी, जिसका शासक निज़ाम है, पाकिस्तान के साथ जोड़ने की माँग पेश की।

काँग्रेस के गैर कानूनी करार दिये जाने और कांग्रेसी नेताओं के जेल में चले जाने के बाद मुस्लिम लीग ही एकमात्र सार्वजनिक संस्था देश में रह गई। दो तीन प्रान्तों में मुस्लिम लीगी सरकारें भी कायम हुईं, इससे उसका प्रभाव और बढ़ गया। पिछले तीन चार वर्षों से उसका एकमात्र उद्देश्य पाकिस्तान की स्थापना रहा है। जून १९४५ में शिमला में जो कान्फ्रेंस हुई, उसमें मि० जिन्ना ने इस बात का भी आग्रह किया कि मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के सिवा एक भी मुसलमान वायसराय की कार्य-समिति में न लिया जावे। इसी आग्रह पर यह कान्फ्रेंस असफल हुई। कांग्रेस से भी समझौते की जो चर्चाएँ हुईं, उनमें भी लीगी नेताओं का यही आग्रह था। कांग्रेस ने इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया क्योंकि इसका अर्थ यह था कि कांग्रेस की अपनी स्थिति केवल हिंदू संस्था की हो जाती। उसका यह दावा था कि उसमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिख सभी सदस्य हैं। मौ० आजाद या दूसरे बहुत से मुसलमान उसके सभापति तक रहे हैं।

ब्रिटेन के मंत्रिमिशन ने जो घोषणा की उसमें मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया गया था। एक ओर जहाँ उसने विविध प्रांतों को अलग गुटों में संगठित होने का विधान किया, वहाँ यह भी स्पष्ट रूप से बता दिया कि भारत में पाकिस्तान क़ायम नहीं हो सकता।

जून १९४६ में स्थायी सरकार बनाने की असफलता का प्रधान कारण मुस्लिम लीग का वही आग्रह रहा कि लीग ही मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था है। भारत मंत्री लार्ड पैथिक लारेंस और सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने लीग के इस दावे का खंडन किया, यद्यपि उसे अत्यन्त प्रभावशाली संस्था बताया। इसमें संदेह नहीं कि कुछ वर्षों में लीग ने अपना प्रभाव बहुत बढ़ा लिया। नये चुनावों से भी इसकी पुष्टि हुई। केन्द्रीय असेंबली में सम्मिलित चुनाव की सीटों को छोड़

कर सभी मुस्लिम सीटों पर लीग ने अधिकार कर लिया। प्रांतों में भी कुछ अपवाद छोड़ कर सभी मुस्लिम सीटों पर लीगी सदस्य चुने गये। सीमा प्रांत इसका विशेष अपवाद रहा। वहाँ ३६ मुस्लिम सीटों में से १७ सीटों पर लीग का कब्जा हुआ। बंगाल व सिंध में मुस्लिम लीगी सरकारें अवश्य बनीं, किन्तु वे यूरोपियन सदस्यों के सहयोग के बिना टिक नहीं सकती थीं। पंजाब में भी कांग्रेस, अकाली दल तथा यूनियनिस्ट पार्टी की सम्मिलित शक्ति का मुकाबला लीग नहीं कर सकी।

लेकिन अंग्रेज सरकार की सहायता से लीग लगातार बढ़ती गई और पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी के नेता सर खिजरहयात खाँ ने प्रधान मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। मुस्लिम लीग ने वहाँ अपनी सरकार बनाने की बहुत कोशिश की, किन्तु इसमें वह असफल रही। इसके बाद देश में हिंसा व रक्तपात का जो दौर चला, ब्रिटिश सरकार जिस तरह लीग व देश-विभाजन का साथ देती रही, उसकी चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। मुस्लिम लीग को सफलता मिली, वह अधूरी थी। उसकी दृष्टि सारे पंजाब सारे बंगाल व सारे आसाम पर थी, लेकिन उसे मिला सिर्फ पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल और आसाम का सिलहट जिला। देश के विभाजन के साथ ही भारत में मुस्लिम लीग का महत्त्व नष्ट हो गया। मुस्लिम लीग पाकिस्तान चली गई, वह वहाँ की सबसे संगठित पार्टी है। भारतवर्ष में लीग विद्यमान तो है, किन्तु इसका अब न कोई प्रभाव है और न कोई व्यापक संगठन। प्रमुख लीगी नेता पाकिस्तान चले गये हैं या अब कांग्रेस के दृष्टिकोण को मान रहे हैं।

हिंदू-महासभा—पिछले चुनावों से पूर्व कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बाद सब से प्रभावशाली पार्टी हिन्दू महासभा थी। इसकी स्थापना १९१० में और इसका प्रथम अधिवेशन १९११ में हुआ था। परन्तु उसका प्रभाव वस्तुतः १९२३ में बढ़ा, जब कि आर्य-समाज के

प्रमुख नेता स्वा० श्रद्धानन्द ने इसमें प्रवेश किया। हिन्दू मुस्लिम दंगों के कारण हिन्दू-जनता इसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुई। मुस्लिम लीग के नेताओं की प्रतिक्रिया के रूप में इसका प्रभाव कुछ बढ़ गया। जब लीग ने मुसलमानों और हिन्दुओं के पृथक् राष्ट्र होने की घोषणा की तब हिंदू-महासभा के अध्यक्ष श्री सावरकर ने घोषणा की कि हिन्दू ही भारत में एक राष्ट्र हैं। दूसरी सब जातियाँ अल्प-संख्यक जातियों की भाँति रहेंगी। कांग्रेस की भी हिन्दू-महासभा के नेता इसलिए आलोचना करते रहे कि वह मुसलमानों के साथ विशेष पक्षपात करती है। इसका प्रभाव शनैः शनै नष्ट होता गया और नये चुनावों ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू-महासभा का देश में कोई स्थान नहीं। केन्द्र व समस्त प्रांतों में दो एक को छोड़ कर हिन्दू-महासभा का कोई भी उम्मीदवार सफल न हुआ।

देश के स्वतंत्र होने के बाद हिन्दू महासभा का कुछ प्रभाव सांप्रदायिक विद्वेष के कारण अवश्य बढ़ने लगा, किन्तु महात्मा गांधी के अमर बलिदान के बाद सभा के नेताओं ने निश्चय किया कि सभा का क्षेत्र राजनीति न रखकर विशुद्ध समाजसेवा रखा जाय। देश में सांप्रदायिकता को नष्ट करने के लिए एक उत्साह सा फैल गया था। कुछ महीनों तक यही स्थिति रही, पर अब हिन्दू महासभा की कार्य-समिति ने फिर राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने का निश्चय कर लिया है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ—हिन्दू राष्ट्र की कल्पना और हिन्दूहित के लक्ष्य को सामने रखकर इस संस्था की स्थापना डा० हेडगेवार ने २५-३० साल पूर्व की थी। सांप्रदायिक द्वेष और लीगी संगठन की प्रतिक्रिया स्वरूप इस संस्था का प्रचार हिन्दुओं में बहुत बढ़ गया। महात्मा गांधी की पाशविक हत्या के बाद सरकार ने इस संस्था पर प्रतिबंध लगा दिया।

पन्थिक पार्टी—मुस्लिम लीग व हिन्दू महासभा की भाँति

पन्थिक पार्टी का आधार भी सांप्रदायिकता है। मास्टर तारासिंह इसके प्रमुख नेता हैं। १९४६ के चुनावों से ठीक पहले यह पार्टी बनाई गई थी। सिख निर्वाचन क्षेत्रों से इसने कांग्रेसी उम्मीदवारों के विरोध में अपने उम्मीदवार खड़े किये। और उसमें वे बहुत सफल भी हुए। इस पार्टी का उद्देश्य सिख पन्थ व सिख संस्कृति की रक्षा करना है। देश का विभाजन होने पर इसका प्रभाव भी कम हो गया, क्योंकि इसके विरोधी मुसलमान पूर्वी पंजाब में नहीं रहे थे। किन्तु पिछले कुछ समय से पूर्वी पंजाब में सिख पन्थ की रक्षा और पंजाबी को पंजाब की राष्ट्र भाषा बनाने के नाम पर फिर यह कुछ जोर पकड़ रही है। इसका प्रभाव सिखों के एक भाग पर है। सिखों का दूसरा भाग कांग्रेस के साथ है और वह चुनावों में न संरक्षण चाहता है और न पृथक् चुनाव। पन्थिक पार्टी यदि बल पकड़ गई, तो पंजाब की राजनीति पर विशेष प्रभाव डालेगी।

सोशलिस्ट पार्टी—आज भारत में राजनीतिक दृष्टि से कांग्रेस के बाद सोशलिस्ट पार्टी का महत्त्व है। वस्तुतः यह पार्टी कांग्रेस में पिछले दस पन्द्रह वर्षों से विद्यमान थी। श्री जयप्रकाश नारायण, श्री अच्युत पटवर्धन आदि नेताओं ने इसका संगठन किया था। कांग्रेस को समाजवादी सिद्धान्त पर लाना इस दल का मुख्य उद्देश्य था। किसानों और मजदूरों की समस्या पर इन्होंने विशेष बल दिया। १९३७ में जब कांग्रेस ने प्रांतों में मंत्रि-मण्डल बनाने का निश्चय किया, तब समाजवादी दल ने इसका विरोध किया। १९४७ ई० में कांग्रेस ने जब केन्द्रीय सरकार हाथ में ली तब समाजवादी दल ने इसका उग्र विरोध करना शुरू किया और अंत में कांग्रेस से संबंध विच्छेद कर लिया। यह दल बड़े बड़े व्यवसायों के तुरत राष्ट्रीकरण पर जोर देता है। यह दल मजदूरों के हितों की रक्षा के नाम पर हड़ताल आदि का संगठन करता है, जमींदार पद्धति को तुरत समाप्त करने और ब्रिटिश कामनवैल्थ से संबंध विच्छेद करने आदि पर विशेष जोर

देता है। समाजवादी नीति के रूप में भी अहिंसा को स्वीकार नहीं करते। कांग्रेस वर्ग युद्ध के विरुद्ध है, जब कि समाजवादी दल इसके लिए भी तैयार रहता है। राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्र में आज कांग्रेस के विरोधी दल के रूप में यह दल विद्यमान है। इस दल के नेताओं को सरकार ने सहयोग के लिए कई बार निमंत्रित किया, किन्तु इस दल की नीति सदा असहयोग और आलोचना की रही है।

कम्यूनिस्ट-पार्टी—भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी का निर्माण १९३८ ई० में हुआ था, किन्तु १९४३ तक वह अवैध संस्था रही। यूरोपीय युद्ध में जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण होने के बाद कम्यूनिस्ट नेताओं ने युद्ध में सरकार को सहयोग देने का वचन दिया। कांग्रेस का इसने युद्धकाल में घोर विरोध किया, क्योंकि कांग्रेस युद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध मानती थी और कम्यूनिस्ट इसे जनयुद्ध का नाम देते थे। ब्रिटिश सरकार का सहयोग पाकर इसने अखबार आदि के द्वारा अपना जाल देश भर में बिछा दिया। श्री सुभाष चन्द्र वसु द्वारा संस्थापित आजाद-हिन्द सरकार की भी इसने बहुत निन्दा की। इन कारणों से यह पार्टी बहुत अप्रिय हो गई।

देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद देश में फैली महँगाई आदि का लाभ उठा कर मजदूरों को भड़काकर तथा हिंसात्मक आन्दोलन करके यह पार्टी फिर से शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही है। पाकिस्तान की प्राप्ति तक यह पार्टी मुस्लिम लीग का समर्थन करती रही और अब सांप्रदायिकता के विरुद्ध नारा लगा रही है। वर्तमान कांग्रेसी सरकार को पूँजीवादी कह कर देश में वर्ग-युद्ध का प्रचार करना आज इसकी मुख्य नीति है। बंगाल तथा दक्षिणी भारत में यह हिंसात्मक कार्यों पर भी उतर आई है। रूस व स्टालिन के रुख को देखकर इसकी नीति निर्माण की जाती है।

इसके सिद्धान्तों या व्यावहारिक नीति से भले ही कोई कितना मतभेद प्रकट करे, यह मानना पड़ेगा कि अनुशासन, दृढ़ संगठन व

उत्साह में इस पार्टी जैसा अन्य कोई संगठन देश में नहीं है। यह मनोरंजक सत्य है कि करीब करीब एक लक्ष्य होने पर भी समाजवादी दल और कम्यूनिस्ट पार्टी में परस्पर घोर वैमनस्य है।

अन्य दल—पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी किसी समय सरकार चला रही थी, लेकिन देश के विभाजन के साथ ही वह नष्ट हो गई। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने फ़ारवर्ड ब्लाक कायम किया था, आज उसका भी कोई प्रभाव नहीं है। श्री मानवेन्द्रनाथ राय ने रैडिकल डैमोक्रैट पार्टी युद्ध काल में स्थापित की थी। इसने भी गत महायुद्ध में सरकार को सहयोग दिया और सरकारी सहायता से एक मज़दूर संगठन भी बनाया। यह पार्टी भी अपनी मौत आप मर गई। सीमाप्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने खुदाई खिदमतगार संस्था कायम की थी। कांग्रेस इसे सीमा प्रान्त में अपनी संस्था के तौर पर मानती थी। इसके नेता खान अब्दुल गफ्फारखाँ अपनी राष्ट्रीयता, जीवन की सरलता तथा सच्चरित्र के कारण सीमांत गांधी कहे जाते हैं। इन्हीं के कारण सीमा-प्रान्त में कांग्रेस का बहुत प्रभाव था और वहाँ कांग्रेसी सरकार स्थापित थी। पाकिस्तान बनने पर इस संस्था का पूरी तरह दमन किया गया।

नरम दल के राजनीतिज्ञों का यद्यपि अब जनता पर विशेष प्रभाव नहीं है, तथापि अपनी योग्यता, विद्वत्ता और ऊँची सामाजिक स्थिति के कारण इनका संगठन अभी तक विद्यमान है। सर तेज-बहादुर सप्रू और श्री जयकर इस दल के नेता हैं। पूने की प्रसिद्ध सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी के मेंबर प्रायः इस नरम दल के विचारों के ही हैं। मद्रास में अब्राह्मणों ने जस्टिस पार्टी को स्थापित किया था। यह भी नरमदल के विचारों से मिलती जुलती है। नये चुनावों में कांग्रेस ने इसे समाप्त प्राय कर दिया। डा० अंबेडकर ने फैडरेशन आफ डिप्रैस्ड क्लासेज नाम की एक संस्था स्थापित की है। इसका उद्देश्य दलित हिंदुओं को सवर्ण हिंदुओं से पृथक

रखना है। नये चुनाओं में बंगाल के सिवाय इसे कहीं सफलता प्राप्त नहीं हुई। प्रायः सर्वत्र दलित हिंदुओं ने कांग्रेस का साथ दिया है। ब्रिटेन के मंत्री-मिशन ने भी हरिजनों को पृथक् जाति स्वीकार नहीं किया था।

रियासतों की प्रजा ने भी उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के उद्देश्य से रियासती-प्रजा-परिषद् स्थापित की थी। पाँच छः सालों तक प० जवाहरलाल नेहरू इसके अध्यक्ष रहे। फिर श्री पट्टाभिसीतारमैया इसके सभापति रहे। रियासतों के संघ में मिलने के बाद अब यह परिषद् कांग्रेस में परिणत हो गई है।

अध्याय ७

देश की प्रमुख समस्याएँ

संसार के इतिहास में जब भी कोई राष्ट्र स्वतंत्र हुआ है, अथवा उसमें फ्रांस या रूस जैसी क्रान्ति हुई है, उसे अनेक कठिन से कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा है। भारतवर्ष भी इसका अपवाद नहीं रहा। पिछली डेढ़ सदी तक अंग्रेज अपने लाभ के लिए शासन करते रहे, वे ऐसी अनेक परंपराएँ छोड़ गये, जो देश में स्वस्थ राष्ट्रीयता के विकास की बजाय उसमें सदा बाधक रहीं और जो देश को आर्थिक दृष्टि से भी कभी उन्नत नहीं कर सकीं। इसी में उनका स्वार्थ था। स्वतंत्र होते ही देश को जिन कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा, उनमें से कुछ प्रमुख समस्याओं का परिचय इस अध्याय में दिया जाता है।

रियासतें

सब से प्रमुख समस्या करीब ५५० रियासतों की थी। भारत का एक तिहाई भाग रियासतों ने घेरा हुआ है। ब्रिटिश शासन में

ये रियासतें स्वतंत्र सत्ता नहीं रखती थीं। इनकी बाहरी आक्रमणों से रक्षा की गारंटी ब्रिटिश सरकार देती थी। वैदेशिक संबधों के बारे में भी ये ब्रिटिश सरकार के मातहत थी। आन्तरिक मामलों में ये रियासतें स्वतंत्र थीं। परन्तु उसमें भी भारत-सरकार कुशासन, अव्यवस्था आदि के नाम पर हस्तक्षेप कर सकती थी और समय समय पर करती रही थी। ब्रिटिश सम्राट् को ये रियासतें अपना शासक स्वीकार करती थीं। प्रायः सब रियासतों में राजा के हाथ में ही सर्वोच्च सत्ता थी। किसी किसी रियासत में प्रजा-सभा आदि के नाम से असेम्बली बना कर प्रतिनिधि-तंत्र की ओर पहला कदम अवश्य उठाया गया था।

भारतवर्ष के भावी विधान में रियासतों का क्या स्थान होगा, यह समस्या भारतीय राजनीतिज्ञों के विचार का विषय रही। क्या वे ब्रिटिश भारत के साथ मिलने के लिए विवश होंगी अथवा उनकी स्वतंत्र पृथक् सत्ता रहेगी ? अनेक ब्रिटिश अधिकारियों ने इस सम्बन्ध में उन्हें अपना मार्ग चुनने में पूर्ण स्वतंत्रता दी। ऐसी भी संभावना प्रकट की गई कि पाकिस्तान, हिन्दुस्तान और राजस्थान तीन पृथक्-पृथक् संघ बन जावें। राजाओं की ओर से सब से महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया कि ब्रिटिश सरकार के साथ संबंध समाप्त होते ही वे सब उन संधियों से मुक्त हो जाते हैं, जिनके द्वारा उन्होंने अपनी सर्वोच्च स्वतंत्र सत्ता ब्रिटिश सम्राट् को सौंप दी थी। और इसके बाद वे अपने में स्वतंत्र हैं, ब्रिटिश भारत की नई सरकार या ब्रिटिश सरकार के प्रति किसी प्रकार के बंधन में बँधी हुई नहीं है। इसका सीधा सादा अर्थ यह था कि भारतवर्ष में अंग्रेजों की सत्ता के समाप्त होते ही ५००-६०० स्वतंत्र राज्य कायम हो जाते हैं। सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स ने जो योजना पेश की थी, उसमें रियासतों को संघ में रहने या न रहने की स्वतत्रता दी गई थी। संघ से बाहर रहने की स्थिति में सर्वोपरि सत्ता ब्रिटिश सरकार के अधीन रहती और

ब्रिटिश सरकार को उनमें अंगरेजी फौज रखने का अधिकार भी दिया गया था।

ब्रिटिश सरकार की घोषणा—ब्रिटिश मंत्रि-मिशन ने भी रियासतों की भावी स्थिति के संबंध में राजाओं से विचार-विनिमय किया था। इसके बाद जो विज्ञप्ति प्रकाशित की गई, उसका आशय यह था कि भारत के स्वतंत्र होते ही रियासतें भी स्वयं स्वतंत्र हो जायँगी और वे ब्रिटिश सरकार के साथ किसी बंधन में बँधी न रहेंगी। ब्रिटिश सरकार अपनी सर्वोच्च सत्ता नई भारतीय सरकार को भी प्रदान नहीं करेगी। रियासतें अपना भविष्य स्वयं निर्धारित कर सकेंगी। इस घोषणा में रियासतों को यह भी सलाह दी गई थी कि वे नये भारतीय-संघ-विधान में सम्मिलित होकर भारतीय राष्ट्र की उन्नति में सहयोग दें। ब्रिटिश सरकार का यह आश्वासन पाकर रियासतों का यह भय तो दूर हो गया कि उन्हें ब्रिटिश भारत की सरकार के नीचे विवश होकर रहना पड़ेगा।

शासन में असमर्थ रियासतें—लेकिन वस्तुतः इससे समस्या का हल नहीं हुआ। कानूनी स्थिति स्पष्ट हो गई, लेकिन व्यवहार और कागजी विधान में बड़ा भारी अंतर है। रियासतों के राजा यह जानते थे कि वे अपनी स्वतंत्र सत्ता की रक्षा करने में असमर्थ हैं। ऐसी रियासतों की संख्या कम नहीं है, जिनकी आबादी एक हजार से भी कम है। एक लाख जन-संख्या से कम की रियासतें ४८० से अधिक हैं।। १० वर्गमील से भी कम क्षेत्रफल वाली रियासतों की संख्या २०२ है। पन्द्रह रियासतें इतनी छोटी हैं कि उनका क्षेत्रफल या रकबा एक वर्ग मील भी नहीं। २७ दूसरी रियासतों का रकबा पूरा एक वर्ग मील बैठता है। तीन रियासतों की आबादी इतनी कम है कि पूरे सौ आदमी भी उनमें नहीं हैं। उनमें से ५ रियासतों की वार्षिक आमदनी पूरे सौ रुपये भी नहीं है। वार्षिक २०) रु० आमदनी वाली

और ३२ आदमियों की आबादी वाली एक जायदाद भी रियासत कही जाती है। ऐसी रियासतें न अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर सकती हैं और न शासन-सम्बन्धी कार्य ही कर सकती हैं। लेकिन इस स्थिति के बावजूद भी ये रियासतें अपनी सर्वोच्च सत्ता छोड़ने को तैयार नहीं थीं।

गुटबंदी की योजना—ब्रिटिश सरकार ने ऐसी रियासतों को सलाह दी कि वे शासन-कार्य चलाने के लिए आपस में गुटबंदी कर लें या समीपवर्ती किसी बड़ी रियासत में सम्मिलित हो जायँ। अ० भा० देशी राज्य-प्रजा-परिषद् ने भी पं० जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में इसी आशय की माँग की थी। प्रजा परिषद् के प्रस्ताव में कहा गया था कि "जिन रियासतों की आबादी २० लाख अथवा आमदनी ५० लाख रु० से ऊपर है, वे ही रियासतें अपने शासन को इस लायक रख सकती हैं कि वे स्वतंत्र भारतीय संघ में प्रांतों के साथ साथ काम चलाऊ इकाइयों के रूप में सम्मिलित हो सकें। शेष छोटी रियासतों को शासन की दृष्टि से अलग अलग या समूह बना कर पड़ोसी प्रांतों में मिला दिया जाय।" भारत सरकार ने प्रांतों के बजाय पड़ोसी बड़ी रियासतों में मिलने की सलाह दी।

निरंकुश या उत्तरदायी शासन—बड़ी रियासतों की समस्या एक और भी थी। राजा अब तक निरंकुश शासक रहे थे और पिछले १०-१५ वर्षों से उनकी प्रजा उत्तरदायी शासन माँगने लगी है। कांग्रेस ने भी इस माँग का बड़े जोरों से समर्थन किया, लेकिन स्वभावतः राजा इस माँग को पूरी तरह मानने में संकोच कर रहे थे। वे उत्तरदायी शासन में—प्रजा को सर्वोच्च सत्ता सौंपने में—संधियों को एक बाधा के रूप में पेश करने लगते थे जिनके अनुसार वह सत्ता ब्रिटिश सम्राट के पास है और वह भी संधियों के अनुसार रियासती शासन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। दूसरी ओर ब्रिटिश भारत के नेताओं की यह जोरदार माँग थी कि रियासतों में उसी तरह का उत्तरदायी

शासन हो, जिस तरह का ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में हो। उनकी इस माँग का केवल प्रजाहित के अतिरिक्त एक और प्रधान कारण था। जिन रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन न होगा, वे ब्रिटिश सरकार के प्रभाव में रहकर भारत की स्वराज्य की ओर प्रगति में बाधा डाल सकती थीं। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अपने प्रस्तावों में अंग्रेजी फौज रियासतों में रख सकने की गुंजायश रखी थी। उधर राजा शासन में जनता का सहयोग लेने के सिद्धांत को स्वीकार करके भी बहुत दूर तक जाने को तैयार नहीं थे। इसी लिए समस्या इस रूप में पैदा हो गई कि भावी भारत में राजाओं की क्या स्थिति रहेगी? क्या उनकी गद्दी सुरक्षित रहेगी या अनेक यूरोपियन देशों के राजाओं की भाँति उन्हें भी गद्दी से उतार दिया जायगा। कांग्रेसी नेताओं ने इस संबंध में अपना मत प्रकट कर दिया कि यदि राजा समय की गति के अनुसार चलेंगे और प्रजा को उससे अधिक देने का प्रयत्न करेंगे, जितना वे अपनी रियासत से लेते हैं तो समाज को उनसे द्रोह क्यों हो सकता है। इस मत में एक धमकी अवश्य छिपी हुई थी कि राजा यदि निरंकुश शासक बने रहे, तो उनका भविष्य उज्ज्वल नहीं था इसी से राजा डरते थे। वे नये विधान में अपने असीम अधिकार सुरक्षित रखना चाहते थे। लेकिन एक संघ-विधान में समस्त देश के हित को ध्यान में रखते हुए कुछ त्याग तो करना ही था। कांग्रेस के अध्यक्ष श्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने एक वक्तव्य में कहा था कि राजा अपनी अपनी सेना नहीं रख सकेंगे। आजकल के राजा ब्रिटिश सरकार की रचना हैं और उसी के संरक्षण में उनका पोषण हुआ है। इस लिए भारतीय नेताओं को यह कभी कभी संदेह होता था कि वे कहीं ब्रिटिश राज्य के हाथ में कठपुतली न बन जावें। यही कारण है कि वे समय समय पर राजाओं को अखण्ड और अविभाज्य भारत का संदेश देते रहे।

रियासतों की कुछ अपनी और भी समस्याएँ हैं, जो रियासती

समस्या को और भी पेचीदा बना देती हैं। ब्रिटिश सरकार ने उनसे संधियाँ करते समय कुछ प्रादेशिक परिवर्तन भी किया था। रियासतें अपने अपने प्रदेशों की माँग करने लगीं। यदि केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली न हो तो बड़ी रियासतें वहीं बल प्रयोग करके अराजकता की सी स्थिति लाने का प्रयत्न न करें। यह भय उस समय और भी बढ़ गया जब कि मुस्लिम लीग बल-प्रयोग या गृह-युद्ध की धमकी दे रही थी। यही सब वे परिस्थितियाँ थीं जिनसे रियासतें भी भारत के निकट भविष्य में एक कठिन समस्या बन गईं।

देश के स्वतंत्र होते ही ब्रिटिश सरकार ने सब रियासतों को सब पुरानी संधियों से स्वाधीन कर दिया था। वे अब पूर्ण स्वाधीन थीं और उनके राजा पूर्ण सत्ता अपने में केन्द्रित रखते थे। इसका अर्थ यह था कि भारत केवल पाकिस्तान व हिन्द में ही विभक्त नहीं हुआ था, करीब ६०० छोटे-बड़े टुकड़ों में बँट गया था। ट्रावनकोर, हैदराबाद, भूपाल व इन्दौर आदि कुछ रियासतों के शासकों ने तो अपना पृथक अस्तित्व रखने का विचार भी प्रकट कर दिया। इस कारण समस्या कुछ टेढ़ी हो गई। परन्तु भारत-सरकार के नीतिज्ञ उप-प्रधानमंत्री सरदार पटेल की कार्य-कुशलता से सब बाधाएँ दूर हो गईं। उन्होंने एक भाषण में स्पष्ट किया कि प्रभु सत्ता से मुक्त होने की नरेशों की इच्छा इसलिए तो ठीक है कि इस प्रकार वे एक विदेशी आधिपत्य की अधीनता से मुक्त हो जायँगे, किन्तु अंग्रेजी प्रभुत्व से मुक्ति का अर्थ यह कदापि न होना चाहिये कि उसका प्रयोग भारत के सामान्य हितों के विरुद्ध अथवा 'जनकल्याण के प्रभुत्व' के विरुद्ध किया जायगा। उन्होंने राष्ट्रीय एकता और लोकमत की सर्वोपरिता पर विशेष जोर दिया। इन अपीलों का प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा। जिन रियासतों के राजा विरोध या आलस्य कर रहे थे, उनकी प्रजा ने भारतीय संघ में मिलने का आन्दोलन किया। १५ अगस्त १९४७ तक जूनागढ़, काश्मीर और हैदराबाद को छोड़कर

सब राजाओं ने संघ में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। इससे कुछ लोगों की इस आशा पर तुषारपात हो गया कि देश के विभाजन तथा रियासतों की अस्तव्यस्तता के सम्मिलित भार से भारत-सरकार बैठ जायगी।

जिस कार्य को अंगरेज सरकार ने १५० सालों में करने में सफलता प्राप्त नहीं की, उसे सरदार पटेल ने एक वर्ष के अल्प कालीन समय में संपन्न कर लिया। उनकी नीति और व्यवहार-कुशलता से रियासतों में नीचे लिखे चार महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए :—

(१) प्रान्तों में विलय—छोटी छोटी रियासतों के पृथक् अस्तित्व को समाप्त करके आस पास के प्रान्तों में या रियासत संघों में मिला दिया गया। लगभग २५ छोटी रियासतें उड़ीसा प्रान्त में, १४ रियासतें मध्यप्रान्त में और १७ बंबई प्रान्त में मिला दी गईं। लोहारू व पाटोदी रियासतें पूर्वी पंजाब में मिल गईं। बिहार, युक्त प्रान्त और मद्रास आदि में भी कुछ कुछ रियासतें मिला दी गई हैं। शिमला की कुछ रियासतों को मिलाकर 'हिमाचल प्रदेश' के नाम से नवीन प्रान्त बनाया गया है, जो सीधा भारत सरकार के नियंत्रण में है। राजपूताने की सिरोही रियासत अस्थायी तौर पर बंबई सरकार के शासन में चली गई है। बड़ौदा और कोल्हापुर भी बंबई में विलीन हो रही हैं। इस तरह करीब २४० रियासतें भारतीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों के सीधे शासन में आ गई हैं। जैसलमेर की सीमा पाकिस्तान से बहुत अधिक छूती है, इसलिए उसका शासन भारत सरकार ने अपने अधीन कर लिया है।

(२) संघ में विलय—मध्यम श्रेणी की रियासतों को परस्पर संघ बनाकर एकत्र कर दिया गया है, ताकि वे आज के प्रजातन्त्रिक शासन की आवश्यकताओं व कर्तव्यों को पूर्ण कर सकें। इन संघों का वैधानिक शासक एक प्रमुख राजा को बनाया गया है। अब तक करीब ३०० रियासतें निम्नलिखित संघों में सम्मिलित हो चुकी हैं :—

नाम संघ	अन्तर्गत रियासतों की लगभग संख्या
(१) सौराष्ट्र संघ	२२२
(२) विंध्य प्रदेश	३५
(३) मत्स्य संघ	४
(४) राजस्थान संघ	१०
(५) मध्य भारत संघ	२०
(६) पटियाला पूर्वी पंजाब संघ	८

नवाब जूनागढ़ ने पहले पाकिस्तान संघ में सम्मिलित होने का निश्चय किया था, किन्तु वहाँ की प्रजा ने विद्रोह कर दिया। फलतः नवाब भाग गया और वहाँ संगठित जनता की सरकार सौराष्ट्र संघ में सम्मिलित हो गई। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और उदयपुर आदि राजपूताने की बड़ी रियासतें अब तक पृथक् पृथक् हैं, किन्तु वे भी संयुक्त राजस्थान संघ में सम्मिलित होने पर सहमत हो गई हैं। यह राजस्थान संघ १ करोड़ ५० लाख आबादी का सबसे बड़ा संघ बन जायगा। मध्य भारत संघ का क्षेत्रफल ४७००० वर्ग मील तथा जन संख्या लगभग ७२,०० ००० है। बहुत संभवतः भोपाल को भी मध्य भारत संघ में मिलना पड़ेगा।

३—काश्मीर, ट्रावनकोर, मैसूर आदि रियासतें अब तक किसी संघ में सम्मिलित नहीं हुईं। वे अपना शासन स्वयं चलाने में समर्थ हैं।

(४) *उत्तरदायी शासन*—रियासतों में निरंकुश शासन कायम था। अब उनमें भी उत्तरदायी लोकतंत्र शासन कायम किया जा रहा है। रियासतों या रियासत-संघों में जन-प्रतिनिधि-सभाएँ कायम हो रही हैं। अनेक रियासतों में भावी विधान बनाने के लिए विधान-सभाओं का निर्माण हो रहा है। राजा अपनी रियासतों के और राजप्रमुख रियासत-संघों के वैधानिक शासक भर रह गये हैं। संघ में एक संयुक्त मंत्रिमंडल व एक हाईकोर्ट होगा। पुलिस, शिक्षा,

स्वास्थ्य इत्यादि विभागों का संयुक्त संगठन होगा।

(५) *भारत सरकार से संबंध*—भारत संघ के साथ रियासतों का संबंध भी निश्चित कर दिया गया है। ये सब रियासतें प्रान्तों के समान अपने आन्तरिक शासन में स्वतंत्र रहने पर भी परराष्ट्र विषय, रक्षा तथा यातायात व संवादवहन विभाग में संघ'सरकार के अधीन हैं। १० लाख आबादी के पीछे रियासतों से भी एक प्रतिनिधि संघ की विधान-परिषद में भेजा हैं। रियासतों में अव्यवस्था और कुशासन होने पर हस्तक्षेप का अधिकार संघ सरकार ने अपने हाथ में रखा है।

(६) *हैदराबाद*—जब भारत संघ की भौगोलिक सीमावर्ती सब रियासतें भारत संघ में सम्मिलित हो गईं तब भी हैदराबाद ने चारों ओर भारतीय प्रदेश से घिरी होने पर भी उसमें सम्मिलित होने से इनकार कर दिया। हैदराबाद का निज़ाम फिर स्वतंत्र राजा और मुस्लिम राज्यों का नेता बनने का स्वप्न लेने लगा। इसके लिए वहाँ इत्तेहादुल मुसलमीन ने सांप्रदायिक भावना को इस सीमा तक उभार दिया कि वहाँ की अधिकांश हिन्दू प्रजा पर नृशंस अत्याचार होने लगे। जब भारतीय सरकार ने निज़ाम से अपने यहाँ व्यवस्था व शान्ति रखने तथा उत्तरदायी शासन कायम करने का अनुरोध किया, तब हैदराबाद की सरकार ने उसे ठुकरा कर भारत से युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दीं। पाकिस्तान तथा अन्य देशों से करोड़ों रुपये की युद्ध सामग्री मँगाई गई। एक ओर उत्तर में भारत सरकार काश्मीर के युद्ध में उलझी हुई थी और दूसरी ओर दक्षिण में हैदराबाद की कार्रवाइयों के कारण स्थिति विकटतर होती जा रही थी। आखिर विवश होकर भारतीय सेना को 'पुलिस कार्रवाई' करनी पड़ी। छः दिनों में ही निज़ाम ने आत्म-समर्पण कर दिया। भारत सरकार ने अस्थायी तौर पर वहाँ जनरल राजेन्द्रसिंह चौधरी के नेतृत्व में अस्थायी सैनिक शासन कायम कर दिया है। भावी

विधान-निर्माण के लिए वहाँ विधान-परिषद् बुलाई जा रही है, जो विधान निर्माण के अतिरिक्त भारतीय संघ में सम्मिलित होने या न होने का निर्णय भी करेगी।

(७) काश्मीर—काश्मीर की स्थिति हैदराबाद से बिलकुल भिन्न थी। काश्मीर जहाँ मुस्लिम-बहुल रियासत है, वहाँ एक ओर उसकी दक्षिण पूर्वी सीमाएँ भारतीय संघ के साथ मिलती हैं, तो पश्चिमोत्तरी सीमाएँ पाकिस्तान के साथ मिलती हैं। पाकिस्तान ने उसे अपने में सम्मिलित होने का आग्रह किया। उसके इनकार करने पर पाकिस्तान सरकार ने वहाँ के कुछ काश्मीरी मुसलमानों तथा समीपवर्ती कबायलियों को युद्ध सामग्री देकर रियासत पर आक्रमण के लिए भड़का दिया। कुछ समय बाद पाकिस्तान की सेनाएँ भी काश्मीर में पहुँच गईं। इन सेनाओं का मुकाबला रियासती सेना नहीं कर सकी और आक्रामक सेना श्रीनगर के पास तक पहुँच गई। तब अन्य कोई उपाय न देख कर काश्मीर ने भारत संघ में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। भारत सरकार ने एक ओर अपनी सेनाएँ वायुयानों द्वारा वहाँ पहुँचाईं और दूसरी ओर पाकिस्तान सरकार से भारतीय संघ के अन्तर्गत काश्मीर प्रदेश से अपनी सेनाएँ वापस बुलाने की माँग की। उसने यह मामला अन्तर्राष्ट्रीय संघ में भी पेश कर दिया। किन्तु इन दोनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पाकिस्तान बराबर अपनी सेनाएँ काश्मीर में भेजता रहा। इसलिए वहाँ युद्ध चलता रहा। राष्ट्र संघ द्वारा भेजे गये एक काश्मीर-कमीशन के अनुरोध को भी बहुत समय तक पाकिस्तान ने स्वीकार नहीं किया। इस अरसे में आक्रमणकारी सेनाओं को बहुत दूर तक पीछे धकेल दिया गया है। सवा बरस तक निरन्तर घोर युद्ध करने के बाद पाकिस्तान ने अपनी सेनाएँ वापस बुलाने की काश्मीर-कमीशन की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और दोनों देशों ने युद्ध स्थगित कर दिया है। संपूर्ण रियासत में शान्ति स्थापित होने के बाद वहाँ

जनता से जनमत लिया जायगा। अक्टूबर १९४७ में वहाँ शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में लोकप्रिय शासन भी कायम कर दिया गया है। श्री शेख अब्दुल्ला का विश्वास है कि काश्मीर का जनमत भारतीय संघ में सम्मिलित होने का निर्णय करेगा।

इस तरह भारतीय संघ के सामने स्वतंत्र होते ही रियासतों की जो विकट समस्या उपस्थित हुई थी, उसका उसने बहुत कुशलता के साथ समाधान कर लिया है और यह उसकी सब से बड़ी सफलता है।

शरणार्थियों की समस्या

पिछले अध्याय में देश विभाजन की चर्चा करते हुए हम बता आये हैं कि किस तरह पाकिस्तान से ६१ लाख शरणार्थी भारतीय संघ में आने को विवश हुए। भारत सरकार ने ६० लाख आदमियों को पाकिस्तान के नगरों तथा अन्तर्वर्ती गाँवों से यहाँ लाने में बड़ी तत्परता दिखाई। वायुयानों, रेलगाड़ियों और लारियों, मोटरों व पैदल काफिलों द्वारा इतनी भारी संख्या अपनी सदियों की जायदाद छोड़ कर यहाँ आ गई। अब इन सब को स्थायी रूप से बसाने, जमीन देने व कारोबार में लगाने की समस्या सरकार के सामने हैं। शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या इस कारण और भी कठिन बन गई है कि उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए और फिर से अपना कारोबार बसाने के लिए पूर्वी पंजाब, दिल्ली, युक्तप्रान्त, अजमेर, जोधपुर व बंबई आदि के लोगों से कठोर प्रति-स्पर्धा व संघर्ष करना पड़ रहा है।

भारत सरकार ने शरणार्थियों की समस्या हल करने के लिए विभिन्न प्रान्तों की सरकारों को आदेश दिया है कि वे कम से कम एक नियत संख्या में शरणार्थियों को अपने यहाँ बसाने की व्यवस्था करें। फिर भी मुख्यतः यह कार्य पूर्वी पंजाब की सरकार को करना

है। इसके लिए जो मुसलमान गये हैं उनकी संख्या भी कम है और वे जो जमीन जायदाद छोड़ गये हैं, वह भी बहुत कम कीमत की है। पश्चिमी पंजाब से आये हुए गैर मुस्लिम वहाँ कुल ५७ लाख एकड़ भूमि छोड़ आये हैं, जब कि पूर्वी पंजाब के मुसलमानों के पास कुल ४५ लाख एकड़ भूमि थी, जिसमें से केवल ३४,५०,००० एकड़ खेती के योग्य हैं। इसे यदि ४ लाख परिवारों में बाँटा जाय, तो प्रत्येक परिवार को औसत से ८॥ एकड़ भूमि मिलेगी, जब कि पश्चिमी पंजाब की नहरी बस्तियों में इससे भी अधिक उपजाऊ भूमि १४ एकड़ प्रत्येक परिवार के हिस्से पड़ती थी। पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू अधिकांशतः मध्यम श्रेणी के दुकानदार, जमींदार या व्यापारी थे, जब कि पूर्वी पंजाब से जाने वाले मुसलमान साधारणतः किसान या छोटे छोटे दस्तकार थे। उनका काम शरणार्थी बहुत जानते भी नहीं। फिर दिल्ली से बहुत कम मुसलमान गये हैं और गुड़गाँवाँ के बहुत से मेव भी वहीं रह गये हैं।

अनेक नये नगर बसाये जा रहे हैं। पंजाब की नई राजधानी का भी जब निर्णय हो जायगा, वहाँ बहुत से शरणार्थी बसाये जा सकेंगे। कृषि, उद्योग, व्यापार, यातायात, पुलिस, सरकारी नौकरी में शरणार्थियों को तरजीह दी जा रही है। बहुत से दस्तकारी के स्कूल खोले गये हैं; जिनमें शरणार्थियों को दस्तकारी सिखाई जा रही है। सहकारी समितियों की स्थापना भी की जारही है; जिन्हें अपना काम प्रारम्भ करने व मकान बनाने के लिए करोड़ों रुपये कर्ज देने की व्यवस्था की जा रही है।

पाकिस्तान सरकार से जनवरी १९४९ में एक समझौता किया गया है, जिसके अनुसार पाकिस्तान में छोड़ी गई अस्थिर संपत्ति यहाँ लाई जा सकेगी और स्थिर संपत्ति वहाँ बेची जा सकेगी या मुसलमानों की छोड़ी हुई संपत्ति से बदली जा सकेगी। यह बहुत श्रमसाध्य कार्य है, किन्तु यदि ईमानदारी से यह व्यवस्था पूर्ण हो

सके तो शरणार्थियों की संपत्ति का कुछ न कुछ मुआवजा अवश्य मिल जावेगा। लेकिन समस्या का वास्तविक समाधान तो शरणार्थियों का अपने अपने स्थानों पर फिर पहुँचना है। वर्तमान विषाक्त वातावरण में इसकी कल्पना भी यद्यपि कठिन है, तथापि कुछ लोग वह दिन देख रहे हैं जब कि पाकिस्तान के नेता सांप्रदायिकता की हानियों को अनुभव कर लेंगे और वे भारतीय संघ के साथ एक राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित हो जावेंगे। ऐसा दिन कब आयेगा, कौन कह सकता है!

महँगाई

पिछले युद्ध में युद्धकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार को अन्धाधुन्ध खर्च करने पड़े। इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए सरकार ने निम्नलिखित उपाय किये:—

१—जनता पर कई प्रकार के टैक्स बढ़ा दिये।

२—जनता से बहुत अधिक मात्रा में कर्ज लिया।

३—बढ़े हुए खर्च को पूरा करने के लिए कागज़ी मुद्रा की संख्या बढ़ा दी। युद्ध प्रारंभ होने पर भारतवर्ष में २ अरब २६ करोड़ रुपये के नोट जारी थे, किन्तु १९४५ में १२ अरब १९ करोड़ रुपये के नोट हो गये। रुपयों की संख्या भी ४६ करोड़ बढ़ गई।

कारण—जब बाजार में मुद्रा का प्रचलन अधिक हो जाता है, तब चीजें भी महँगी हो जाती हैं और इस कारण जीवन व्यय बढ़ जाता है। अपने बढ़े हुए खर्चों को पूरा करने के लिए लोग अधिक मज़दूरी, अधिक वेतन और अधिक लाभ की माँग करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि चीजें और भी महँगी हो जाती हैं, जीवन व्यय और भी बढ़ जाता है। फिर और अधिक मजदूरी व अधिक लाभ की आशा की जाती है तथा फिर महँगाई और अधिक बढ़ जाती है। इस तरह यह चक्र चलता रहता है। देश के स्वतन्त्र होने के बाद

यह खयाल था कि महँगाई कम हो जायगी, किन्तु हुआ इसके विपरीत। देश के विभाजन और शरणार्थियों की कल्पनातीत समस्या के कारण सरकार को करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाना पड़ा। व्यापार व्यवसाय रुक गया। अन्नसंकट पहले की तरह जारी था, उसे दूर करने के लिए प्रति वर्ष करोड़ों रुपये का घाटा सह कर भी विदेशों से लाखों टन अन्न मँगाना पड़ा। काश्मीर के युद्ध में भारत को करोड़ों रुपया खर्च करना पड़ा। सरकार का शासन व्यय भी नई परंपराएँ व नई संस्थाएँ चालू करने से बहुत अधिक बढ़ गया। इन सब खर्चों को पूरा करना ही कठिन था कि रेलवे और डाकखानों के कर्मचारियों ने हड़ताल की धमकी देकर जो वेतन-वृद्धि करा ली थी, उसके कारण भी २५·३० करोड़ रुपये का खर्च बढ़ गया। फिर लोगों की स्वार्थ प्रवृत्ति, व्यापारियों की सट्टेबाजी व चोरबाजार आदि के कारण देश में महँगाई बढ़ती गई। यदि देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त सामग्री पैदा होने लगे, तो मूल्य इतने बढ़ें नहीं। किन्तु स्थान-स्थान पर मजदूरों ने हड़तालें की तथा उत्पादन में रुकावटें डालीं। इस कारण भी महँगाई पर प्रभाव पड़ा। इन सबका परिणाम बढ़ती हुई महँगाई से स्पष्ट है।

महँगाई के कारण जनता में असंतोष निरंतर बढ़ता है। सरकार भी यह अनुभव करती है कि जब तक जीवन व्यय को निम्न धरातल पर नहीं लाया जायगा, तब तक संकट लगातार बढ़ता जायगा। इस प्रश्न पर देश के विचारकों, अर्थशास्त्रियों तथा व्यापारियों, उद्योगपतियों और मजदूर नेताओं में महीनों तक विचार विनिमय चलता रहा। अब महँगाई को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा रहे हैं :—

(१) मजदूरों व उद्योगपतियों में अच्छे संबंध स्थापित करने तथा हड़तालों को रोकने के लिए पंच की प्रथा। प्रत्येक विवादग्रस्त विषय पंच या औद्योगिक न्यायालय को सौंप दिया जाय। इसके लिए

त्रैवार्षिक संधि भी की गई है जिसके अनुसार हड़तालें कम से कम तीन साल तक न होंगी, यद्यपि इसका पालन ठीक तौर से नहीं हो रहा।

(२) लोगों में बचत के लिए प्रचार। जितना लोग कम खर्च करेंगे, उतना ही बाजार में कम रुपया जायगा और मँहगाई कम होगी।

(३) सरकारी कर्ज जारी किये गये हैं। जितना रुपया सरकार के पास कर्ज के रूप में जायगा, उसे अपने बढ़े हुए खर्च पूरे करने के लिए नई मुद्रा कम निकालनी पड़ेगी।

(४) सरकारी शासन व्यय में मितव्यय।

उत्पादन योजनाएँ

ब्रिटिश शासन के दीर्घ काल में सरकार की आर्थिक नीति का प्रमुख लक्ष्य ब्रिटेन का हित रहा था। भारतीय उद्योग-धन्धों की उन्नति वहीं तक की जाती थी, जिससे कि ब्रिटिश उद्योग व्यवसाय को धक्का न लगे। कृषि नीति भी इसी तरह ब्रिटिश हित को लक्ष्य में रखकर नियत की जाती थी। भारतवर्ष के स्वतंत्र होते ही यह आवश्यकता अनुभव हुई कि देशव्यापी योजनाएँ बनाई जावें। इस दिशा में पर्याप्त प्रगति की जा चुकी है। भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारें कृषि व उद्योग को बढ़ाने के लिए विविध योजनाएँ बना रही हैं। कुछ पर अमल भी आरंभ हो गया है। देश-विभाजन से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के कारण इस दिशा में बहुत अधिक प्रगति तो नहीं हो सकी, किन्तु आगामी दो तीन वर्षों में बहुत कुछ किये जाने की आशा है। रेलवे, जहाज, मोटर, वायुयान, टेलीफोन, रेडियो और कृषि आदि सभी दिशाओं में भारत को स्वावलम्बी और स्वतंत्र बनाने के लक्ष्य से काम हो रहा है। इन योजनाओं का कुछ परिचय पुनर्निर्माण व औद्योगिक विकास के प्रकरण में दिया जायगा।

प्रान्तीयता की भावना

एक ओर भारत सरकार सैकड़ों छोटी मोटी रियासतों को प्रान्तों में या नये संगठित संघों में मिला कर देश के भेदभाव को हटाकर एक करने की नीति पर चल रही है, तो दूसरी ओर प्रान्तीयता की क्षुद्र भावना एक-राष्ट्रीयता की भावना को शिथिल करती जान पड़ती है। देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि समस्त राष्ट्र में एक अखण्ड राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान हो। इसमें संदेह नहीं कि ब्रिटिश शासन में स्वराज्य-आंदोलन ने इस भावना को बहुत अधिक बल प्रदान किया, किन्तु अपने अपने प्रान्त से अत्यधिक प्रेम का भाव फिर जाग्रत हो उठा और यह दूसरे प्रान्तों से विरोध के रूप में उग्ररूप पकड़ने लगा है। प्रान्तीय भाषा की आड़ में संकुचित भावना से मद्रास, महाराष्ट्र, बंगाल और बिहार व उड़ीसा में नई समस्या पैदा हो गई है। बंबई प्रान्त के विभाजन की माँग मराठे कर रहे हैं। बंबई शहर नये महाराष्ट्र में सम्मिलित हो अथवा गुजरात में, इस प्रश्न पर बड़े बड़े नेताओं में तीव्र मतभेद है। मध्य प्रान्त में भी मराठी व हिन्दी भाषियों के सम्बन्ध बिगड़ रहे हैं। मद्रास प्रान्त में तामिल, तैलगू, मलयालम और कन्नड़ भाषा के आधार पर चार प्रान्त बनाने की माँग भी एक नई समस्या बन गई है। बंगाल व बिहार में कुछ जिलों को लेकर झगड़ा चल रहा है कि वे किस प्रान्त में सम्मिलित किये जावें। पंजाब में गुरुमुखी व हिन्दी के सवाल को लेकर एक नया झगड़ा पैदा हो गया है और प्रान्त-विभाजन तक की आवाज भी उठाई जाने लगी है। इन सब के मूल में राष्ट्रीय-हित पर प्रान्तीय भावना की विजय होती दीख रही है।

नया विधान बनाने के साथ ही यह समस्या भी उत्पन्न हुई कि प्रांतों का विभाजन नये सिरे से हो अथवा उनमें कुछ परिवर्तन हो। भाषा के आधार पर प्रांत विभाजन की माँग बहुत प्रबलता से की जा रही थी। इसलिए इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करने के लिए

विधान-परिषद् ने एक उपसमिति बना दी। उसने इस प्रश्न के आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं पर विचार करके यह सिफारिश की कि नये प्रस्तावित प्रान्त अपना शासन-व्यय भी पूर्ण नहीं कर सकेंगे, इसलिए अभी प्रान्तों की सीमा में कोई परिवर्तन न किया जाय। कांग्रेस ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए पं० जवाहर लाल, सरदार पटेल और डा० पट्टाभि सीतारमैया की एक उपसमिति बना दी है।

कम्यूनिस्ट और सोशलिस्ट

हम पिछले अध्याय में भारत के राजनीतिक दलों का परिचय देते हुए सोशलिस्ट व कम्यूनिस्ट पार्टियों का उल्लेख कर आये हैं। इन दोनों पार्टियों की प्रवृत्तियाँ भारत सरकार के औद्योगिक विकास में बाधक हो रही हैं। सोशलिस्ट पार्टी जहाँ हड़तालें कराने का प्रयत्न कर रही है, वहाँ कम्यूनिस्ट पार्टी हिंसात्मक उपद्रवों पर उतर आई है। कुछ प्रांतों में तो वह किसानों व मजदूरों को भड़का कर भारतीय शासन तंत्र को असफल करने की पूरी कोशिश कर रही है। कम्यूनिस्ट पार्टी की नीति अपने देश की परिस्थितियाँ देखकर नहीं, रूसी हित व विचार देखकर निश्चित की जाती है। कम्यूनिस्टों द्वारा शस्त्र इकट्ठे करने, अधिकारियों को मारने और रेलगाड़ियों को लूटने तथा सरकारी गोदामों पर डाके डालने आदि के भी उदाहरणों की कमी नहीं है। चीन, बरमा, मलाया आदि में भी कम्यूनिस्टों की हरकतें लगातार बढ़ रही हैं। भारतीय प्रवृत्तियाँ भी उनसे पृथक् नहीं है। कम्यूनिस्टों का लक्ष्य ही आज देश में अराजकता, अशान्ति अव्यवस्था फैलाकर राष्ट्रीय सरकार की संपूर्ण मशीनरी को असफल करना है। चीन में कम्यूनिस्टों की विजय से भारत में कम्यूनिस्टों की प्रवृत्तियों के बढ़ने का खतरा बहुत बढ़ गया है।

अन्य समस्याएँ

इन प्रमुख समस्याओं के अतिरिक्त स्वतंत्र भारत की प्रथम

सरकार के सम्मुख जो अन्य समस्याएँ हैं, उनमें से कुछ प्रमुख निम्न-लिखित हैं :—

विधान-निर्माण—भारत के स्वतंत्र होने से भी पूर्व भारतीय राजनीतिज्ञ इस प्रश्न पर विचार करते रहे हैं कि भारत का विधान क्या हो। कांग्रेस ने पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमेटी बनाई थी। उसकी रिपोर्ट विधान निर्माण की दिशा में प्रथम भारतीय प्रयत्न था। गोलमेज सम्मेलन में, जो १९३० से १९३३ तक रही, भारतीय प्रतिनिधियों ने इस प्रश्न पर खूब गंभीरता से विचार किया। समय समय पर भारतीय विचारक विधान संबंधी प्रस्ताव करते रहे, किन्तु उनको या तो अधिकार नहीं था अथवा हिन्दू मुस्लिम प्रश्न की चट्टान के आगे वे सफल नहीं हो पाते थे। भारतवर्ष के स्वातंत्र्य की एक शर्त विधान-परिषद् थी। उसका कैसे संगठन हुआ, एक की जगह दो विधान-परिषदें बना कर देश का कैसे विभाजन किया गया, इसका परिचय हम पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं। अब स्वतंत्र भारत की विधान-परिषद् विधान बना रही है। देश की सरकार का संगठन कैसा हो, अमेरिकन विधान की तरह से अध्यक्ष प्रधान हो या ब्रिटिश विधान की तरह मंत्रिमण्डल प्रधान, प्रान्तों व केन्द्र में परस्पर क्या संबंध हो, अल्प संख्यक जातियों की समस्या कैसे हल हो, नागरिकों के मौलिक अधिकार क्या हों, सब व्यवसायों का राष्ट्रीकरण हो अथवा निजी उद्योगों को भी स्वीकृत किया जाय, प्रान्तों का नया सीमा-विभाजन किस आधार पर हो, आदि एक से एक विकट प्रश्न विधान-परिषद् के सामने थे। किसी भी सरकार का सब से प्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य विधान-निर्माण है। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय नेताओं व विचारकों ने इस दिशा में बहुत सफलता प्राप्त कर ली है। १५ अगस्त १९४९ तक विधान के अन्तिम रूप के स्वीकृत हो जाने की आशा है। इस विधान की संक्षिप्त रूपरेखा इस पुस्तक के अन्त में दी जा रही है।

सांप्रदायिकता—ब्रिटिश सरकार की नीति के परिणाम स्वरूप भारत की राष्ट्रीय प्रगति में सब से बड़ी बाधा सांप्रदायिकता की रही है। अन्त में इसी के परिणाम स्वरूप देश के दो टुकड़े हो गये। इस विभाजन के परिणाम स्वरूप देश में सांप्रदायिकता व बर्बरता का जो नग्न तांडव हुआ, उसका संक्षिप्त परिचय हम पिछले अध्याय में दे आये हैं। विभाजन के बाद भी यह जारी रहा और भारत में मुसलमानों के विरुद्ध क्रोध और असंतोष की आग दिल्ली. युक्तप्रान्त और अजमेर में भड़कने लगी। कांग्रेस हिन्दू मुसलमानों को कभी पृथक् राष्ट्र के रूप में नहीं देखती थी। उसका विश्वास था कि हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्र हैं। वह राष्ट्र को सांप्रदायिक रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार न थी। इसलिए भारत सरकार ने सांप्रदायिक एकता को स्थापित करने के लिए बहुत प्रयत्न किया। म० गांधी इस प्रयत्न के अग्रदूत और नेता थे। कलकत्ते में सांप्रदायिक उपद्रव आरंभ होने पर उन्होंने आमरण उपवास की घोषणा की इससे पर्याप्त लाभ हुआ। वे वहाँ से दिल्ली लौटे तो वहाँ भी हिन्दू मुसलमान परस्पर युद्ध कर रहे थे। म० गांधी ने वहाँ भी उपवास किया और शान्ति स्थापित हो गई।

महात्मा गांधी का बलिदान

लेकिन सांप्रदायिक एकता के लिए देश को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। म० गांधी हिन्दुओं और सिखों को किसी भी स्थिति में मुसलमानों की नृशंसता का बदला न चुकाने का उपदेश दे रहे थे। भारत सरकार भी उनके परामर्शों को स्वीकार कर रही थी। पाकिस्तान से अपने संबंध खराब न होने देने के लिए उसने ५५ करोड़ रु० की राशि, जो किन्हीं प्रश्नों के निर्णय तक रोक रखी थी, उसे दे दी गई। इस सद्भावना का पाकिस्तान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। काश्मीर का आक्रमण वैसा ही जारी रहा। कुछ उग्र हिन्दू

गांधी जी की एकता की नीति से, अत्यन्त असन्तुष्ट थे। वे यह समझने लगे कि मुसलमानों की नृशंसता और सांप्रदायिकता का जवाब उन्हीं की भाषा में दिया जाना चाहिये। उनकी इस इच्छा की पूर्ति में म० गांधी सब से बड़े बाधक थे। कुछ अविवेकी हिन्दुओं ने एक बहुत ही जघन्य षड्यंत्र किया और ३० जनवरी १९४८ को सायंकाल ५ बजे जब गांधी जी प्रार्थना सभा में आ रहे थे, नाथूराम विनायक गोडसे नामक व्यक्ति ने उन पर लगभग दो गज़ के फ़ासले से तीन बार गोली चलाई। गांधीजी 'राम' कह कर इस संसार से विदा हो गये। अहिंसा और शान्ति के देवता राष्ट्र-पिता गांधीजी के इस बलिदान से सारा देश शोकातुर हो गया। स्वतंत्र भारत की नवजात सरकार जब गांधीजी के परामर्शों की आवश्यकता सब से अधिक अनुभव करती थी, वे चले गये। देश अनाथ हो गया, परन्तु उनकी शिक्षाओं और विशेषकर सांप्रदायिक शांति पर और भी अधिक बल देने का निश्चय भारत सरकार ने कर लिया। देश पर भी उनके बलिदान का प्रभाव पड़ा और कुछ ही समय में दिल्ली की जिन सड़कों पर एक मुसलमान का जाना भी खतरनाक था, सैकड़ों मुसलमान बेखटके घूमने लगे, उनका पाकिस्तान की ओर जाना बन्द हो गया। देश में हिन्दू मुस्लिम एकता की भावना तो कायम न हुई, किन्तु सांप्रदायिक रक्तपात बिलकुल बन्द हो गया।

काश्मीर का युद्ध इस दिशा में बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ। वहाँ के नेता श्री शेख अब्दुल्ला ने खुल्लमखुल्ला जहाँ भारतीय संघ में सम्मिलित होने की घोषणा की, वहाँ हिन्दू और मुसलमानों के दो राष्ट्र होने के लीगी सिद्धान्त का भी घोर विरोध किया। वहाँ हिन्दू और मुसलमान सैनिक कंधे से कंधा भिड़ा कर आक्रमणकारी पठानों व पाकिस्तानी सैनिकों के साथ खूब लड़े। काश्मीर के युद्ध और उससे भी बढ़ कर जनमत ग्रहण में यदि भारतीय नीति की विजय होती है, तो सांप्रदायिकता पर यह विजय पाकिस्तान व भारत दोनों की

फिर एकता का द्वार भी खोल देगी और हिन्दू मुसलमानों के दो राष्ट्र होने की कल्पना स्वयं समाप्त हो जायगी। पाकिस्तान में भी कुछ समय बाद, यह आशा की जाती है कि सांप्रदायिक विद्वेष की दुर्भावना समाप्त होकर वस्तु स्थिति को समझने की बुद्धि की विजय होगी और तभी सांप्रदायिकता भी समाप्त हो जायगी।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

स्वतंत्र होने से पूर्व भारत की कोई अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति न थी। ब्रिटेन के शत्रु और मित्र भारत के भी शत्रु और मित्र थे। ब्रिटेन अपने हितों को दृष्टि में रख कर ही भारत की अन्तर्राष्ट्रीय नीति का निर्माण करता था। इंगलैण्ड और जर्मनी का युद्ध हुआ, तो भारत ने भी जर्मनी से युद्ध घोषित कर दिया। किन्तु भारत के स्वतंत्र होने के बाद उसे अपनी नीति निर्धारित करनी थी।

भारत के स्वतंत्र होते समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अत्यन्त विषम थी। रूस और अमरीका इस युद्ध के परिणाम स्वरूप दो प्रधान प्रतिस्पर्धी शक्तियों के रूप में सामने आ गये। रूस का नारा साम्यवाद का है, तो अमेरिका प्रजातंत्र की रक्षा का नारा लगा रहा है। अमरीका को ब्रिटेन का भी सहयोग प्राप्त है। समस्त यूरोप दो गुटों में बंट गया है। पूर्वी यूरोप रूस का समर्थक है या उसके प्रभाव में है। पश्चिमी यूरोप ब्रिटेन व अमरीका के प्रभाव में है। आधे जर्मनी पर युद्ध के बाद रूस का अधिकार है, तो शेष जर्मनी फ्रांस ब्रिटेन व अमरीका के अधिकार में है। ग्रीस और इटली में यद्यपि ब्रिटिश अमरीकन पक्षपाती सरकारें हैं, तथापि वहाँ कम्यूनिस्ट पार्टियाँ लगातार गृह युद्ध की स्थिति पैदा किये रहती हैं। मध्यपूर्व के मुस्लिम देशों में भी रूस एक ओर अपना प्रभाव बढ़ने की चेष्टा में है, तो दूसरी ओर अमरीका व ब्रिटेन अपना बल बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हैं। यही स्थिति चीन व पूर्व के अन्य एशियायी देशों

में है। समस्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर इन दो गुटों की प्रतिस्पर्धा प्रभाव डाल रही है। स्वतंत्र भारत सरकार के नेताओं ने इस स्थिति में यह निश्चय किया कि भारत किसी भी गुट में सम्मिलित न हो। वह प्रत्येक प्रश्न पर न्याय और सत्य की दृष्टि से विचार कर अपनी निष्फलता व स्वतंत्रता कायम रखे। इस नीति पर चलने का एक प्रत्यक्ष परिमाण तो यह हुआ कि कोई भी गुट भारत को सदा समर्थन देने को तैयार न हुआ। काश्मीर के प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने जो रुख लिया, वह किसी भी तरह न्याय्य नहीं था। किन्तु फिर भी भारत ने किसी भी गुट में सम्मिलित होना स्वीकार न किया। इसका प्रभाव आगे जाकर अवश्य पड़ेगा, और भारत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का नेतृत्व करने लगेगा, ऐसी आशा अवश्य की जा रही है।

ब्रिटिश कामन वेल्थ—ब्रिटिश सरकार के मंत्रि-मण्डल ने अपनी महत्त्वपूर्ण योजना में भारत की विधान-परिषद् को ब्रिटिश कामनवैल्थ में रहने या न रहने का निर्णय करने का अधिकार दिया था। लेकिन इसके साथ ही यह इच्छा भी व्यक्त की थी कि वह कामनवैल्थ में रहे। आज तक भारत कामनवैल्थ का एक सदस्य है। ब्रिटिश सरकार की प्रबल इच्छा है कि भारत कामनवैल्थ का सदस्य रहे। अनेक भारतीय नेता भी इसके पक्ष में हैं। इसका अन्तिम निर्णय विधान परिषद् करेगी। ब्रिटिश राष्ट्र मंडल का सदस्य रहने पर भी भारत अपनी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का निर्धारण करने में स्वतंत्र रहेगा। इंडोनीशिया पर डच-आक्रमण के प्रारंभ होते ही भारत ने समस्त एशियायी राष्ट्रों का सम्मेलन बुला कर सहज ही एशिया का नेतृत्व प्राप्त कर लिया है।

विदेशों से संबंध—स्वतंत्र होने के बाद भारत सरकार ने भिन्न-भिन्न देशों से अपने राजनीतिक संबंध स्थापित करने शुरू किये। अमरीका, ब्रिटेन, रूस, चीन, फ्रांस, टर्की, अफ़गानिस्तान, आर्जेंटाइना,

मिस्र आदि करीब ३० देशों में भारतीय दूतावास खोल दिये गये हैं।

पाकिस्तान—लेकिन भारत की वैदेशिक समस्या की सबसे बड़ी विषमता पाकिस्तान संबंधी है। पाकिस्तान का भवन ही सांप्रदायिक विद्वेष, रक्तपात और देश-विभाजन की नींव पर खड़ा हुआ था। मुस्लिम लीगी नेता भारत के साथ अच्छे संबंध स्थापित नहीं कर सके। काश्मीर पर आक्रमण तो सीधा भारतवर्ष पर हमला था। हैदराबाद के भारत-विरोधी मुस्लिम गुट को सहायता और हिन्दुओं के साथ दुर्व्यवहार तथा संपत्ति के विभाजन संबंधी अनेक झगड़ों के कारण पाकिस्तान से संबंध लगातार उलझते गये। तथापि भारत सरकार ने सदा यह प्रयत्न किया कि संबंध कटु से कटुतर न हों और झगड़े का क्षेत्र किसी तरह विस्तृत न हो। यही कारण है कि काश्मीर पर आक्रमण के बावजूद भी भारत-सरकार ने पाकिस्तान के किसी प्रदेश पर हमला नहीं किया। भारत-सरकार की नीति यह है कि पाकिस्तान से सम्बन्ध अच्छे हों। उसी दिशा में उसके प्रयत्न जारी हैं। लेकिन जब तक काश्मीर का निर्णय अन्तिम रूप से न हो जावे, तब तक भारत की स्थिति कभी भी अशान्त हो सकती है। पाकिस्तान और भारत के पारस्परिक संबंध अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से कभी भी स्थिति को ज्यादा विषम कर सकते हैं। अभी बहुत से विवादग्रस्त प्रश्न ऐसे हैं जिनका निर्णय नहीं हो सका। पूर्वी बंगाल की सीमा तथा शरणार्थियों के प्रश्न भी बहुत उलझन भरे हैं।

चीन में कम्यूनिस्ट विजय, भारत में कम्यूनिस्टों की प्रवृत्तियाँ, पाकिस्तान की समझौता न करने की नीति और भीषण सांप्रदायिकता तथा भारत व पाकिस्तान पर अपना अपना प्रभाव डालने की विविध शक्तियों की प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं, जिनका निर्णय जब तक न हो जावे, तब तक देश के वातावरण में अस्थिरता रहेगी। किन्तु हमें विश्वास करना चाहिए कि स्वतंत्र भारत सब प्रकार की समस्याओं का समाधान करके संसार में एक शक्तिशाली, सुखी व संपन्न राष्ट्र बन जायगा।

अध्याय ८

दक्षिणी पूर्वी एशिया में ज्वालामुखी

बर्मा

करीब पौने तीन लाख वर्ग मील और १॥ करोड़ आबादी का बर्मा प्रदेश पिछले कुछ वर्षों में असाधारण संकट और संक्रांति काल में से गुजरा है। १९३५ तक बर्मा भारतवर्ष का ही एक प्रान्त था। इसके बाद उसे ब्रिटिश पार्लमेंट ने एक कानून बना कर एक पृथक् देश बना दिया। जब जापान ने अमेरिका और ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ किया, तब बर्मा भी जापान के अधिकार में आ गया। ७ मार्च १९४२ को जापान ने रंगून पर अधिकार किया और मई १९४५ तक वह जापान के हाथ में रहा। इसके बाद उस पर फिर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। तीन सवा तीन साल के इस अर्से में बर्मा को हवाई बम-वर्षा, टैंकों और तोपों की जिस अग्नि-वर्षा में से गुजरना पड़ा उसने उसके नगरों को भस्मसात् कर दिया; बड़े-बड़े भवन, पुल और कारखाने सब का विध्वंस हो गया। लाखों की संख्या में सैनिक और नागरिक इस भयंकर रणक्षेत्र में मारे गए। समस्त आर्थिक संगठन छिन्न-भिन्न हो गया। लेकिन इससे भी बड़ी क्रांति वहाँ राजनीतिक क्षेत्र में हुई। जापान ने वहाँ अधिकार करने के बाद एक स्वतंत्र बर्मा सरकार की स्थापना की थी, जो जापान के साथ संधि कर के उसे युद्ध-काल में सहयोग देती रही। स्वतंत्रता की जो भावना बर्मा में पहले से पैदा हो चुकी थी, वह इस नई सरकार की स्थापना के बाद और भी प्रज्वलित हो उठी।

जब ब्रिटेन ने बर्मा की मुक्ति के नाम पर जापानियों को वहाँ से खदेड़ कर फिर उसे अपने अधीन कर लिया, तब बर्मा-निवासियों में क्षोभ और असंतोष की जो लहर पैदा हुई, वह लगातार तीव्र होती गई। बर्मा के एक बड़े प्रदेश में एक साल बाद तक भी शासन-व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी। केवल मार्च १९४६ में रंगून को छोड़ कर शेष बर्मा में २४६ हत्या, ५५८ डाके व हत्या, ७८५ डाके तथा ३४७ पशुओं की चोरी की घटनाएँ हुईं। यह अपराध-वृद्धि उस असंतोष का बाहरी चिह्न था, जो बर्मा में ब्रिटिश सरकार के शासन के विरुद्ध भारत से भी अधिक बद्ध-मूल हो चुका था। राजनीतिक स्वातंत्र्य की अभिलाषा वहाँ बहुत बल पकड़ चुकी थी और यू आँग सान के नेतृत्व में सभी राजनीतिक दल फासिस्ट विरोधी जन स्वातंत्र्य संघ में संगठित हो गये। इस दल के नेता यू आँग सान ने यह घोषणा की कि बर्मा को आजादी मिलनी चाहिए, चाहे उसके लिए कितना मूल्य क्यों न अदा करना पड़े।

ब्रिटेन के हित—ब्रिटेन बर्मा के आर्थिक महत्त्व को समझता है। वहाँ उसके व्यापारिक हित बहुत बड़े परिमाण में विद्यमान हैं, जिन्हें वह छोड़ना नहीं चाहता। ईरान की तरह बर्मा का तेल भी ब्रिटेन के लिए सदा प्रलोभन रहा है। पाँच करोड़ पौंड में से ९० फीसदी ब्रिटिश पूँजी हैं। बर्मा आयल कंपनी में ही उसकी पौने तीन करोड़ पौंड पूँजी लगी हुई है। बर्मा के जापान के नियंत्रण में जाने के कारण उसके इन सब आर्थिक हितों को गहरा धक्का लगा था। इसलिए युद्ध के बाद ब्रिटिश पूँजीपति अंग्रेज सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचे और भारत की भाँति नये चुनाव न करा कर गर्वनर के हाथ में सत्ता रख कर अपने हितों की रक्षा करने में लग गये। बर्मा में इसके विरुद्ध ऐसा प्रबल आन्दोलन हुआ, जिसकी कल्पना भी अंग्रेज अधिकारियों ने नहीं की थी। बर्मियों को अंग्रेज अधिकारियों ने कहा कि युद्ध-कालीन अव्यवस्था को दूर करके देश का पुनर्निमाण

करना आवश्यक है, लेकिन इससे बर्मी जनता को संतोष न हुआ। उन्होंने कहा कि वे ब्रिटिश बर्मा का नहीं, बर्मी बर्मा का पुनर्निर्माण चाहते हैं और इसे वे स्वयं कर सकते हैं। अंग्रेज अधिकारियों ने स्थिति की गंभीरता को कुछ कुछ समझा और पार्लमेंट में एक बिल पास कराया और उसके अनुसार को ४ जनवरी १९४८ को बर्मा स्वराज्य दे दिया।

घरेलू समस्याएँ—भारतवर्ष की तरह बर्मा की भी कुछ आन्तरिक समस्याएँ हैं। वहाँ अनेक जातियाँ निवास करती हैं। १॥ करोड़ की आबादी में से केवल ९० लाख बर्मी हैं। ये इंडोमंगोलियन जाति के हैं और चीनी तिब्बती ग्रुप की भाषा बोलते हैं। कैरेन तथा शान जातियों के भी क्रमशः १४ लाख और १० लाख निवासी बर्मा में रहते हैं। शान लोगों की अलग ३४ रियासतें हैं, जो रकबे में ६३००० वर्ग मील से कम नहीं हैं। वास्तव में ब्रिटेन ने अनेक दफा करके बर्मा पर अधिकार किया था और चीन के कुछ प्रदेश भी बर्मा में मिला लिये थे, इस लिए वहाँ विविध जातियों और हितों की खिचड़ी सी बन गई है। कैरेनों और शान लोगों की भी अपनी अपनी महत्वाकांक्षाएँ हैं और वे बर्मा से पृथक् अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। कम्यूनिस्ट भी वहाँ लगातार उपद्रव कर रहे हैं। बर्मी सरकार के प्रधान-मंत्री और बर्मी जनता के लोकप्रिय नेता जनरल यू आँग सान तथा उनके ६ मंत्रियों को कतल कर दिया गया। उनके बाद था किन नू ने मंत्रिमण्डल बनाया, किन्तु बर्मा की स्थिति उसी तरह विकट है। वहाँ कम्यूनिस्टों की निजी सेनाएँ युद्ध कर रही हैं। कैरेन लोगों ने भी युद्ध का आश्रय लिया है और अनेक स्थानों पर कब्जा कर लिया है। यह कहना कठिन है कि बर्मा का राष्ट्रीय मंत्रिमण्डल कब तक स्थायी रहेगा और कब तक बर्मा अखण्ड बना रहेगा।

स्याम से इंडोनीशिया तक

भारत और बर्मा के पूर्व में अनेक छोटे छोटे देश हैं। युद्ध के बाद इन देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में असाधारण महत्त्व प्राप्त कर लिया है। भौगोलिक और सामरिक दृष्टि से इनका महत्त्व पहले भी था, लेकिन वे पराधीन राष्ट्र थे और इतने दुर्बल थे कि उनसे विदेशी शक्ति का प्रतिरोध करने की कोई संभावना भी न करता था। इस लिए उन देशों की तात्कालिक स्थिति एक स्थायी सत्य की भाँति स्वीकार की जा रही थी। लेकिन युद्ध में जिस तेजी से जापान का उन पर अधिकार हुआ था, उसी तेजी से जापानी अधिकार समाप्त हो जाने का उन प्रदेशों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। उन देशों के निवासी इस अग्नि-परीक्षा में से अधिक साहसी होकर निकले हैं। उन्हें यह विश्वास हो गया है कि युद्ध से पूर्व की उनकी पराधीन स्थिति एक स्थायी सत्य नहीं है। वह स्थिति किसी भी क्षण बदली जा सकती है। इस नई भावना के कारण उन में विदेशी शक्तियों के संघर्ष की क्रीड़ा-स्थली बनने की अपेक्षा स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में संगठित होने की इच्छा बलवती हो उठी है। बस इसी नई स्वातंत्र्य-भावना ने उनके अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व को और भी अधिक बढ़ा दिया है।

इन सब देशों में न केवल विदेशियों ने राजनीतिक अधिकार स्थापित कर रखा है, अपितु उनके आर्थिक शोषण के कारण इन देशों के असली निवासियों की अवस्था बहुत शोचनीय थी। नीचे की तालिका से मालूम होगा कि इन देशों के व्यापार व्यवसाय और खानों पर विदेशी पूँजी कितनी अधिक लगी हुई थी।

इंडोनीशिया के टापू	१ अरब ४० करोड़ १० लाख डालर
ब्रिटिश मलाया	३७ करोड़ २० लाख डालर
थाईलैंड या स्याम	९ करोड़ डालर
बर्मा	२२ करोड़ ५० लाख डालर

हिन्द चीन ३० करोड़ २० लाख डालर

ब्रिटिश मलाया के टिन, रबड़ तथा बैंकिंग सिस्टम पर अंग्रेज पूँजीपतियों का अधिकार है। स्याम की टिन की खानें तथा सागवान के जंगल भी उन्हीं के कब्जे में हैं। ब्रिटिश मलाया टिन और रबड़ में प्रकृति द्वारा सम्पन्न होने पर भी इतना दरिद्र है कि वहाँ की सरकार प्रति नागरिक के पीछे १८ डालर की कर्जदार थी और स्याम की सरकार प्रति व्यक्ति पीछे २॥ डालर की। यही स्थिति दूसरे देशों की थी। विदेशियों के आर्थिक प्रभुत्व के कारण इन देशों की जनता का विकास नहीं हो पाया था। जापान के आक्रमण और पराजय दोनों ने इन देशों की जनता में स्वातंत्र्य-भावना पैदा कर दी और इन्होंने अपनी राजनीतिक और आर्थिक दोनों दासताओं की जंजीरों को एक-साथ तोड़ फैंकने को निश्चय कर लिया।

स्याम—स्याम का क्षेत्रफल दो लाख वर्ग मील है। इस पर युद्ध से पूर्व ब्रिटेन का बहुत प्रभाव था और अब फिर उसने अपने प्रभाव को कायम कर लिया है। स्याम का कुछ पश्चिम-दक्षिणी प्रदेश ब्रिटेन ने १९०९ में लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। उन्नीसवीं सदी के अंत में कुछ पूर्वी प्रदेशों पर फ्रांस ने अधिकार कर लिया था। अब युद्धकालीन परिवर्तन देखकर इस देश में अपने पहले के प्रदेशों पर फिर अधिकार करने और विदेशी प्रभुत्व से स्वतंत्र होने की इच्छा पैदा हो गई है।

मलाया—मलाया प्रायद्वीप में बहुत छोटी छोटी रियासतें हैं जिन में से अधिकांश अंग्रेजों के संरक्षण में हैं। इस प्रायद्वीप के दक्षिणी सिरे पर सिंगापुर नामक प्रसिद्ध जल-प्रणाली है, जो चीन सागर को भारतीय समुद्र से मिलाती है। सामरिक दृष्टि से इस जल-प्रणाली का असाधारण महत्त्व है। इसीलिए ब्रिटेन ने यहाँ करोड़ों पौंड व्यय कर के संसार का सब से बड़ा और सब से सुदृढ़ जहाजी अड्डा तथा किला बनवाया था। सिंगापुर की आबादी ७ लाख है.

जिसमें से ५,५०,००० चीनी हैं। मलाया और सिंगापुर में भी स्वातंत्र्य की भावना जाग गई है। ब्रिटेन की एक योजना के अनुसार मलाया प्रायद्वीप की सब रियासतों को मिलाकर एक मलाया-संघ बनाया जायगा। लेकिन मलाया इस योजना से कहाँ तक संतुष्ट होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

हिंद चीन—हिंद चीन की समस्या स्याम और मलाया से अधिक विषम हो चुकी है। इसका क्षेत्रफल २,८१,००० वर्गमील तथा आबादी २,४०,००,००० है। अनाम और कम्बोडिया की रियासतें भी हिंद चीन में सम्मिलित हैं। इस समस्त प्रदेश पर १९वीं सदी के अंत में फ्रांस ने अधिकार कर लिया था। जब इस युद्ध में फ्रांस का पतन हुआ, तो जापान ने हिंद चीन को २४ घंटे की धमकी देकर वहाँ अपने सैनिक अड्डे स्थापित कर लिये। जापान इससे पहले भी 'एशिया एशियावासियों के लिए' के नारे का प्रचार कर चुका था। जापानी अधिकार के समय हिंद चीन में स्वातंत्र्य-भावना और भी पनप गई। जापान की पराजय में मित्रराष्ट्रों को सहायता देने की एक शर्त हिंद चीन के राजनीतिक नेताओं ने यह रखी थी कि फिर से हिंद चीन पर फ्रांस का अधिकार न होगा और उसे स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया जायगा। लेकिन युद्ध समाप्त होते ही फ्रेंच सेनाएँ २३ सितम्बर १९४५ को हिंद चीन की राजधानी सैगाँव में प्रविष्ट हो गईं। हिंद चीन की अनामी स्वातंत्र्य सेनाओं ने फ्रेंच सेनाओं का प्रतिरोध किया। कई संघर्ष हुये, लेकिन फ्रांस की शक्तिशाली सेनाओं के हवाई जहाजों, तोपों और टैंकों का मुकाबला वे न कर सके। फिर भी फ्रेंच शायद सफल न हो पाते, यदि ब्रिटेन की सेनाएँ उन्हें सहायता न देतीं। बहुत सी भारतीय सेनाएँ भी वहाँ भेजी गईं। वहाँ की जापानी सेनाओं से, जिन्हें निकालने के लिए मित्रराष्ट्र वहाँ पहुँचे थे, अनामी-विद्रोह को शांत करने में सहायता ली गई। अनामियों के स्वातंत्र्य-विद्रोह के कठोर दमन में ब्रिटिश सहायता का भारत में तथा अन्यत्र

तीव्र विरोध किया गया। इस विरोध का ब्रिटेन ने यह उत्तर दिया कि हिंद चीन में युद्ध के बाद शांति स्थापना ही हमारा उद्देश्य रहा है, जिससे जापान को वहाँ अपनी हलचलों का फिर कोई मौक़ा न मिले।

आज भी हिंद चीन में स्वातंत्र्य युद्ध जारी है और यह असंभव नहीं है कि निकट भविष्य में हिन्द चीन एक पूर्ण शक्तिशाली स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में परिणत हो जाय।

इंडोनीशिया

महत्त्व—जो ज्वालामुखी हिन्द चीन में जल रहा है, उससे भी अधिक भीषण विस्फोट के साथ वह मलाया और हिन्द चीन के दक्षिण में स्थित ईस्ट इंडीज के टापुओं में डच-शासन के विरुद्ध प्रज्ज्वलित हो रहा है। जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, डच गायना, आदि विस्तृत प्रदेशों का क्षेत्रफल ७८८००० वर्गमील है। इन पर हालैंड का अधिकार है। ये स्थान बहुत धन-धान्य पूर्ण हैं। गन्ना, कहवा, रबड, चावल, तमाखू तथा गर्म मसाले आदि कृषिजन्य पदार्थ ही नहीं, खनिज पदार्थों की दृष्टि से भी यह समस्त प्रदेश बहुत संपन्न हैं। केवल बोर्नियो में, जो क्षेत्रफल में करीब तीन लाख वर्गमील है, ३० लाख टन तेल निकलता है। कोयला, राँगा और सोना आदि धातुएँ भी यहाँ निकलती हैं। दक्षिणी हिन्द-सागर तथा प्रशान्तसागर के बीच में स्थित होने के कारण उनका राजनीतिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। विस्तार और जन-संख्या की दृष्टि से एशिया के यूरोपियन साम्राज्य में डच ईस्ट इंडीज़ का बहुत महत्त्व है। बल्कि वे सारे संसार में महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। भारतीय महासागर से प्रशान्त महासागर तक, मलक्का जल-डमरू-मध्य से न्यूगायना तक जितने टापू हैं, प्रायः उन सब पर डचों का ही अधिकार है। केवल बोर्नियो का थोड़ा सा उत्तरी भाग अंग्रेज़ों के हाथ में है।

स्वातंत्र्य संग्राम—जापान के 'एशिया एशियावासियों के लिए' के नारे ने डच ईस्ट इंडीज़ और विशेषतः जावा पर विशेष प्रभाव डाला। उनकी यूरोपियनों से मुक्त होने की अभिलाषा प्रबल हो उठी और जब जापानियों ने यह अनुभव कर लिया कि वे अब वहाँ टिक नहीं सकेंगे, उन्हें मित्रराष्ट्रीय सेनाओं के सामने झुकना ही पड़ेगा, तो उन्होंने जावा में स्वतन्त्र्य-भावना को और भी अधिक प्रदीप्त करने में कुछ उठा न रखा। संभवतः उन्होंने जावा निवासियों को शस्त्रास्त्र आदि से भी गुप्त रूप से सहायता दी। इसका परिणाम यह हुआ कि जब जापानियों के बाद डच लोग जावा पर अधिकार करने आये, तो जावा निवासियों ने उनके राज्य को मानने से स्पष्ट इनकार कर दिया और प्रबल विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया।

यह विद्रोह इतना संगठित और प्रभावशाली था कि डच सेनाएँ एक दम अभिभूत-सी हो गईं। उधर डा० सुकर्ण (सोकरनो) के नेतृत्व में जावा में एक स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्य कायम कर दिया गया। इस नई सरकार ने प्रजातंत्र और स्वतंत्रता के नाम पर मित्रराष्ट्रों से अपील की कि वे उसकी स्वतंत्रता को स्वीकार करें। इसका प्रभाव भी पड़ा। समस्त दक्षिण-पूर्वी एशिया में उनके प्रति सहानुभूति की एक अभूतपूर्व लहर दौड़ गई। आस्ट्रेलिया तथा अन्य समीपवर्ती स्थानों के बन्दरगाहों में हड़ताल हो गई और मल्लाहों तथा मजदूरों ने जावा के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन को दमन करने वाली सेनाओं को ले जाने वाले जहाजों पर काम करने से इनकार कर दिया। अन्य देशों में भी दमन की निन्दा की गई। लेकिन ब्रिटेन पश्चिमी यूरोप में रूस के विरुद्ध अपना गुट बनाने के लिए फ्रांस और हालैंड की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अत्यंत उत्सुक था। इसलिए उसने इंडोनीशिया में शान्ति स्थापना के नाम पर डच सरकार को विद्रोह के दमन में सहायता दी।

इन देशों में ब्रिटेन के आर्थिक हितों की चर्चा हम पहले कर

आये हैं। इंडोनीशिया में भी ब्रिटेन की २० करोड़ डालर पूँजी लगी हुई है।

ब्रिटेन की इस नीति का एक और भी कारण है। वह यह स्पष्ट देख रहा है कि यदि पूर्वीय एशिया में फ्रांसीसियों और डचों के साम्राज्य नई स्वातंत्र्य-ज्वाला में भस्म हो जाते हैं तो मलाया आदि में भी वह लहर फैल कर रहेगी और उसे भी वहाँ से हटने के लिए विवश होना पड़ेगा। इस तरह ब्रिटेन, फ्रांस और हालैंड दक्षिण पूर्वी एशिया में अपने-अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए एक संयुक्त मोर्चा बनाकर लड़ रहे हैं। डच सेनाओं ने जावा के अनेक महत्त्व-पूर्ण स्थानों पर अधिकार कर लिया है। लेकिन दूसरी ओर स्वाधीनता के लिए उत्सुक वहाँ के निवासी भी दृढ़ हैं तथा किसी भी प्रकार डच-सरकार को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। बमबाज़ी, गोलाबारी और टैंकों की अग्निवर्षा के बावजूद भी वे अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए।

इंडोनीशिया की स्थिति बहुत विकट हो गई, तो संयुक्त-राष्ट्र-संघ में यह प्रश्न गया। उसने इस पर बहुत समय तक विचार किया और एक कमीशन वहाँ की स्थिति के अध्ययन के लिए भेजा। डच सरकार ने इंडोनीशिया की राष्ट्रीय सरकार से अन्तिम निर्णय तक युद्ध स्थगित रखने का समझौता किया। किन्तु वह इस पर स्थिर नहीं रही। दिसंबर १९४८ में डच सरकार ने इंडोनीशियन सरकार के क्षेत्र पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। पं० जवाहर लाल नेहरू ने इसे यूरोपियन शक्तियों का एशिया में पुनः साम्राज्य स्थापना का प्रयत्न समझा और स्थिति की गंभीरता व्यक्त करते हुए उन्होंने जनवरी १९४९ में दिल्ली में सब एशियायी राष्ट्रों का सम्मेलन बुलाया। सब एशियायी देशों ने पहली बार एक स्वर से यूरोपियन शक्ति के आक्रमण का विरोध किया और कुछ प्रस्ताव सुरक्षा समिति को भेजे। जनवरी के अन्त तक इस संबंध में सुरक्षा समिति कोई निर्णय नहीं कर सकी। यह स्पष्ट दीखता है कि यदि इस समिति

ने इंडोनीशिया की स्वतंत्रता की दिशा में कोई कदम न उठाया, तो एशियायी देश कोई कदम उठावेंगे।

इस तरह दक्षिण पूर्वी एशिया में १२ लाख ८० हजार वर्गमील के विस्तृत प्रदेश में घोर अशान्ति की ज्वालाएँ जल रही हैं। इसका अर्थ यह है कि ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रांस और हालैंड के संयुक्त क्षेत्रफल से चार गुने प्रदेश में भीषण राजनीतिक असंतोष विद्यमान है। जन-संख्या की दृष्टि से देखें तो यह संख्याएँ और भी प्रभावकारी सिद्ध होंगी। लगभग साढ़े चौदह करोड़ मनुष्यों में तीव्र असंतोष विद्यमान है। विश्व में शांति-स्थापना इस असंतोष के समाप्त हुए बिना संभव नहीं है। रूस और ब्रिटेन के पारस्परिक संघर्ष के कारण स्वभावतः रूस की सहानुभूति एशियायी प्रदेशों के साथ है।

हिंद चीन, मलाया और स्याम की कुछ आन्तरिक समस्याएँ हैं। पिछले एक सौ वर्ष में इन राष्ट्रों के आपसी सीमा-संबंधी झगड़े कई बार हुए हैं। फ्रांस और ब्रिटेन ने भी अनेक स्थानों पर अधिकार करके इनकी सीमाओं में कई हेर फेर किये हैं। उन्हीं सीमाओं को लेकर इनके आपसी झगड़े उठ सकते हैं। इन झगड़ों में चीन भी सम्मिलित है, क्योंकि उसके प्रदेश भी हिंदचीन, बर्मा आदि में फ्रांस व ब्रिटेन द्वारा मिलाए गए हैं। फ्रांस की सरकार ने स्याम को यह धमकी दी है, कि वह १९४१ में हिंद चीन से छीने गये प्रदेश वापस कर दे, अन्यथा उसके लिए से अच्छा न होगा।

फिलिपाइन्स द्वीप समूह—दक्षिण-पूर्वी एशिया में फिलिपाइन्स द्वीप समूह है। यह छोटे बड़े १००० टापुओं का समूह है, जिसका क्षेत्रफल लगभग १,१४,००० वर्गमील और आबादी १,४०,००,००० है। मनीला इसकी राजधानी है। १८९८ में स्पेन-अमेरिका युद्ध के बाद अमेरिका ने प्रायः ६ करोड रुपये देकर स्पेन से यह समस्त द्वीप-समूह ले लिया था। यहाँ भी अमेरिकन-शासन के विरुद्ध स्वाधीनता का आन्दोलन बहुत हुआ। अनेक वैधानिक परिवर्तनों के बाद अम-

रीका ने १९४६ में उसे स्वराज्य देने की प्रतिज्ञा की। इस युद्ध में फिलिपाइन्स को जापान के हाथ से मुक्त कराने के कुछ समय बाद, ४ जुलाई १९४६ को अमेरिका ने स्वाधीन राष्ट्र के रूप में स्वीकार कर लिया। अब वहाँ किसी प्रकार का अमेरिकन शासन नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि अमेरिका का वहाँ कोई प्रभाव भी नहीं है। अनेक प्रकार की आर्थिक और सैनिक संधियों के द्वारा अमेरिका ने फिलिपाइन्स में अपने आर्थिक हितों की रक्षा कर ली है तथा कुछ अधिकार प्राप्त कर लिये हैं। अमेरिका की २० करोड़ डालर पूँजी वहाँ लगी हुई है।

अध्याय ९

चीन

हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि यूरोप तथा मध्य पूर्व में अशांति है। भारत और बर्मा भी अपनी समस्याएँ अभी तक सुलझा नहीं सके हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया—स्याम, मलाया, हिंद चीन और ईस्ट इंडीज़—सभी में असंतोष और क्षोभ की ज्वालाएँ जल रही हैं। सभी देशों में राजनीतिक गुटबन्दी, पारस्परिक स्वार्थों का संघर्ष, आन्तरिक समस्याएँ अथवा स्वाधीनता की प्रचंड अभिलाषा आदि के कारण अशांति का राज्य है। और किसी भी समय कोई छोटी सी चिनगारी भीषण विस्फोट का कारण बन सकती है। लेकिन विश्व की अशान्ति का पूर्ण चित्र समझने के लिए अभी हमें चीन और सुदूर-पूर्वी एशिया पर भी दृष्टि डालनी चाहिए, जहाँ रूस और अमेरिका के स्वार्थों का तीव्र संघर्ष है और गृह-युद्ध ने जिस देश को बिलकुल क्षत-विक्षत कर दिया है।

चीन का अंग-भंग—चीन रूस के बाद संसार का सब से विशाल प्रदेश है। इसका वास्तविक क्षेत्रफल ४२,७८,००० वर्ग मील और इसकी आबादी ४५,८०,००,००० है। लेकिन आज इसके पास न इतना क्षेत्रफल है और न इतनी आबादी। मंगोलिया एक स्वतंत्र राष्ट्र बन रहा है, तिब्बत पहले ही स्वाधीन हो गया था। मंचूरिया जापान के अधिकार से अभी मुक्त किया गया है। वस्तुतः चीन का क्षेत्रफल इससे भी अधिक था, लेकिन उसकी दुर्बलता से लाभ उठाकर यूरोपियन राष्ट्रों और जापान ने लूटखसोट का जो कांड किया वह चीन के इतिहास की बहुत करुण कहानी है। महत्वपूर्ण बस्तियों व बन्दरगाहों पर नियन्त्रण, समुद्री अड्डों तथा प्रभाव-शाली क्षेत्रों और हरजाने के नाम से कुछ प्रदेशों पर अधिकार आदि का सिलसिला १८४२ ई० से शुरू हुआ था, जब ब्रिटेन ने अफ़ीम युद्ध के हरजाने के तौर पर उससे हाँगकाँग छीन लिया था। १८६० ई० में रूस ने चीन को दबाकर उससे ३६०००० वर्गमील प्रदेश छीन लिया, जिस में से ६०० मील तो प्रशान्तसागर का तट था। ब्लाडीवास्टक का प्रसिद्ध बन्दरगाह इसी तट पर है। १८६२ ई० में ब्रिटेन ने दक्षिणी बर्मा ले लिया; १८७६ ई० में यांगत्सी घाटी पर ब्रिटेन का नियंत्रण हो गया, १८८४-८५ में फ्रांस ने अनाम को अपने हाथ में ले लिया; १८८६ ई० में ब्रिटेन ने उत्तरी बर्मा को भी अपने राज्य में मिला लिया; ४ साल बाद पुर्तगाल ने मकाओ बन्दरगाह छीन लिया; इसके भी ४ साल बाद चीनी साम्राज्य के करद देश स्याम को ब्रिटेन व फ्रांस ने स्वतन्त्र घोषित कर दिया और जापान ने फारमोसा तथा कोरिया पर हाथ साफ़ किया। १८९८-९९ में ब्रिटेन, रूस, फ्रांस और जर्मनी ने बहुत से चीनी प्रदेश २५ से ९९ साल तक के पट्टों पर ले लिये। इस तरह १८९९ में एक चीनी लेखक के कथनानुसार "चीन के ३००० मील विस्तृत समुद्री तट पर एक भी बन्दरगाह ऐसा न था, जहाँ वह विदेशियों की सम्मति के

बिना अपना जहाज़ खड़ा कर सके।" इसके बाद भी चीन की लूट-खसोट का किस्सा चलता रहा और उसके हाथ से तिब्बत, मंचूरिया, मंगोलिया तथा सिनकियाँग निकल गये। इस प्रादेशिक हानि के सिवाय, रेलवे, बैंकों तथा अन्य कल-कारखानों में विदेशी पूँजी की इतनी भरमार हो गई कि अपनी आर्थिक व्यवस्था पर चीन का कोई नियंत्रण न रहा।

जापान का आक्रमण—चीन पर अन्तिम वार जापान ने किया था। १९३१ में मंचूरिया और १९३३ में जेहोल चहार आदि ज़िले ले लिये। १९३७ में भीषण आक्रमण कर विस्तृत पूर्वी प्रदेश पर अधिकार कर लिया, लेकिन यह आक्रमण उसे बहुत मँहगा पड़ा। १९४५ में जापान के पतन के साथ मंचूरिया, कोरिया तथा चीन के अन्य विशाल प्रदेश, जहाँ उसने अपनी कठपुतली सरकारें स्थापित कर ली थीं, सब मुक्त हो गये। चीन ने लगातार ८-९ साल के भीषण युद्ध से छुट्टी पा ली और उसका एक प्रधान शत्रु जापान चिर काल के लिए दुर्बल कर दिया गया।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि चीन में शान्ति स्थापित हो गई। उसकी समस्याएँ आज भी पहले जैसी तीव्र हैं।

चीन की समस्याएँ दो प्रकार की हैं—आन्तरिक और बाहरी। आन्तरिक समस्या है गृह-युद्ध की। वहाँ कम्यूनिस्ट पार्टी और कुओमिन ताँग में पिछले १५ सालों से लगातार संघर्ष चल रहा है। चीन के बहुत बड़े प्रदेश पर चीनी कम्यूनिस्टों का अधिकार है। १९३७ में जब जापान ने चीन पर भीषण आक्रमण किया, तब दोनों दल उससे लोहा लेने को मिल गये थे, लेकिन युद्ध समाप्त होने पर वे दोनों फिर एक दूसरे से मोर्चा लेने को कटिबद्ध हो गये। कई महीनों तक आपस में संधि-चर्चा चलती रही।

विदेशी शक्तियों के स्वार्थ

लेकिन गृह-युद्ध के स्वरूप को अच्छी तरह समझने के लिए

बाहरी समस्या पर विचार कर लें। चीन की बाहरी समस्या भी बहुत उलझी हुई है। चीन के विशाल समृद्ध प्रदेश से जापान के निकल जाने के बाद तीन प्रतिस्पर्धी शक्तियाँ अपने-अपने स्वार्थ के लिए परस्पर संघर्ष कर रही हैं। ये तीन शक्तियाँ हैं—रूस, अमेरिका और ब्रिटेन।

रूस—यूरोपियन राष्ट्रों में सबसे प्रथम रूस ही था, जिसने चीन से संधि कर के १७वीं सदी के अंतिम भाग में कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त की थीं। इसके बाद भी वह समय-समय पर कुछ न कुछ अधिकार प्राप्त करता रहा, जिसकी हम ऊपर भी चर्चा कर आये हैं। रूस-जापान युद्ध में परास्त होने पर उसे हाथ कुछ पीछे अवश्य खींचना पड़ा, लेकिन चीन में उसकी महत्त्वाकाँक्षाएँ कम नहीं हुईं। चीन के पूर्ववर्ती पीत समुद्र में प्रवेश को वह सदा उत्सुक रहा है। १९१७ में रूस में एक महान् क्रान्ति हो गई, जिसका आधार ही साम्यवाद और समानता था। इसमें साम्राज्यवाद को स्थान न था। और परिस्थितियाँ भी ऐसी थीं। चीन में लिये हुए सब विशेषाधिकार ही रूस ने नहीं छोड़े, सब अधिकृत प्रदेश भी चीन को लौटा दिये और चीनी पूर्वी रेलवे भी बिना मुआवजे के चीन को वापस कर दी। जब चीन को विदेशी राष्ट्र लूट खसोट रहे थे, तब सोवियत रूस ने उसे विशेष सहायता दी। लेकिन इस सब का अर्थ यह नहीं था कि सुदूर पूर्व में उसके कोई स्वार्थ न थे। ज्यों-ज्यों रूस आदर्शवाद को छोड़ कर व्यावहारिकता और यथार्थ की ओर झुकता गया त्यों-त्यों चीन में उसकी महत्त्वाकाँक्षाएँ भी बढ़ती गईं। चीन के उत्तरी मंगोलिया प्रान्त को स्वतंत्र स्वीकार कर रूस ने वहाँ अपना विशेष प्रभाव स्थापित कर लिया। चीनी पूर्वी रेलवे में भी उसने अधिकार प्राप्त कर लिये। जापान से कभी-कभी चीन में बढ़ने पर मुठभेड़ भी होती रही।

जब यह युद्ध समाप्त होने लगा और जापान की पराजय अत्यंत निकट की बात दीखने लगी, तब रूस ने यह अनुभव किया कि यदि

जापान के विजेताओं में उसका कोई भाग नहीं होगा, तो उसे पूर्व में आगे बढ़ने का भी अवसर नहीं मिलेगा। पूर्व में अपना पैर बढ़ाने के लिए विजेताओं में नाम लिखाना जरूरी है। क्योंकि तब जापान के साथ संधि करने और अपने स्वार्थ पूर्ण करने का अधिकार भी मिल जायगा। इसीलिए जब रूस ने १९४५ के प्रारंभ में जापान के साथ की हुई संधि का अन्त कर दिया और कुछ समय बाद युद्ध की घोषणा की, तब ब्रिटेन व अमरीका ने इसका स्वागत नहीं किया, क्योंकि परमाणु बम के आविष्कार के बाद उन्हें रूस की सहायता की कोई आवश्यकता न रही थी। रूस भी उनकी सहायता के लिए युद्ध में नहीं कूदा था। मंचूरिया, कोरिया और चीनी सागर के बन्दरगाहों पर अप्रतिहत प्रभुत्व स्थापित करने के लिए स्टालिन ने लाल सेना को मंचूरिया में कूच करने का हुक्म दे दिया। मंचूरिया में कूच करती हुई रूसी सेनाओं का स्वागत मास्को के पत्रों ने "पोर्ट आर्थर को स्मरण रखो" से किया था। यह पोर्ट आर्थर वही बंदरगाह है जिसे १९०४ में जापान ने उससे छीन लिया था। जापान का प्रतिरोध समाप्त हो चुका था, इसलिए रूस की लाल सेनाएँ अधिकतम प्रदेश पर अधिकार करने के लिए यथाशीघ्र आगे बढ़ती गई। जहाँ तक वह पहुँच चुका, ब्रिटेन और अमेरिका उसे वहाँ से हटा नहीं सकते थे। इस तरह पूर्वीय युद्ध में बिना खून बहाये रूस जापान के विजेताओं में सम्मिलित हो गया और अब पूर्व में जीत के माल का समान हिस्सेदार बन बैठा।

चीन से नई सन्धि—इसी अरसे में चीन में गृह-युद्ध का खतरा बढ़ गया था। रूस ने कम्यूनिस्ट चीन का भय दिखा कर चीन की केन्द्रीय सरकार को एक संधि करने पर विवश किया। इसके अनुसार रूस केवल केन्द्रीय सरकार को सैनिक सहायता देगा, तीनों पूर्वी जिलों में चीन का पूर्ण अधिकार रूस ने स्वीकार किया। चीनी पूर्वी रेलवे और दक्षिणी मंचूरिया रेलवे चीन और रूस के सम्मिलित

बोर्ड द्वारा ३० साल तक चलाई जायँगी और फिर चीन को दे दी जायँगी। इस अरसे में रेल द्वारा आने जाने वाले रूसी माल पर चुंगी नहीं ली जायगी। ३० साल तक पोर्ट आर्थर दोनों देशों का सम्मिलित समुद्री अड्डा रहेगा। पोर्ट आर्थर के निकटवर्ती डेरेन बन्दरगाह पर उतरने वाले रूसी माल पर कोई चुंगी नहीं लगाई जाएगी। मंचूरिया से रूसी सेनाएँ वापस चली जायँगी। सिनकियाँग के अन्दरूनी मामलों में रूस कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा और उत्तरी मंगोलिया की स्वतंत्रता को चीन स्वीकार करेगा। यह संधि रूस के लिए बहुत लाभकर थी। मंगोलिया चीन के हाथ से निकल गया और उत्तरी चीनी रेलवे तथा पोर्ट आर्थर पर संयुक्त अधिकार करके उसने अमरीकी तथा ब्रिटिश हितों को सदा के लिए आगे बढ़ने से रोक दिया। लेकिन इतने पर ही रूस की पूर्व में महत्त्वाकाँक्षाओं की इतिश्री नहीं हो गई। वह कोरिया को भी अपने प्रभाव में रखना चाहता है। जापान के नियंत्रण में भी उसका हाथ रहना चाहिए और वह दक्षिण-पूर्वी एशियायी टापुओं में अपना दखल चाहता है। फारमोसा पर भी उस की दृष्टि है।

वस्तुतः रूस आज अपने चारों ओर एक ऐसी सुदृढ़ और दूरवर्ती किलेबन्दी कर लेना चाहता है, जिसके कारण आगामी एक सदी तक के लिए वह सब प्रकार के आक्रमणों से निश्चिन्त हो जाय। उत्तर में उत्तरी हिमसागर एक अभेद्य प्राचीर का काम कर रहा है। पश्चिम और दक्षिण में वह बाल्टिक और बलकान मध्यपूर्व में ईरान और एशिया में चीन तथा कोरिया आदि सब राष्ट्रों पर अपना अमित प्रभाव रखना चाहता है। इस राजनीतिक प्रभाव के अतिरिक्त सुदूरवर्ती देशों में भी कम्यूनिज्म का प्रचार करके अपने लिए एक प्रबल पाँचवाँ कालम बना लेना चाहता है।

अमेरिका भी मैदान में—१८९८ ई० में फिलिपाइन्स पर अधिकार करने के बाद से अमेरिका दक्षिणी और पूर्वी एशिया में विशेष

रुचि लेने लगा है। उसने भी अन्य राष्ट्रों की देखादेखी चीन को रुपया लगाने तथा उसके व्यापारिक बाज़ार हथियाने का उपयुक्त क्षेत्र समझा। १९२८ ई० तक चीन सरकार के बौंड व सिक्योरिटियों में अमेरिकन धनिकों के दो करोड़ डालर लगे हुए थे। चीन के व्यापारिक कार्यों में अमेरिकन पूँजी छः करोड़ डालर से कम न थी। युद्ध से पूर्व चीन में अमेरिका की ४० करोड़ डालर पूँजी लगी हुई थी। यद्यपि अमेरिका ने अन्य यूरोपियन देशों की भाँति चीन के किसी प्रदेश पर अधिकार नहीं किया था, लेकिन एक संधि के अनुसार चीन ने उसे सब से अधिक कृपापात्र देश स्वीकार कर रखा था। इसे दुहरा कर चीन से अनेक सुविधाएँ प्राप्त करने का कोई अवसर अमेरिका ने नहीं छोड़ा। वह चीन के बाज़ारों को हथियाने में जापान की प्रतिस्पर्धा करता रहा। और वस्तुतः ये चीन के बाज़ार ही थे जिन्होंने जापान और अमेरिका में इतना मनोमालिन्य पैदा किया। जापान द्वारा चीन पर अधिकार का स्पष्ट अर्थ था अमेरिका के लिए चीनी बाज़ार बन्द होना। जापान और अमेरिका के पारस्परिक युद्ध का मुख्य कारण चीन के विशाल बाज़ार ही हैं।

इस युद्ध में जापान के पतन पर अमेरिका का बहुत अधिक प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। लेकिन उसकी यह प्रसन्नता इसलिए कुछ कम हो गई कि ठीक समय पर रूस बीच में कूद कर लूट के माल का हिस्सेदार बन बैठा। परमाणु बम के आविष्कार के कारण अमेरिका युद्ध के बाद सब से अधिक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में प्रकट हुआ। इसके साथ ही उसकी महत्त्वाकाँक्षाएँ और भी अधिक तेज़ी से बढ़ गईं। चीन की पुनर्निर्माण-योजनाओं के लिए बहुत वर्षों तक चीन को करोड़ों डालर प्रतिवर्ष कर्ज देने की संधि करके अमेरिका अपने नये स्वार्थों की सृष्टि कर रहा है। इस क्षेत्र में जापान के बजाय रूस की अकल्पित प्रतिस्पर्धा से वह मन ही मन खीझ उठा है। रूस और अमेरिका के पारस्परिक स्वार्थों का प्रत्यक्ष संघर्ष चीन में ही

होता है और यह संघर्ष अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सभी क्षेत्रों में प्रकट हो रहा है।

चीन में पिछले वर्षों में जो गृह युद्ध हुआ, चीनी कम्यूनिस्ट उनका एक कारण अमेरिकन स्वार्थों को बता रहे हैं। उनके कथनानुसार अमेरिकन सेनाओं और सामग्री की पूर्ण सहायता चीन की केन्द्रीय सरकार को मिली। अमेरिका का पूँजीपति वर्ग चीन में कभी कम्यूनिस्टों को सहायक रूप में देखना सहन नहीं करता।

ब्रिटेन और चीन—ब्रिटेन, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, साम्राज्यवाद की दौड़ में सबसे पहले कूदा था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि वह चीन में अपने पैर सबसे अधिक फैलाता। इस अध्याय के प्रारंभ में हम बता आये हैं कि चीन की लूट खसोट में सबसे अधिक भाग ब्रिटेन का ही रहा है। इस युद्ध से पूर्व ब्रिटेन के हाथ में बहुत से चीनी बंदरगाह थे। बैंकों, रेल-कंपनियों तथा चीन के आर्थिक चक्र पर ब्रिटेन का नियंत्रण था। लगभग ४५ करोड़ पौंड अर्थात् ६ अरब रुपये की ब्रिटिश पूँजी वहाँ लगी हुई थी। पहले ब्रिटेन जापान को अपना मित्र समझता था, क्योंकि वही एक ऐसी शक्ति थी, जो ब्रिटेन के प्रतिस्पर्धी रूस को चीन में बढ़ने से रोक सकती थी, इसलिए ब्रिटेन ने जापान की शक्ति-वृद्धि में सदा सहायता दी। लेकिन जब पीछे जापान स्वयं शक्तिशाली होकर ब्रिटेन का प्रतिस्पर्धी बन गया, तब ब्रिटेन उसका विरोधी हो गया। अमेरिका की भाँति ब्रिटेन भी जापान के पतन पर बहुत प्रसन्न हो रहा था, उसका दक्षिण-पूर्वी एशियायी विशाल साम्राज्य जापान के हाथ से मुक्त हो गया था। लेकिन रूस ने बीच में कूद कर नई परिस्थिति पैदा कर दी। चीन की केन्द्रीय सरकार के साथ ब्रिटेन की भी सहानुभूति रही। एक संधि के अनुसार हाँगकाँग को छोड़ कर बाकी सब बंदरगाहों से उसने विशेषाधिकार हटा लिये। इसी तरह अन्य सैनिक, आर्थिक, राजनीतिक और अदालती अधिकार भी छोड़ने की घोषणा ब्रिटेन ने १९४२ में की थी।

उस समय युद्ध चल ही रहा था और चीनी जनता को अपने उद्देश्यों के प्रति विश्वास करवाने के लिए यह आवश्यक भी था। इस तरह यद्यपि आज चीन में ब्रिटेन के विशेषाधिकार नहीं रहे, तथापि उसके व्यापारिक स्वार्थ विद्यमान हैं।

गृहयुद्ध—चीन में इन विविध शक्तियों के संघर्ष में गृहयुद्ध के परिणाम-स्वरूप अमरीका और ब्रिटेन को बहुत नीचा देखना पड़ा। अमरीका चीन की केन्द्रीय सरकार की बहुत सहायता कर रहा था। चीन पिछले आठ दस सालों के निरन्तर युद्ध से क्षत-विक्षत हो गया था। उसे सहायता की आवश्यकता थी और वह अमरीका ने भरपूर की, किन्तु इसी कारण बढ़ते हुए अमरीकन प्रभाव को कम्यूनिस्ट सहन नहीं कर सके। वे देश में कम्यूनिस्ट सिद्धान्तों के अनुसार भूमि को किसानों में वितरण करना चाहते थे, उनकी अन्तर्राष्ट्रीय राज-नीति भी रूस पक्षपाती थी। इसलिए उन्होंने चांगकाईशेक की सरकार से युद्ध छेड़ दिया। यह युद्ध बरसों तक चला। कम्यूनिस्टों का प्रचार बहुत जबर्दस्त था। चीन की आन्तरिक अवस्था लगातार खराब हो रही थी। मुद्रा-प्रसार चरम सीमा तक पहुँच गया। एक रोटी के लिए हजारों चीनी डालर देने पड़ते थे। सारे देश में भ्रष्टाचार, चोर बाजार व नफाखोरी का राज्य फैल गया। सरकार पर ज्यों ज्यों गृहयुद्ध के कारण भार बढ़ता गया, त्यों-त्यों मुद्रा-प्रसार भी बढ़ता गया और कोई व्यवस्था कायम न रह सकी। उधर कम्यूनिस्टों का संगठन लगातार बढ़ता जा रहा था। एक प्रवाद के अनुसार रूस की सेनाएँ जापान की विजय के लिए जो भारी युद्ध सामग्री चीन में लाई थीं, वे सब वहीं छोड़ कर वापस चली गई और वह सब सामग्री कम्यू-निस्टों को मिल गई। संभवतः रूस की और अधिक सहायता भी कम्यूनिस्टों को प्राप्त हो रही थी। दूसरी ओर अमेरिका बहुत दूर होने के कारण कोई सहायता नहीं दे सकता था। प्रत्यक्ष सहायता देने का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध हो जाता। परिणाम यह हुआ कि कम्यूनिस्ट

सेनाएँ लगातार विजय पर विजय करती गई और जनवरी १९४९ तक तो चीन की राष्ट्रीय सरकार को संधि के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। कम्यूनिस्ट सरकार ने संधि के लिए जो शर्तें रखी हैं, उनका आशय यह है कि—चाँगकाईशेक तथा अन्य प्रधान नेता आत्म-समर्पण करें, भूमि को किसानों में बाँट दिया जाय, १९४७ के चीन के विधान को बदल दिया जाय, अस्थायी सरकार में कम्यूनिस्टों की संख्या आधी हो और अमेरिका आदि विभिन्न देशों के साथ की गई संधियों पर पुनर्विचार करके उनकी वैधता या अवैधता स्वीकार की जाय।

चाँगकाईशेक पिछले २५ वर्षों से चीन का एकमात्र निरंकुश नेता रहा है। उसके विरुद्ध कम्यूनिस्टों में तीव्र असंतोष है। उसने राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया है, किन्तु कम्यूनिस्ट उसे गिरफ्तार करके उस पर युद्धपराधी होने का अभियोग चलाना चाहते हैं। चीन की राष्ट्रीय सरकार की पराजय अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में रूस की महान् विजय है। इसके कारण दक्षिण पूर्वी एशिया में कम्यूनिज्म का प्रचार इस वेग से होगा कि उसे रोकना अत्यन्त कठिन हो जायगा। भारतवर्ष भी इसके प्रभाव से बच नहीं सकता।

जापान में विदेशी शक्तियाँ

किसी समय अन्य भू भागों को अपनी क्रीड़ा-स्थली बनाने वाला जापान आज स्वयं विभिन्न शक्तियों के कूटनीतिक संघर्ष का क्षेत्र बन गया है। जापान के पतन के समय अमेरिकन जनरल मैक-आर्थर ने वहाँ का शासन अपने हाथ में ले लिया था। उसी के निरीक्षण में जापान के नये चुनाव हुए और आज १९४९ में भी वस्तुतः वही जापान का शासक है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अमेरिका निष्कंटक होकर वहाँ अपना प्रभाव बढ़ा रहा है। जापान-नियंत्रण-कौंसिल में रूसी प्रतिनिधि भी है, जो अमेरिकन अधिकारियों के

कामों की सदा आलोचना करता रहता है। पिछले दिनों वहाँ जो चुनाव हुए थे, उनमें रूस को यह शिकायत रही कि साम्यवादी मजदूरों के मार्ग में जान बूझ कर बाधाएँ डाली गईं। आज भी वहाँ फिर से पुरानी पूँजीपति श्रेणी को, जिसकी बढ़ती हुई महत्त्वाकाँक्षाएँ ही महायुद्ध का कारण थीं, अमेरिकन अधिकारी विशेष प्रोत्साहन दे रहे हैं। इसमें संदेह नहीं है कि रूस यदि जापान के असंतुष्ट किसानों और मजदूरों पर भरोसा कर सकता है तो अमेरिका उनकी अपेक्षा पूँजीपतियों पर ही विश्वास कर सकता है कि वे रूस की अपेक्षा उसके प्रति अधिक सहानुभूति रखेंगे। अमेरिका रुई के निकास के लिए अथवा किसी और कारण से फिर से कपड़े के जापानी कल-कारखानों को एक सीमा तक पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रहा है। लेकिन रूस इस तरह वहाँ बढ़ती हुई पूँजीपति श्रेणी को पसंद नहीं करता। पिछले दिनों वहाँ जो नये चुनाव हुए हैं, उनमें यद्यपि पूँजीपति दल की विजय हुई है तथापि सफल कम्यूनिस्ट उम्मीदवारों की संख्या पहले से बढ़ गई है। टोकियो से तो सातों कम्यूनिस्ट उम्मीदवार सफल हो गये।

जापान द्वारा अधिकृत टापुओं के बँटवारे पर भी रूस, अमेरिका और ब्रिटेन में भारी मत-भेद है। जापान के साथ संधि की चर्चा के समय यह मत-भेद बहुत स्पष्टता से प्रकट होंगे। आस्ट्रेलिया यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्य का एक उपनिवेश है, तथापि वह भी अमेरिका का ऋणी राष्ट्र है और उसके साथ अमेरिका का व्यापार लगातार बढ़ता जा रहा है। अमेरिकन राजनीतिज्ञों के समय समय पर प्रकट किये गये विचारों से यह ज्ञात होता है कि अमेरिका प्रशान्त-सागर के मध्य और पश्चिमवर्ती सब टापुओं पर ऐसा अधिकार चाहता है जिससे वह एशिया के साथ निर्द्वन्द्व व्यापार कर सके तथा जापान की गति विधि पर भी नियंत्रण कर सके। रूस पूर्व में अमेरिकन प्रभाव की वृद्धि को सहन नहीं करता। ब्रिटेन भी इस अंश

में रूस का ही अनुवर्ती है, लेकिन मध्यपूर्व की भाँति यहाँ भी उसकी नीति यही है कि रूस की अपेक्षा तो अमेरिका ही अच्छा है, कम से कम वह साम्यवादी नहीं है और अंग्रेजी भाषा-भाषी है। अमेरिका प्रशान्तसागर के कैरेबियन टापुओं पर अधिकार करना चाहता है, तो ब्रिटेन अब सिंगापुर की बजाय आस्ट्रेलिया को अपना सुदृढ़ सैनिक अड्डा बनाने की योजना बना रहा है। उड़न किलों तथा परमाणु बमों के आविष्कार के बाद माल्टा या सिंगापुर जैसे छोटे छोटे अड्डों का कोई महत्त्व नहीं रहता। इन नये अविष्कारों के परीक्षण आदि के लिए ऐसे विस्तृत प्रदेश चाहिएँ, जहाँ स्थान भी ज्यादा हो और अन्य युद्ध सामग्री भी वहीं तैयार हो सकती हो, दूर से लाने की जरूरत न हो। आस्ट्रेलिया इस दृष्टि से उपयुक्त है।

अध्याय १०

विश्व शान्ति के नये प्रयत्न

पिछले अध्यायों में हमने संसार के विभिन्न भागों पर एक सरसरी नज़र डालते हुए यह देखा है कि संहारकारी युद्ध के बाद भी संसार में शांति नहीं है। सभी प्रबल शक्तियाँ परस्पर संघर्ष कर रही हैं और छोटी शक्तियाँ भी अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट होकर क्रांति के मार्ग को अपना रही हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि विश्वशान्ति के लिए कहीं प्रयत्न नहीं हो रहे। अपने-अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील राष्ट्र भी अब नई लड़ाई लड़ने के लिए उत्सुक नहीं हैं। वे सब शान्ति चाहते हैं, लेकिन नई विश्व-व्यवस्था में अपना एक स्थान निश्चित रूप से बना लेना चाहते हैं। अपने स्वार्थ को सामने रखते हुए विश्व-शान्ति का प्रयत्न भी प्रत्येक राष्ट्र कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

विश्व-शान्ति के लिए यह आवश्यक है कि विश्व की ऐसी व्यवस्था की जाय, जिस में संसार भर के हितों को एक सम्मिलित योजना हो। उस योजना में सभी राष्ट्र समान रूप से सहयोग दें। विश्व-शान्ति और नई विश्व-व्यवस्था की चर्चा युद्ध समाप्त होने से पूर्व ही प्रारंभ हो गई थी। ब्रिटेन, अमेरिका और रूस में समय-समय पर जहाँ शत्रु को परास्त करने की योजनाओं पर विचार किया जाता रहा है यहाँ भावी विश्व-व्यवस्था पर भी काफी विचार किया गया। निम्नलिखित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :—

अतलांतक सम्मेलन—यह इस प्रकार के सम्मेलनों में सर्व प्रथम था। १४ अगस्त १९४१ को अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और ब्रिटिश प्रधान मंत्री चर्चिल में अतलांतक समुद्र के गंभीर वक्षःस्थल पर एक महत्त्वपूर्ण भेंट हुई। दोनों ने कुछ सिद्धान्तों की घोषणा की थी। आक्रमणकारी राष्ट्रों द्वारा पराजित देशों को स्व-शासन का अधिकार, विश्व-शान्ति की स्थापना, स्वराज्य और समानता तथा किसी दूसरे देश के अधिकारों तथा भूमिभागों का अपहरण न करना आदि सिद्धान्तों की इसमें घोषणा की गई थी। इसी घोषणा में यह भी कहा गया था कि आर्थिक समृद्धि के लिए छोटे बड़े विजयी या पराजित प्रत्येक राष्ट्र का व्यापार और कच्चे माल में समान भाग होगा। धार्मिक क्षेत्र में सब राष्ट्रों का आपसी सहयोग चाहते हुए श्रमजीवियों के रहन-सहन को ऊँचा करने, आर्थिक प्रगति और सामाजिक सुरक्षा का प्रयत्न किया जायगा। बिना किसी बाधा के सब मनुष्य सब समुद्रों तथा महासागरों में जा सकेंगे और हमें विश्वास है कि सब राष्ट्र बल-प्रयोग का त्याग कर देंगे।

इसके बाद भी प्रेज़िडेंट रूज़वेल्ट और मि० चर्चिल में कई

मुलाकातें हुईं। इन सब का मुख्य उद्देश्य युद्ध में विजय प्राप्त करना था। लेकिन इसके साथ-साथ भावी विश्व-व्यवस्था पर भी विचार किया जाता रहा। रूस के अधिनायक मो० स्टालिन से भी कई बार मुलाकातें हुईं। मध्य-पूर्व की समस्या पर टर्की के अध्यक्ष मो० इनोनु से भी एक महत्त्वपूर्ण भेंट हुई।

मास्को कान्फ्रैंस—अक्तूबर १९४३ में अमेरिका, इंग्लैंड और रूस के विदेश-मंत्रियों की एक महत्त्वपूर्ण कान्फ्रैंस मास्को में हुई थी। कान्फ्रैंस की १२ बैठकें हुईं। इनमें युद्ध को शीघ्र से शीघ्र समाप्त करने के साथ साथ भावी विश्व-व्यवस्था पर भी विचार हुआ। इटली से फासिज्म को समाप्त करने तथा वहाँ प्रजातंत्रीय सरकार स्थापित करने का निश्चय किया गया। युद्ध, हत्या और लूटमार के जर्मन अपराधियों पर मुकदमा चलाने का भी निश्चय किया गया। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा संसार से युद्धों को सदा के लिए समाप्त करने तथा सब की रक्षा के उद्देश्य से एक अंतर्राष्ट्रीय संघ स्थापित करने का निश्चय किया गया, जिस संघ में सभी शान्ति-प्रिय छोटे या बड़े राष्ट्रों को एक से अधिकार प्राप्त होंगे।

काहिरा व तेहरान कान्फ्रैंस—काहिरा कान्फ्रैंस में पूर्वी एशिया की समस्या पर विचार हुआ था और निश्चय किया गया था कि आक्रमणकारी जापान से वे सब टापू छीन लिये जावेंगे, जिन पर १९१४ के बाद से उसने अधिकार किया है। मंचूरिया, फारमोसा आदि भी चीनी के सुपुर्द कर दिये जायँगे। कोरिया को स्वतंत्र राष्ट्र घोषित किया जायगा। तेहरान कान्फ्रैंस में भी युद्ध कार्यक्रम के अतिरिक्त भावी विश्व-व्यवस्था के लिए यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया—

"हमने भविष्य की समस्याओं पर विचार कर लिया है। हम उन सब छोटे-बड़े राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त करेंगे, जिनकी जनता अत्याचार, दासता, पीड़न और असहिष्णुता को समाप्त करने के

लिए हमारे देशों की जनता की तरह कटिबद्ध है। इन मित्रतापूर्ण सम्मेलनों को देखते हुए हम उस दिन को देखने की आशा करते हैं, जब कि संसार में सब लोग अत्याचार के भय से निश्चिन्त होकर अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र जीवन-यापन करेंगे।" यही भावना इसके बाद भी समय समय पर प्रकट की जाती रही। ईरान में रूस व ब्रिटेन के स्वार्थों का संघर्ष होता था, इसलिए उसके प्रश्न पर विचार के अनन्तर रूस, अमेरिका तथा ब्रिटेन के सर्वोच्च अधिकारियों ने यह घोषणा की कि ईरान की स्वतंत्रता, सर्वोच्च प्रभुता तथा प्रादेशिक अखंडता को अक्षुण्ण रक्खा जायगा।

क्रीमिया के याल्टा (Yalta) नगर में जर्मनी को अच्छी तरह से परास्त करके संपूर्ण नाज़ीवाद को समाप्त करने और अन्तःवर्ती काल के लिए जर्मनी को चार भागों में विभक्त करके रूस, ब्रिटेन, अमेरिका तथा फ्रांस द्वारा शासन का निर्णय किया गया। यहीं सनफ्रांसिस्को में नये अन्तर्राष्ट्रीय संघ की पहली बैठक का भी निश्चय किया गया। पहले डम्बर्टन ओक्स कान्फ्रेंस में इस संघ की योजना बन चुकी थी।

पोत्सदम—मई १९४५ में जर्मनी का पतन हो चुका था। अमेरिका के प्रैजिडैंट मि० रूजवेल्ट स्वर्ग सिधार गये थे और ब्रिटिश जनता ने मि० चर्चिल को चुनाव में बहुत बुरी तरह परास्त कर दिया था। इसलिए २ अगस्त १९४५ को पोत्सदम में जो कान्फ्रेंस हुई, उसमें मि० चर्चिल और मि० रूज़वेल्ट के स्थान पर नये ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० एटली और नये अमेरिकन प्रैजिडैंट मि० ट्रूमैन थे। इसमें जर्मनी की अन्तःकालीन व्यवस्था पर विचार किया गया और यह घोषणा की गई कि मित्रराष्ट्रों का इरादा किसी तरह जर्मन जनता को गुलाम बनाने या नष्ट करने का नहीं है। उसे भी प्रजातंत्रीय और शान्तिमय सिद्धान्तों के आधार पर अपना पुनर्निर्माण करने का अवसर दिया जायगा। जापान को भी आत्म-समर्पण की धमकी दी गई।

इन सब कान्फ्रैंसों में उत्तरोत्तर मित्रराष्ट्रों के पारस्परिक मत-भेद यद्यपि अधिक उग्रता से स्पष्ट हो रहे थे, तथापि इन सब मतभेदों को भुलाने या उन्हें भविष्य के लिए स्थगित करके युद्ध विजय करने और भावी विश्व-व्यवस्था को सुधारने की ओर ही इन का ध्यान अधिक रहा। युद्ध समाप्त होने पर विश्व-संगठन की ओर ध्यान दिया गया।

नया अंतर्राष्ट्रीय संघ

डंबर्टन ओक्स कान्फ्रैंस—इस दिशा में वस्तुतः अक्तूबर १९४४ में पहला क़दम उठाया गया था, जब कि वाशिंगटन में डंबर्टन ओक्स भवन में एक कान्फ्रैंस की गई। यह विशाल भवन लाल ईंटों का बना हुआ है और इसके निर्माता ने इसे हार्वर्ड यूनिवर्सिटी को दान कर दिया था। इस कान्फ्रैंस में विश्व-राष्ट्र-संघ बनाने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया और निश्चय हुआ कि—

१—एक जनरल असैम्बली हो, जिसमें सभी शान्तिप्रिय छोटे बड़े राष्ट्र एक समान स्थिति से सम्मिलित हों। यह असैम्बली विश्व-शान्ति और सुरक्षा के लिए सिफारिशें करेगी।

२—एक सुरक्षा कौंसिल हो, जो विश्व में शान्ति स्थापना की ज़िम्मेवारी अपने सिर पर ले। इसके पास अपनी स्थल, जल तथा वायु सेना भी हो।

३—मानव जाति के रहन-सहन को ऊँचा करने के उपायों पर विचार करने वाली एक आर्थिक तथा सामाजिक कौंसिल हो। और

४—अन्तर्राष्ट्रीय विवादास्पद प्रश्नों के निर्णय के लिए एक बड़े न्यायालय की स्थापना की जाय।

संघ के उद्देश्य तथा संगठन—डंबर्टन ओक्स कान्फ्रैंस के इन निश्चयों के परिणाम स्वरूप २५ अप्रैल १९४५ को विविध राष्ट्रों के २०० प्रतिनिधियों, ९०० कर्मचारियों तथा ३०० कान्फ्रैंस सैक्रेटरियों और २००० पत्र-प्रतिनिधियों, रेडियो तथा सिनेमा के फोटोग्राफरों की

उपस्थिति में बड़े समारोह के साथ सनफ्रांसिस्को में अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना के लिए एक कान्फ्रैंस हुई। कान्फ्रैंस ने कई सप्ताहों के विचार-विनिमय के बाद जिस चार्टर की घोषणा की, उसके करीब १०००० शब्द थे। इस चार्टर के दो भाग हैं। पहले में इस नये संघ के उद्देश्य तथा सिद्धान्त बताये गये हैं और दूसरे में संघ के संगठन की नियमावली है। प्रस्तावना में कहा गया है कि—"सभी सदस्य-राष्ट्र इस बात के लिए कटिबद्ध हैं कि आने वाली मानव सन्तति की युद्ध की विभीषिकाओं से रक्षा की जाय, मानव जाति के अधिकारों को फिर से सुरक्षित करने का निश्चय किया जाय, (स्त्रियों और पुरुषों तथा छोटे और बड़े राष्ट्रों के समान अधिकार हैं;) ऐसी अवस्थाएँ पैदा की जावें, जिनमें न्याय, अधिकार, कर्तव्यों और अन्तर्राष्ट्रीय कानून का पालन हो सके और सामाजिक उन्नति तथा लोगों का रहन-सहन ऊँचा किया जा सके।" इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सब संयुक्त राष्ट्र सहिष्णुता की नीति पालने, अच्छे पड़ोसियों की भाँति शान्ति से रहने, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के द्वारा अपनी शक्ति को बनाये रखने का निश्चय करते हैं।" नये संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:—

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को कायम रखना।

(ख) राष्ट्रों में परस्पर मित्रभाव को बढ़ाना।

(ग) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं के हल के लिए सब राष्ट्रों का सहयोग प्राप्त करना। और—

(घ) उपर्युक्त सब उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र का संगठन।

उपर्युक्त उद्देश्यों के साथ साथ अपनी कार्य पद्धति के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया गया—

(क) सब सदस्य-राष्ट्रों की समान प्रभुत्व-शक्ति को स्वीकार करना।

(ख) चार्टर के उद्देश्यों को ईमानदारी के साथ स्वीकार करना सदस्यता का मुख्य आधार होगा।

(ग) सब विवाद-ग्रस्त मामलों को शान्तिमय उपायों से तय करना।

(घ) किसी और राष्ट्र की प्रादेशिक एकता और स्वतंत्रता के विरुद्ध बल-प्रयोग की धमकी न देना।

(ङ) चार्टर के अनुसार संघ यदि कोई कदम उठाये, तो उसे पूर्ण सहायता देना और किसी ऐसे राज्य को सहायता न देना, जिसके विरुद्ध सघ किसी प्रकार का कदम उठावे। और

(च) अपने नियंत्रण के देशों के संबंध में यह सिद्धांत स्वीकार करना कि उन देशों के निवासियों के हित सर्वोच्च हैं। उनके हितों की रक्षा ट्रस्टियों का पवित्र धर्म है।

चार्टर के दूसरे भाग में संघ का विस्तृत संगठन बताया गया है। विभिन्न कामों के लिए पाँच अलग अलग संस्थाएँ बनाई गई हैं। १—असैंबली, २—सुरक्षा समिति, ३—आर्थिक और सामाजिक समिति, ४—ट्रस्टीशिप कौंसिल और ५—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय।

जनरल असैंबली में सभी सदस्य राष्ट्र होंगे। वे सभी समस्याओं पर विचार करके अपनी सिफ़ारिशें करेंगे। इसके महत्त्वपूर्ण निर्णय दो तिहाई बहुमत से हुआ करेंगे। प्रति वर्ष इसका एक अधिवेशन हुआ करेगा।

सुरक्षा समिति—सुरक्षा समिति इस संघ की सब से प्रबल संस्था है। इसमें ११ सदस्य होंगे। पाँच बड़े राष्ट्र—रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, चीन और फ्रांस इसके स्थायी सदस्य होंगे। छः सदस्य अस्थायी होंगे, जिनका चुनाव दो दो साल के लिए जनरल असैंबली करेगी। इस कौंसिल या समिति को अमित अधिकार होंगे। यदि संसार में कोई राष्ट्र किसी दूसरे देश पर आक्रमण करेगा, तो इस समिति को उसके विरुद्ध कोई भी कदम उठाने का अधिकार होगा। वह स्थल, जल

या वायु सेनाओं का उपयोग भी आक्रमणकारी राष्ट्र के दमन करने के लिए कर सकती है। लेकिन ऐसा कदम उठाने से पूर्व आर्थिक या कूटनीतिक दबाव डाला जायगा। उसके विदेशी व्यापार पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। इस प्रकार के निश्चयों पर जनरल असैंबली के सभी सदस्य अमल करेंगे। इसी सुरक्षा समिति के अधीन एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रबल सेना रहेगी, जिसका संगठन प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के सहयोग से होगा। इस समिति के विधान में एक बड़ा दोष यह है कि पाँच बड़ी शक्तियों को किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न को 'वीटो' (रद करने) का अधिकार दिया गया है।

आर्थिक और सामाजिक समिति में १८ सदस्य हैं। ये सब जनरल असैंबली द्वारा चुने जाते हैं। इस समिति का काम अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा तथा स्वास्थ्य संबंधी प्रश्नों का अध्ययन करके जनरल असैंबली के पास उचित परामर्श सिफारिशों के रूप में भेजना है।

ट्रस्टी कौंसिल—संसार के वे प्रदेश जो अभी अत्यन्त अशिक्षित अनुन्नत तथा स्वशासन के अयोग्य हैं, कुछ समर्थ राष्ट्रों को शासन के लिए सौंपे जावेंगे। ऐसे बड़े राष्ट्र ट्रस्टी कहलाएँगे। ऐसे ट्रस्टी राष्ट्रों और उनकी समान संख्या में असैंबली द्वारा निर्वाचित सदस्यों की ट्रस्टी कौंसिल होगी। इस कौंसिल को यह भी अधिकार होगा कि वे ऐसे शासित ट्रस्ट प्रदेशों का समय समय पर निरीक्षण कर सकें।

पाँचवी संस्था अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय है। यदि सुरक्षा समिति किसी प्रश्न को न्यायालय के निर्णय के उचित समझेगी, तो वह उस मामले को इस न्यायालय के सुपुर्द कर देगी।

संघ के दफ्तर का भी विशाल संगठन किया गया है।

पिछले राष्ट्र संघ से भेद—इस नये विश्व-संघ में और गत महायुद्ध के बाद संगठित राष्ट्र संघ में कुछ अन्तर हैं, जिनमें से निम्न-

लिखित बातें उल्लेख योग्य हैं :—

१—पिछले राष्ट्र संघ में रूस और अमेरिका सम्मिलित नहीं हुए थे। लेकिन इस संघ के दोनों राष्ट्र प्रमुख और शक्तिशाली तथा अत्यंत सक्रिय राष्ट्र हैं।

२—पिछले राष्ट्र-संघ में सर्व सम्मति से निर्णय किये जाते थे। किसी प्रश्न पर सर्व सम्मति पाना संभव नहीं था। इसलिए कोई निर्णय नहीं हो पाता था।

३—पिछले राष्ट्र-संघ की यह बड़ी भारी कमज़ोरी थी कि वह आक्रमण के अपराधी किसी राष्ट्र को दण्ड नहीं दे सकता था। नयी व्यवस्था के अनुसार एक प्रबल अन्तर्राष्ट्रीय सेना का प्रबन्ध किया जायगा।

४—सुरक्षा समिति के अधिकार बहुत बढ़ा दिये गये हैं।

सन फ्रांसिस्को में संगठित होने के बाद से इस संस्था ने बाकायदा काम शुरू कर दिया। जनवरी-फरवरी १९४६ में इसका प्रथम अधिवेशन लन्दन में हुआ। अधिकारियों के चुनाव के अतिरिक्त विविध समितियों का संगठन कर दिया गया।

एटम बम का प्रश्न बड़ा विवादास्पद है। इतनी बड़ी संहारक शक्ति एक राष्ट्र के हाथ में रहे तो सदा युद्ध की संभावना रहती है, इसलिए उस पर नियंत्रण करने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की गई। दुर्भिक्ष के विरुद्ध संगठित प्रयत्न का निश्चय किया गया। गुप्त कूट-चर्चाओं के स्थान पर खुली बहस का सूत्रपात किया गया और संसार के ट्रेड यूनियन फैडरेशन तथा अमेरिकन फैडरेशन आफ लेबर को स्वीकार कर लिया गया।

सुरक्षा समिति की प्रथम बैठक बहुत महत्त्वपूर्ण थी। यों तो रूस और अमेरिका व ब्रिटेन के आपसी मत भेद सनफ्रांसिस्को और लन्दन अधिवेशनों में ही स्थल स्थल पर प्रकट हुए थे, लेकिन सुरक्षा समिति में तो यह संघर्ष, परस्पर संदेह, अविश्वास और ईर्ष्या की

भावना और भी तीव्रता से प्रकट हुई। ग्रीस, ईरान और इंडोनीशिया के प्रश्नों को जनरल-असैम्बली ने इस समिति के सुपुर्द कर दिया था। ईरान में अज़रबाइजान को ले कर रूस के विरुद्ध तथा इंडोनीशिया में ब्रिटिश व डच सेनाओं के द्वारा दमन के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई। इसी का परिणाम यह हुआ कि रूस को अपनी सेनाएँ ईरान से वापस बुला कर उससे समझौता करना पड़ा।

इसी संघ की ओर से मास्को, लन्दन तथा पेरिस में विदेश-मंत्रियों के सम्मेलन किये गये और अगस्त १९४६ में पेरिस में एक संधि-सम्मेलन किया गया। इसमें इटली, रूमानिया, हंगरी, फिनलैंड आदि के साथ संधि के प्रस्तावों पर विचार हुआ।

इस नये संघ के कार्यालय का संगठन बहुत व्यापक और विस्तृत है। इसमें कई हज़ार कर्मचारी काम कर रहे हैं। संघ का व्यय २ करोड़ ५० लाख डालर से अधिक है। इसका प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र इसका व्यय सहन करेगा। प्रारंभ में इसके सदस्य ५० देश थे। पीछे कुछ अन्य देशों को भी सदस्य बना लिया गया। आपसी धड़ेबन्दी के कारण एक दूसरे के समर्थक कुछ देशों का विरोध किया गया और इस कारण अनेक देशों के प्रार्थनापत्र अस्वीकार कर दिये गये।

नई समस्याओं की उलझन

इतने महान् उद्देश्यों, आदर्श सद्भावनाओं और विशाल संगठन के बावजूद विश्व-शान्ति के आसार नज़र नहीं आते। पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि रूस तथा ब्रिटेन के स्वार्थों में संसार के कोने कोने में कितना भीषण संघर्ष है। सन फ्रांसिस्को सम्मेलन में, लन्दन में संघ की पहली बैठक में, मास्को तथा लन्दन में विदेश-मंत्री सम्मेलनों में, सुरक्षा समिति की बैठकों में तथा पेरिस के सम्मेलनों में सर्वत्र पारस्परिक संघर्ष उग्र से उग्रतर होता जा रहा है।

इस समय जिन विवादास्पद प्रश्नों के कारण विश्व की शान्ति खतरे में हैं और जो प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ को चिन्ता के विषय बने हुए हैं, उनकी संक्षिप्त जानकारी कर लेना आवश्यक होगा।

इस विश्वयुद्ध से पूर्व संसार में इंगलैंड सर्वोच्च शक्ति था। अपनी सर्वोच्चता कायम रखने के लिए ही वह बीसवीं सदी में जर्मनी से दो बार महायुद्ध करने को विवश हुआ। इस युद्ध में जर्मनी तो परास्त हो गया, परन्तु रूस व अमेरिका के दोनों देश महाशक्ति के रूप में रंगमच पर आ गये। इंगलैण्ड ने अमरीका की सहायता से ही युद्ध जीता था, दूसरे अमरीका का दूसरा प्रतिस्पर्धी रूस साम्यवादी और इंगलैण्ड का प्रबल विरोधी था, इसलिए इंगलैण्ड ने अमरीका के साथ अपने को बाँध लिया। रूस व अमरीका दोनों ही विश्व में अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए सन्नद्ध हैं। दुनिया के सारे देशों को इन दोनों शक्तियों द्वारा अपने प्रभाव में लाने की प्रतिस्पर्धा ही 'विश्वशान्ति के लिए सब से अधिक खतरा है। इन दोनों शक्तियों की आपसी होड़ के कारण सारा यूरोप दो भागों में विभक्त हो गया है। पूर्वी यूरोप रूस के प्रभाव में है, तो पश्चिमी यूरोप के पाँच देशों—इंगलैण्ड, फ्रांस, हालैण्ड, बेलजियम और लक्समबर्ग ने अपना पृथक् संगठन कायम कर लिया है। इटली व यूनान में भी अमरीकन पक्षपाती सरकार है। अन्य भी अनेक देशों को अमरीका पुनर्निर्माण के नाम पर करोड़ों रुपया सहायता के तौर पर दे रहा है। यूरोप के १६ देशों को विशाल सहायता की योजना अमरीकन विदेश-मंत्री मार्शल द्वारा तैयार की गई थी, इसलिए वह *मार्शल योजना* कहाती है। रूस और रूस के समर्थक इस योजना को 'अमरीका का रूपहला जाल' कहते हैं। जर्मनी का पूर्वी भाग रूस के हाथ में है, तो शेष भाग दूसरे पक्ष के। बर्लिन भी दोनों परस्पर विरोधी गुटों की चक्की में पिस कर नाना संकट उठा रहा है। ग्रीस को अमरीकन पक्षपाती सरकार के पंजे से निकाल कर रूस-पक्षपाती सरकार के नीचे लाने के लिए अनेक

बलकान राष्ट्रों की ओर से ग्रीक कम्यूनिस्टों को सहायता प्राप्त हो रही है। इटली को भी अपने पक्ष में लाने के लिए दोनों दल कोशिश कर रहे हैं। ये सब प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ व उसकी सुरक्षा-समिति में कई बार पेश हुए, किन्तु किसी तरह कोई सर्वसम्मत समाधान नहीं निकल सका।

जो स्थिति यूरोप में है, लगभग वही स्थिति मध्यपूर्व में है। यूरोप के बलकान राष्ट्र सदा ज्वालामुखी का काम करते रहे हैं, तो अनेक राजनीतिज्ञों के कथनानुसार निकट भविष्य के इतिहास में मध्यपूर्व के देश ज्वालामुखी सिद्ध होंगे। टर्की, ईराक, ईरान, सीरिया, लेबनान, अरब (और अब यहूदी राज्य इजराईल भी) तथा अफगानिस्तान आदि देश मध्यपूर्व में हैं। आर्थिक, भौगोलिक, राजनीतिक व सामरिक दृष्टि से ये देश बहुत महत्त्व के है। रूस इन देशों में अपना प्रभाव जमाने के लिए चालें चल रहा है, तो अमेरिका व ब्रिटेन अपनी साज़िशें कर रहे हैं। ईरान व ईराक के तेल पर दोनों दलों की दृष्टि है। रूस ईरान की खाड़ी के मार्ग से पूर्व में प्रवेश का द्वार चाहता है तो ब्रिटेन व अमरीका इसे सहन नहीं करना चाहते। फिलस्तीन संसार के बहुत गरम भागों में से एक है—भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक तीनों दृष्टियों से। इस प्रदेश पर ब्रिटिश शासन काल में यहूदियों का बल बहुत बढ़ गया था। अरब उन्हें वहाँ बसाने के लिए तैयार न थे। इन दोनों जातियों में संघर्ष शुरू हो गया और अंग्रेजों के जाते ही यहूदियों ने स्वतंत्र इजराईल राज्य की घोषणा कर दी। दोनों दलों में घोर युद्ध छिड़ गया। संयुक्तराष्ट्र संघ इस समस्या के हल में सफल नहीं हो सका। संघ द्वारा भेजे गये शान्ति कमीशन के अध्यक्ष श्री बर्नाडोट मार डाले गये। अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि बहुत से देशों ने इजराईल राज्य को स्वीकार भी कर लिया है। लेकिन संघ को अब तक शान्ति कराने में सफलता नहीं मिली।

भारतवर्ष में काश्मीर और हैदराबाद दो रियासतों की समस्याएँ संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा समिति में पेश हुईं। हैदराबाद का मामला तो निजाम को वश में करने वाले रजाकारों की प्रेरणा से पेश किया गया था। उनके हाथ से मुक्त होते ही निजाम ने वह मामला वापस ले लिया। काश्मीर का प्रश्न बहुत उलझन भरा था। पर अन्त में सुरक्षा समिति द्वारा भेजे गये काश्मीर कमीशन को युद्ध स्थगित कराने में सफलता मिल गई। पर जब तक कमीशन जनमत की व्यवस्था करके अन्तिम निर्णय नहीं कर लेता, तब तक काश्मीर भी संघ के सिर दर्द का कारण बना रहेगा।

सुदूरपूर्व में इंडोनीशिया का प्रश्न अब तक (४ फरवरी १९४९) नहीं सुलझा। कोरिया पर भी रूसी और अमरीकन सेनाओं ने अधिकार कर के उसे दो भागों में बाँट दिया था। दक्षिणी कोरिया में चुनाव हो गये हैं, किन्तु कम्यूनिस्टों ने नई सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है। कोरिया से विदेशी सेनाओं की वापसी और प्रजातंत्र की स्थापना के प्रश्न ने भी राष्ट्र संघ को गहरी उलझन में डाल दिया। जापान के साथ संधि कैसी की जाय, इस पर भी दोनों महाशक्तियों में मत भेद है। अमरीका वहाँ के उद्योग-धंधों को अपने हित में चलाना चाहता है, वहाँ की सम्पन्न श्रेणी को फिर उत्साहित कर रहा है, ये अभियोग रूस अमेरिका पर लगा रहा है।

परमाणुशक्ति बहुत विनाशक है। इस शक्ति पर एक राष्ट्र का नहीं, विश्वसंघ का नियंत्रण होना चाहिए। यह विषय राष्ट्र संघ में बहुत बार पेश हुआ, किन्तु कोई निर्णय नहीं हो सका। शस्त्रास्त्रों व सैनिक शक्ति को कम करने के विषय भी राष्ट्र संघ की गंभीर समस्याएँ हैं। भारतवर्ष ने दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के विरुद्ध होने वाले विद्वेष का प्रश्न भी राष्ट्र संघ में पेश किया, किन्तु कई बार बहस होने पर भी संघ इस समस्या का कोई निवारण नहीं कर सका।

सुरक्षा समिति में ५ बड़े राष्ट्रों में से किसी भी राष्ट्र को किसी

भी प्रश्न पर 'वीटो' करने का अधिकार है। इसलिए कोई प्रश्न निर्णीत नहीं हो पाता। रूस २२ वार 'वीटो' अधिकार का प्रयोग करके बहुमत को मानने से इन्कार कर चुका है।

इन सब समस्याओं का कोई उचित समाधान न होता हुआ देखकर कोई कोई विचारक इस संघ की भी पुराने राष्ट्र संघ की सी दुर्गति होने की संभावना कर रहे हैं।

नई अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ

राजनीतिक प्रश्नों पर राष्ट्रसंघ द्वारा सफलता की बहुत अधिक संभावना न होते हुए भी अनेक नई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ काम रही हैं, जो समस्त संसार को परस्पर निकट ला रही हैं और जिनसे संसार को लाभ भी पहुँच रहा है।

मज़दूर कान्फ्रैंस—अप्रैल १९४४ में फिलैडैल्फिया में एक अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर कान्फ्रैंस की गई थी। इसने साधारण जनता के अधिकारों का एक चार्टर स्वीकार किया था, जिसमें संगठित होने की स्वतंत्रता, सामूहिक रूप से मिल-मालिकों से समझौते तथा मज़दूरों के लिए आवश्यक संरक्षणों के अधिकारों की घोषणा की थी। इस कान्फ्रैंस में यह भी विश्वास प्रकट किया गया था कि मज़दूर कोई खरीद बिक्री के पदार्थ नहीं हैं, उन्नति करने के लिए विचार-प्रकाशन और संगठन की स्वतंत्रता आवश्यक है; गरीबी सर्वत्र खतरे का कारण है और इसीलिए आर्थिक अभाव के विरुद्ध युद्ध को अन्त तक जारी रखने की ज़रूरत है। फरवरी १९४५ में लन्दन में ट्रेड यूनियन कांग्रेस की गई थी, जिसमें संसार भर के मज़दूर-संघ की स्थापना पर विचार किया गया। नवंबर १९४५ में एक अन्तर्राष्ट्रीय जहाज़ी कान्फ्रैंस हुई थी। इसमें समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत स्वीकार किया गया था। न्यूनतम वेतन, काम के घंटे, मज़दूरों के

बीमा आदि पर भी इस सम्मेलन में विचार किया गया। बाद के वर्षों में भी यह कान्फ्रैंस मजदूरों के हितों पर विचार करती रही है। अक्टूबर १९४८ में एशियायी मजदूर सम्मेलन भारत में किया गया था। यह अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय का ही एक भाग था।

हवाई यातायात—गत युद्ध में हवाई जहाजों के निर्माण में कल्पनातीत उन्नति हुई है और अब निश्चित है कि हवाई यातायात समुद्री व स्थल साधनों से भी अधिक प्रचलित हो जायगा। प्रत्येक देश वायुयानों की अलग अलग कंपनियाँ खोल रहा है। इसलिए उनमें परस्पर होड़ भी लग रही है। अमेरिका में 'पान अमेरिकन एयरवेज' के अध्यक्ष श्री जुआन टैरी ट्रिपे समस्त संसार के आकाश पर अमेरिकन विमानों के प्रभुत्व का स्वप्न ले रहे हैं तो ब्रिटेन अपने विशाल साम्राज्य में किसी दूसरे राष्ट्र का हवाई यातायात पर प्रभुत्व सहन नहीं करता। साधारणतः अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार कोई देश किसी दूसरे देश के ऊपर उसकी अनुमति के बिना वायुयान नहीं ले जा सकता। इससे अमेरिका के मार्ग में बड़ी बाधा पड़ती है और आपसी प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए शिकागो में १९४४ के अन्त में एक अन्तर्राष्टीय हवाई यातायात कान्फ्रैंस की गई। इसमें व्यापारिक जहाजों को एक दूसरे देश के ऊपर से उड़ने तथा तेल भरने और मरम्मत आदि के लिए उतरने का अधिकार दिया गया। व्यापारिक स्वाधीनता या मुसाफिर ले जाने की स्वतंत्रता पर कोई निर्णय नहीं हो सका।

खाद्य सम्मेलन—युद्ध के समाप्त होने से पूर्व ही विभिन्न देशों में आर्थिक और विशेषतः खाद्य पदार्थों का संकट चरम सीमा पर पहुँच गया था। १९४३ में बंगाल में ही भीषण दुर्भिक्ष से ३०-४० लाख आदमी मरने का अनुमान किया गया था। यूरोप के भी अनेक राष्ट्रों में, जिन पर युद्ध संकट आया, अन्न-व्यवस्था टूट चुकी थी। ग्रीस, इटली आदि देशों पर जब मित्र सेनाओं का अधिकार हुआ,

तो वहाँ के लोगों की भोजन-समस्या को उन्होंने तीव्र रूप से अनुभव किया। इस कारण दो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का निर्माण हुआ। पहली संस्था थी 'संयुक्त राष्ट्रीय सहायता और पुनर्निर्माण प्रबंध', जो अंग्रेजी में अपने प्रथम अक्षरों के यू० एन० आर० आर० ए० (UNRRA) के कारण यूनरा कहलाती है। यह संस्था ९ नवंबर १९४३ को बनाई गई थी। इसके तीन काम थे—

(१) खाद्य पदार्थों तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं का पर्याप्त संग्रह।

(२) जर्मनी के पंजे से मुक्त किये गये राष्ट्रों को आवश्यक मात्रा में सामग्री पहुँचाना। और

(३) विभिन्न देशों में स्थानीय सहायता से अनाज आदि की पैदावार बढ़ाकर उन्हें स्वावलम्बी बनाना ताकि अन्न संकट दूर हो सके।

इस संस्था द्वारा यूरोप के अनेक राष्ट्रों तथा चीन को पर्याप्त सहायता भी दी गई है।

इसी तरह की दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्था संयुक्त राष्ट्र खाद्य-सम्मेलन है। इसका प्रथम अधिवेशन कनाडा में किया गया था और ३० राष्ट्र इसमें सम्मिलित हुए थे। इसका उद्देश्य खाद्य पदार्थों की पैदावार बढ़ाना और उसका संसार में उचित और समान वितरण करना है। यह सम्मेलन यह निश्चय करेगा कि प्रत्येक देश को कम से कम कितने खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है और उसे किस तरह पूरा करना चाहिए। सितम्बर सन् १९४६ के प्रारंभ में कोपन हैगन सम्मेलन में विश्व की खाद्य स्थिति पर एक विस्तृत रिपोर्ट पेश की गई थी। इसमें कहा गया है कि एक मनुष्य को कम से कम २६०० कैलोरी खाद्य की जरूरत है, जब कि बहुत से देशों में १२०० से अधिक कैलोरी भोजन भी प्राप्त नहीं होता। किस देश में किस तरह पैदावार बढ़ाई जा सकती है, जो कृषि-प्रधान देश नहीं हैं, किस किस

देश से कितना अनाज उन देशों को भेजा जा सकता है, प्रति व्यक्ति कितना दूध, सब्जी या अन्य पौष्टिक पदार्थ मिलने चाहिएँ और वे किस तरह प्राप्त किये जा सकते हैं, आदि सब बातें इस सम्मेलन में पेश हुईं। यदि यह सम्मेलन इस दिशा में सफल हो सका, तो यह मानव जाति की बड़ी भारी सेवा होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय कोश व बैंक—युद्ध और युद्धोत्तरकालीन परिस्थितियों के कारण अनेक देशों की आर्थिक व्यवस्था बड़ी चिन्तनीय हो गई है। मुद्रा का प्रसार बहुत अधिक बढ़ जाने से चीजें बहुत महँगी हो गई हैं। पदार्थों के मूल्य कुछ देशों में तो छः सात गुना तक हो गये हैं। मुद्रा की कीमत और विनिमय दर में स्थिरता के लिए स्वर्ण कोश, सोने की हुंडियों या चाँदी की पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता होगी। एक देश के आर्थिक संकट का प्रभाव उसके दूसरे देशों के साथ व्यापार पर भी पड़ता है। रुपया पास न होने पर व्यावसायिक पुनर्निर्माण भी कठिन हो जाता है। स्वयं ब्रिटेन जैसे शक्तिशाली देश की आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने के करीब पहुँच गई थी। इन्हीं सब बातों पर विचार करने के लिए जुलाई १९४४ में 'आर्थिक मुद्रा कान्फ्रेंस' अमेरिका में बुलाई गई थी। इसमें पारस्परिक आर्थिक व मुद्रा-संबंधी सहयोग देने का निश्चय किया गया। ४४ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने मिलकर कुछ प्रस्ताव रखे। इनके अनुसार एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोश तैयार किया गया तथा पुनर्निर्माण व विकास के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की भी स्थापना की गई।

यदि सभी ४४ सदस्य-देश अपना अपना हिस्सा इस अन्तर्राष्ट्रीय कोश में दे दें, तो यह कोश ८ अरब ८० करोड़ डालर का होगा। विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति के अनुसार हर एक देश के जिम्मे एक एक राशि नियत की गई है, जिनमें से कुछ मुख्य राष्ट्र निम्नलिखित हैं :—

देश	करोड़ डालर
अमेरिका	२७५
इंगलैंड	१३०
रूस	१२०
चीन	५५
फ्रांस	४५
भारत	४०
कनाडा	३०
नीदरलैंड	२७

इस कोश का प्रयोग विविध देशों की मुद्रा तथा विनिमय दर को स्थिर करने के लिए किया जायगा। यदि किसी देश को विशेष आवश्यकता होगी, तो यह उसे कुछ समय के लिए कर्ज भी देगा। इस संघ का कोई सदस्य-देश अपनी विनिमय दर में १० फी सदी से अधिक हेर-फेर नहीं कर सकेगा, विशेष परिस्थिति होने पर उसे १० फी सदी तक हेर-फेर करने की अनुमति यह संघ दे देगा। युद्ध-कालीन देनदारियों में इस संघ से सहायता ली जा सकेगी। प्रत्येक देश को यह भी अधिकार होगा कि वह इस संघ से पृथक् हो जाय। इस बैंक और कोश की कार्य-समिति में उपयुक्त प्रथम पाँच देश स्थायी सदस्य होंगे। २ सदस्य दक्षिणी अमेरिकन देशों के प्रतिनिधि होंगे और शेष पाँच साधारण सदस्यों द्वारा चुने जाएँगे। भारत भी इसका सदस्य है। पुनर्निर्माण योजनाओं के लिए भारतवर्ष ने भी इस बैंक से ८ करोड़ डालर लिया है और नये ऋण की माँग की है।

इन सब अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के अलावा भी परस्पर सहयोग की अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्मेलन की आयोजना भी की गई है। शिक्षा, संस्कृति तथा स्वास्थ्य आदि विविध प्रवृत्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय रूप से एक केन्द्र में लाने का प्रयत्न आर्थिक तथा सामाजिक सुधार-समिति कर रही है। वस्तुतः एक ओर भौतिक

स्वार्थ हमें एक दूसरे से दूर कर रहे हैं, दूसरी ओर जीवन सम्बन्धी आवश्यकताएँ संसार के सभी देशों को एक दूसरे के निकट संपर्क में लाने के लिए प्रेरित कर रही हैं। इस निकट संपर्क में आने में एक बड़ी बाधा रूस का साम्यवादी दृष्टिकोण है, जो पूँजीपति राष्ट्रों से संघर्ष खाता दीखता है। लेकिन सभी देशों में साम्यवादी प्रवृत्ति बढ़ रही है, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे। यह प्रवृत्ति शनैः शनैः संसार को एकता की ओर ले जायगी। यह संभव है कि इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न में मानवजाति को सफलता न हो, लेकिन मुख्य प्रवृत्ति उसी ओर है, भले ही उसे अभी एक दो और युद्धों में से गुजरना पड़े।

———

चौथा भाग

अध्याय १

पुनर्निर्माण और औद्योगिक विकास

आर्थिक योजनाओं की प्रवृत्ति—इस युद्ध के पूर्व से ही सब राष्ट्रों का ध्यान अपने व्यावसायिक उत्थान के लिए निश्चित योजनाओं का निर्माण करने की ओर खिंच चुका था। रूस की पहली और दूसरी पंचवार्षिक योजनाओं ने और विशेष कर पहली योजना की असाधारण सफलता ने सब सरकारों और अर्थ-शास्त्रियों को अपने अपने देश के लिए भी एक निश्चित योजनानुसार कार्य करने की प्रेरणा दी थी। अमेरिका में प्रेजिडैंट रूज़वेल्ट ने आर्थिक संकट को दूर करने के लिए विशाल योजना बनाकर ही टैनेसी घाटी में कार्य प्रारंभ किया था। ६२५०००० बेकारों को नये जंगल बसाने के काम पर लगाया गया, तीन वर्षों मे १६०००० नये मकान बनाये गये। पब्लिक वर्क्स की भिन्न भिन्न २५००० योजनाएँ बनाकर पूरी की गईं, जिन पर चार अरब डालर खर्च किये गये। इटली में मुसोलिनी ने भी एक निश्चित योजनानुसार इटली के आर्थिक विकास का प्रयत्न किया था। जब अबीसीनिया-आक्रमण के समय इटली पर आर्थिक प्रतिबंध लगाये गये, तब उसने खेती की ओर बहुत ध्यान दिया, कोयले की कमी को पूरा करने के लिए बिजली ज्यादा से ज्यादा निकालने का प्रयत्न किया। कुछ ही सालों में बहुत सी अनुपजाऊ भूमियाँ उपजाऊ बन:

गईं। बिजली की मोटरें विशेष रूप से बनीं, ४००० मील सड़कें तैयार हुईं, ११००० नये स्कूल खोले गये, बहुत सी नहरें बनाई गईं और करोड़ों रुपया बन्दरगाह बनाने पर व्यय किया गया। हिटलर ने भी जर्मनी के आर्थिक अभ्युदय के लिए निश्चित योजनाएँ तैयार कीं। शहरों से हजारों लाखों जर्मन नागरिकों को गाँवों, खेतों में ले जाकर बसा दिया गया ताकि वे लोग खेती-बाड़ी का काम कर सकें, गैरजरूरी दुकानों को बन्द कर दिया गया। इस तरह एक निश्चित योजना के अनुसार करीब ७० लाख कारीगरों और दुकानदारों को कारखानों में लगाया गया। इंगलैंड में भी झोंपड़ी सफाई (Slum Clearance) की पाँच सालाना योजना बनाई गई। १९३८ में १६९००० घर बनाये गये और योजना को आगे बढ़ाकर ४३०००० नये घर बनाने का निश्चय किया गया। इस पर १ करोड़ ७० लाख पौंड खर्च किये गये। इन सब राष्ट्रों की देखादेखी भारत में कांग्रेस ने भी पुनर्निर्माण के लिए एक निश्चित योजना के महत्त्व को समझा और पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में एक नेशनल प्लैनिंग कमेटी बनाई। इस कमेटी ने अपनी व्यापक योजना के निम्नलिखित आधार नियत किये थे—

(क) प्रत्येक कारीगर को स्वास्थ्यप्रद पौष्टिक भोजन, (ख) प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम ३० गज वार्षिक कपड़ा, और (ग) प्रति व्यक्ति को १०० वर्ग फुट तक निवास-गृह।

निम्न विभागों में उन्नति करने की सलाह दी गई—

(क) कृषिजन्य पदार्थों की पैदावार में वृद्धि करना, (ख) कारखानों की पैदावार बढ़ाना, (ग) बेकारी का खात्मा, (घ) प्रति व्यक्ति की आय में वृद्धि करना, (ङ) निरक्षरता दूर करना, (च) प्रति १००० मनुष्यों के पीछे एक चिकित्सालय और (छ) राष्ट्र की औसत आय बढ़ाने के विभिन्न प्रयत्न। युद्ध से पूर्व प्रस्तुत २०० योजनाओं में से निम्नलिखित को भारत सरकार ने भी स्वीकार कर लिया था—रेलों

से रासायनिक द्रव्य तैयार करना, नकली रेशम, गंधक के कुँओं की तलाश, शीरे से अलकोहल व अन्य रासायनिक द्रव्य और नकली फौस्फेट वाले खाद तैयार करना।

स्वावलम्बन—वस्तुतः युद्ध से पूर्व ही प्रत्येक राष्ट्र यह अनुभव कर रहा था कि उसे प्रत्येक क्षेत्र में स्वावलम्बी होने की जरूरत है। युद्ध की काली घटाएँ बड़े जोरों से आसमान पर छा रही थीं और किसी को यह मालूम नहीं था कि कब समुद्रों का यातायात एकदम रुक जावे। इसलिए सभी राष्ट्र अपनी अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूर्ण करने के प्रयत्न में थे और यदि कोई पदार्थ ये स्वयं नहीं बना सकते थे, तो उसके स्थान पर कृत्रिम रूप से सांयोगिक पदार्थ बनाये जाने लगे थे। लेकिन इसकी भी एक सीमा थी। जर्मनी बहुत कोशिश करने पर भी कोयले से जो तेल निकाल सका, उससे उसकी सिर्फ एक चौथाई जरूरत ही पूरी हो सकी। इससे भी काम चलता न देख कर कुछ राष्ट्र मिल कर आपस में व्यापारिक समझौतों द्वारा अपनी विशेष कमी पूरी करने को उत्सुक थे। ब्रिटिश साम्राज्य को एक इकाई मान कर ओटावा कान्फ्रैंस द्वारा एक नया व्यापारिक संगठन किया गया। हिटलर ने भी जब यह देखा कि नकली रेशम, नकली जूट, नकली रेशेदार कपड़े तथा नकली रबड़ आदि के सब प्रयत्नों के बावजूद जर्मनी की जरूरतें पूरी नहीं हुई, तब उसे भी निराश होकर कहना पड़ा—"एक ऐसी रेखा आती है, जब प्रकृति प्रयत्नों की गहराई और व्यापकता की सीमा बाँध देती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हजार कोशिश करने पर भी मैंगेनीज़, टिन और क्रोमियम की जरूरते पूरी नहीं हो सकतीं।" इसीलिए जर्मनी ने विभिन्न राष्टों से अदल-बदल के सिद्धान्त द्वारा अपने को स्वावलम्बी बनाने की चेष्टा की।

इस महा युद्ध ने यह और भी अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि देशों के लिए स्वावलम्बन अनिवार्य है। विदेशी व्यापार के बंद

हो जाने से प्रायः सभी देशों को कल्पनातीत असुविधाओं का सामना करना पड़ा। इसलिए स्वावलम्बन की उस प्रवृत्ति को, जो युद्ध से पूर्व प्रारंभ हो चुकी थी, युद्ध-काल में और भी बल मिला है। प्रायः प्रत्येक देश ने यह प्रयत्न किया कि वह अधिकतम मात्रा में ज़रूरी चीजें अपने यहाँ पैदा करने की कोशिश करे। भारतवर्ष में अपनी तथा ब्रिटिश साम्राज्य की जरूरतें पूरी करने की ओर बहुत ध्यान दिया गया। यहाँ पचासों ऐसे धन्धे खुल गये, जिनकी युद्ध से पूर्व किसी ने कल्पना भी न की थी। आस्ट्रेलिया और कनाडा ने भी इस दृष्टि से असाधारण उन्नति की।

राशन पद्धति—युद्ध काल में होने वाली पदार्थों की असाधारण दुर्लभता ने एक और चीज की ओर भी राजनीतिज्ञों तथा अर्थ-शास्त्रियों का ध्यान खींचा और वह थी प्रत्येक नागरिक की आवश्यकता-पूर्ति। जब तक स्वतंत्र और बे-रोकटोक व्यापार था सरकार ने कभी यह जिम्मेवारी महसूस नहीं की थी कि उसके नागरिकों की आवश्यकता पूर्ण होती है या नहीं। लेकिन पदार्थों की दुर्लभता और लुके छिपे चोर बाजारों ने जनता के संकट को बहुत बढ़ा दिया। तब सरकार ने यह अनुभव किया कि प्रत्येक नागरिक की अन्न-वस्त्र आदि जीवनोपयोगी वस्तुओं की पूर्ति करना उसका कर्तव्य है। इस भावना ने भी एक निश्चित योजनानुसार काम करने की प्रवृत्ति सरकारों में पैदा की। प्रत्येक ग्राम और जिले की जनसंख्या के अनुसार नियत मात्रा में उस ग्राम या जिले के लिए अन्न, वस्त्र, चीनी, तेल और लकड़ी-कोयले की व्यवस्था सरकार ने अपने हाथ में ली। इसी समय सरकार को यह भी देखना पड़ा कि कोई संपन्न व्यक्ति आवश्यकता से अधिक सामग्री लेकर एक गरीब को उसकी जरूरतों से वंचित न कर दे। इसीलिए मूल्य-नियंत्रण के साथ साथ राशन की व्यवस्था जारी की गई। ज्यों ज्यों सरकार को इसका अनुभव होता गया, त्यों त्यों दो प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगीं। एक तो व्यापार व उद्योग धन्धों

के राष्ट्रीयकरण की, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे, और दूसरी निश्चित आर्थिक योजनाओं की।

युद्ध समाप्त भी नहीं हुआ था कि प्रत्येक देश के अधिकारी और अर्थशास्त्री अपने अपने देशों के पुनर्निर्माण की बड़ी बड़ी योजनाएँ बनाने लगे। इन योजनाओं के मूल में जहाँ उपर्युक्त कारण काम कर रहे थे, वहाँ युद्ध के कारण सर्वथा छिन्न-भिन्न और अस्त-व्यस्त आर्थिक व्यवस्था को फिर से यथा-पूर्व प्रचलित करने की आवश्यकता भी उसे प्रेरित कर रही थी। विदेशी व्यापार नष्ट हो गया था, यूरोपियन देशों के कल-कारखाने और मकान, पुल, रेलवे, जहाज तथा साधारण कारोबार सभी कुछ नष्ट-प्राय हो गया था। इस लिए सभी देशों ने अपने आर्थिक और व्यावसायिक पुनर्निर्माण की योजनाएँ बनानी शुरू कीं। युद्ध समाप्त होते ही इन योजनाओं पर प्रत्येक देश में अमल भी शुरू हो गया है।

रूस की नई पंचवार्षिक योजना

इस युद्ध में रूस को सब से अधिक विध्वंस और प्रलय का दृश्य देखना पड़ा है। अंक-शास्त्रियों के अनुमान के अनुसार इस युद्ध में उसे ६ खरब ७९ अरब रूबलों (रूसी सिक्कों) की क्षति हुई है। १७१० शहर तथा ७०००० गाँव बिलकुल तबाह हो गये। जर्मन अधिकार के कारण उसे अपने ५० फी सदी कोयले व लोहे तथा दो तिहाई कच्चे लोहे का नुकसान उठाना पड़ा। कल-कारखानों के विध्वंस के कारण ४० लाख आदमी बेरोजगार हो गये। २ करोड़ ५० लाख रूसी नागरिक जर्मन बमों या टैंकों की अग्नि वर्षा से बे-घर-बार हो गये। १३७००० ट्रैक्टर (मोटर से चलने वाले हल) और ४९००० फसल काटने वाली मोटरें नष्ट हो गईं। इस लिए यह स्वाभाविक था कि वह अपनी पुनर्निर्माण योजनाओं में सबसे आगे रहता। यों भी इस दिशा में उसी ने सब देशों का नेतृत्व किया था। ज्यों ज्यों जर्मनी

हारता जाता था, रूस पुनर्निर्माण की दिशा में पर्याप्त प्रगति करता जाता था। उसकी नयी योजनाओं में युद्ध से ध्वस्त कारखानों का केवल पुनर्निर्माण ही नहीं है, वह युद्ध-पूर्व की पैदावार को भी पहले की अपेक्षा बढ़ा देना चाहता है। १९४० में उसके कल कारखाने कुल १३ करोड़ ८५ लाख रूबलों का माल पैदा करते थे, अब वह १९५० में २० करोड़ ५० लाख रूबलों का माल निकालना चाहता है। इसके लिए उसे पहले तो उतने कारखाने बनाने होंगे, जितने १९४० में जर्मन आक्रमण से पूर्व काम करते थे। उन्हें बनाने के बाद उसे फिर नये उद्देश्य तक पहुँचने के लिए अतिरिक्त कारखाने बनाने होंगे। युद्ध में ध्वस्त ३२०० छोटे बड़े कारखाने बनाने के अतिरिक्त २७०० नये कारखाने बनाने होंगे।

रूस की राष्ट्रीय आय १९३२ में ४५ अरब ५० करोड़ रूबल थी, १९३८ में यह बढ़ कर ९६ अरब ३० करोड़ रूबल हो गई थी। अब रूस १९५० में राष्ट्रीय आय को बढ़ा कर १ खरब ७७ अरब रूबल करना चाहता है। यदि वह अपने इस उद्देश्य में सफल हो गया, तो इसका अर्थ यह होगा कि १८ वर्षों में रूस की राष्ट्रीय आय चार गुना हो जायगी। नई योजना में खाद्य पदार्थों की उपज भी १० फ़ीसदी वार्षिक बढ़ाने का आदर्श है। रूस के व्यापार मंत्री ने अपनी यह योजना पेश करते हुए कहा था कि खाद्य पदार्थों में ५० फ़ीसदी और कल कारखानों के लिए कच्चे माल में ३६ फ़ीसदी वृद्धि पाँच साल तक करने का हमारा निश्चय है। ७० लाख २० हज़ार नये ट्रैक्टर १९५० तक बनाने का दृढ़ संकल्प है। खाद्य पदार्थों की योजनाओं पर १७ अरब रूबल पाँच सालों में खर्च होगा। मई १९४६ तक ३२०० खाद्य-पदार्थ तैयार करने के कारखाने बन चुके हैं। १९५० तक रूस का आदर्श २४ लाख टन चीनी, ८८००० टन तेल, ८७०००० टन साबुन प्रति वर्ष तैयार कर लेने का है। पाँच साल बाद रूस प्रति व्यक्ति १ सेर चीनी मासिक देने में समर्थ हो जायगा। इंजिनीयरिंग

के धन्धे को बहुत बढ़ा कर पैदावार बढ़ाई जायगी। कोयले की पैदावार भी १९५० तक बढ़ाकर २५ करोड़ टन अर्थात् आज से १५० फ़ीसदी कर दी जायगी।

कल कारखानों के विकास में एक और बात ध्यान में रखी गई है कि समस्त व्यवसायिक उन्नति केवल पश्चिमी रूस में ही न हो, जैसा कि युद्ध से पूर्व था। संभवतः जर्मनी के पतन के बाद भी रूस पश्चिमी आक्रमण या एटम बम के प्रयोग के भय से निश्चित नहीं हुआ। इसीलिए उसकी आर्थिक योजनाएँ पूर्वी रूस के लिए भी हैं। विध्वस्त क्षेत्रों के पुनर्निर्माण के लिए ११ करोड़ ५० लाख रुबल नियत किये गये हैं, तो नये क्षेत्रों के विकास के लिए १३ करोड़ ५० लाख रुबल। इतनी व्यावसायिक उन्नति में मजदूरों का सहयोग भी आवश्यक है। इसलिए मशीनों में सुधार आदि के द्वारा मजदूर की पैदावार में प्रति व्यक्ति ३६ फ़ीसदी अधिक पैदावार का भी आदर्श इस योजना में रखा गया है। इन सब योजनाओं में २ खरब ५० अरब रुबल खर्च का अनुमान किया गया है।

अन्य राष्ट्रों ने भी पुनर्निर्माण की योजनाएँ बनाई हैं, लेकिन रूस योजना-निर्माण में सबसे अधिक कुशल है। उसकी योजनाएँ सर्वांगीण होती हैं। उनमें अन्यत्र विस्तार की बातों पर भी प्रकाश डाला जाता है। समस्त देश के नागरिकों की सभी आवश्यकताओं का ठीक-ठीक अनुमान किया जाता है। दुकानदारों, सहोद्योग समितियों, मजदूर-संघों और ग्राम-पंचायतों के द्वारा अधिकतम आँकड़े एकत्र किये जाते हैं और फिर सब आवश्यकताओं में परस्पर समन्वय कायम किया जाता है। एक भी कड़ी टूट जाने से सारी योजना नष्ट-भ्रष्ट हो सकती है।

ब्रिटेन की योजनाएँ

जनहित-योजना—जिस प्रकार की योजना रूस ने बनाई है,

उसी से मिलती जुलती योजनाएँ अपनी आवश्यकताओं के अनुसार कुछ हेरफेर से अन्य सरकारों ने भी बनाई हैं। ब्रिटेन की जनता ने इस युद्ध में असाधारण कष्ट उठाये हैं। वहाँ पूँजीवादी व्यवस्था है, उसके विरुद्ध जनता में बड़ा आंदोलन हुआ। जनता आखिर युद्ध में क्यों इतना बलिदान करे, क्या पूँजीपतियों की जेब भरने के लिए ? इस प्रश्न ने वहाँ की सरकार को ऐसी युद्धोत्तर-कालीन योजनाएँ बनाने के लिए विवश कर दिया जो जनहित की दृष्टि से बनाई गई हैं और जिनसे प्रत्येक नागरिक को लाभ पहुँचे। इसी दृष्टि से सर विलियम बीवरिज नामक अर्थशास्त्री ने एक योजना बनाई। इसका आशय यह था कि प्रत्येक नागरिक की सभी अनिवार्य आवश्यकताएँ पूर्ण होंगी। उसका न्यूनतम वेतन नियत कर दिया जायगा। उसे भोजन-वस्त्र पर्याप्त मात्रा में मिलेंगे, उसकी माध्यमिक शिक्षा और चिकित्सा का समस्त व्यय सरकार वहन करेगी। बालकों को दूध सरकार की ओर से मिलेगा। बीमारी, बेकारी और बुढ़ापे में सरकार उसका जीवन-व्यय बरदाश्त करेगी। स्त्रियों के लिए प्रसव का सुन्दर प्रबध भी सरकार करेगी। कोई आदमी भोजन या बीमारी में उचित चिकित्सा की कमी से नहीं मरने पायगा। निवास का भी प्रबंध सरकार करेगी।

इसी योजना के सिलसिले में ब्रिटिश सरकार ने एक राष्ट्रीय बीमा बिल पेश किया। इसमें स्त्रियों को प्रसव-कालीन भत्ते के अतिरिक्त वैधव्य में, मजदूरों को बेकारी, बीमारी और बुढ़ापे में, सरकार की ओर से निम्नलिखित रूप से सहायता मिलेगी—

अकेला आदमी	२६ शिलिंग प्रति सप्ताह।
विवाहित दम्पती	४२ शि० प्रति सप्ताह।
पहले बच्चे पर	७॥ शिलिंग प्रति सप्ताह।
शेष प्रत्येक संतान पर	५ शिलिंग प्रति सप्ताह।

ब्रिटिश सरकार की योजना के अनुसार इस समस्त सहायता

कार्य में ५० करोड़ पौंड प्रति वर्ष व्यय होगा। इस निमित्त बनाये गये कोश का निर्माण इस तरह होगा—४ शि० ७ पैंस प्रत्येक कमाने वाला व्यक्ति देगा, ३ शि० १० पंस मिल मालिक और १ शि० १४ पैंस सरकार प्रति सप्ताह देगी।

औद्योगिक योजना—ब्रिटेन की युद्धोत्तर कालीन योजनाओं का दूसरा अंश है कल कारखानों का पुनर्निर्माण। युद्ध से ब्रिटेन को जो आर्थिक क्षति हुई है, वह दो प्रकार की है। एक तो वहाँ के शहरों, रेलवे, यातायात या कल कारखानों का विध्वंस, दूसरे विदेशों में लगी हुई अधिकांश पूँजी और समस्त विदेशी व्यापार की समाप्ति। ब्रिटेन को रुपये की इतनी अधिक आवश्यकता हुई कि उसने अपनी विदेशों में लगी हुई पूँजी को वापस लेने का प्रयत्न किया। भारतवर्ष उसका ऋणी था, अब वह भारत का १२-१३ अरब रु० का ऋणी है। ब्रिटेन युद्ध के बाद अपनी पूर्व-कालिक स्थिति तक पहुँने के लिए न केवल उतने कल कारखाने बना लेना चाहता है, जितने युद्ध से पूर्व थे बल्कि उसकी नयी योजनाओं का आदर्श है १५० फ़ीसदी विदेशी व्यापार। अमेरिका से उसने ९३॥ करोड़ पौंड कर्ज अपने धन्धों के पुनर्निर्माण के लिए लिया है; इसके बिना वह अपने धंधों की तरक्की नहीं कर सकता। उसकी नयी योजनाओं में घरों का पुनर्निर्माण एक मुख्य अंग है। जर्मन बमों द्वारा प्रति पाँच में से एक घर ध्वस्त हो गया है। स्कूलों, अस्पतालों तथा रेलवे स्टेशनों और पुलों आदि के विनाश की तो कोई गिनती ही नहीं। जर्मनी और जापान के पतन से इसके दो प्रतिस्पर्धी नष्ट हो गये हैं, लेकिन एक ओर अमेरिका बड़े जबर्दस्त प्रतिस्पर्धी के रूप में खड़ा हो गया है, दूसरी ओर प्रत्येक देश में कल कारखाने कायम हो गये हैं। इसलिए उसके पुनर्निर्माण में काफी बाधाएँ हैं; फिर भी वह धैर्य के साथ प्रत्येक क्षेत्र में नयी नयी योजनाएं बना रहा है।

युद्ध समाप्त हो जाने के कारण बेकार हुए आदमियों को रोज-

गार देने तथा व्यावसायिक दृष्टि से अविकसित क्षेत्रों को उन्नत करने की दृष्टि से सरकार ने दो योजनाएँ बनाई हैं। अविकसित क्षेत्रों में मकान, यातायात और जमीन की विशेष सुविधाएँ देकर सरकार ६ करोड़ २० लाख पौंड की लागत से १४५३ नये छोटे छोटे कारखाने खोलने की योजना पर अमल करेगी। इस योजना से ८३००० मजदूरों को काम मिलेगा। पहले से ही उन्नत क्षेत्रों में १३ करोड़ १० लाख पौंड की लागत से ५८५ बड़े कारखाने खोलने जा रही है। इन कारखानों में १३५००० मजदूर काम पा सकेंगे। इन दोनों योजनाओं का आधा व्यय शुरू शुरू में सरकार बरदाश्त करेगी, जिसे किश्तों में वसूल किया जायगा। माल को सस्ते से सस्ता पैदा करने के लिए वैज्ञानिकों की बहुत बड़ी संख्या लगाई गई है। अनुसंधान विभाग (रिसर्च डिपार्टमेंट) को सरकार ने केवल एक वर्ष (१९४६) में २४ लाख पौंड की सहायता दी है। इस विभाग की एक खोज के कारण में ईंधन पौने दो लाख पौंड की बचत हो सकी है। अन्य भी अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान-समितियाँ रोज इस बात के परीक्षण कर रही हैं कि किस तरह माल को कम लागत में तैयार किया जा सकता है।

बिजली उद्योग-धन्धों के लिए बहुत आवश्यक है, इसीलिए ब्रिटिश सरकार ने ४५ करोड़ पौंड व्यय करके १० अरब यूनिट बिजली पैदा करने की योजना बनाई है। निर्यात व्यापार को ब्रिटेन अपनी आवश्यकताओं से भी अधिक महत्त्व दे रहा है। ब्रिटिश साइकलें भारत में आकर भी ब्रिटेन के अपने बाजार से सस्ती बिकती हैं। उसने ४० पौं० की कीमत की मोटरसाइकलें बनाई हैं, जो फिल-हाल वहाँ न बिक कर विदेशों में ही बिकेंगी।

साधारणतः पूँजीवादी राष्ट्र में प्रत्येक नागरिक को अपनी अपनी इच्छानुसार धन्धा चुनने की स्वाधीनता होती है। लेकिन जब कोई देश अपनी आवश्यकतानुसार एक योजना बना लेता है, तब उसके प्रत्येक नागरिक को उसी योजना के अनुसार चलना पड़ता है।

इसीलिए ब्रिटिश सरकार ने पूँजी पर नियंत्रण की एक नई योजना बनाई है। सरकार से बिना अनुमति लिये कोई नया कारखाना नहीं खुल सकेगा और सरकार उसी कारखाने के लिए अनुमति देगी, जिसकी योजना के अनुसार आवश्यकता होगी। ब्रिटेन जैसे पूँजी-वादी देश के लिए यह क़दम भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अमेरिका की आर्थिक योजना

इस युद्ध में यद्यपि अमेरिका को ब्रिटेन और रूस की भाँति युद्ध के कारण कोई क्षति नहीं उठानी पड़ी, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह कोई नवीन आर्थिक योजना नहीं बना रहा। स्व० प्रेज़ि-डेंट रूज़वेल्ट ने टैनेसी घाटी तथा अन्य योजनाएँ तैयार की थीं. उनसे अमेरिका को काफ़ी लाभ पहुँचा। इस युद्ध में उसकी उत्पादक शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई है और इसके साथ समस्त संसार के बाज़ार में छा जाने की महत्त्वाकाँक्षा भी जाग्रत हो गई है। पिछले महायुद्ध के बाद अमेरिका ने तटस्थता की नीति स्वीकार कर राष्ट्रसंघ में सम्मिलित होने से भी इन्कार कर दिया था। लेकिन अब अमेरिका बदल चुका है। उसने इस युद्ध में असंख्य रुपया कमाया है। वह एक ओर चीन में अरबों रुपया पूँजी लगा रहा है तो दूसरी ओर मध्य-पूर्व, भारत, फ़िलिपाइन्स तथा यूरोपियन देशों को भी अपनी पूँजी और अपने तैयार माल से पाट देना चाहता है। उसने अपने औद्योगिक उत्पादन का आदर्श यह बनाया है कि उसका निर्यात व्यापार एक अरब डालर से दो अरब डालर हो जाय। इसी दृष्टि से वह अपने प्रत्येक धन्धे का विकास करना चाहता है।

सर हेनरी वालेस ने एक पंचवार्षिक योजना व्यावसायिक विकास के लिए बनाई है। इसका नाम रखा गया है—छः करोड़ आदमियों को काम।' इस योजना का उद्देश्य समस्त सं० रा० अमे-रिका में धंधों का इतना विकास कर लेना है कि उनमें २० साल से

६५ साल तक के ६ करोड़ आदमियों को काम मिल जाय। यह योजना अमेरिका में बहुत लोकप्रिय हुई। यह वहाँ के उद्योगपतियों के लिए बाइबिल के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस योजना में यह भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि इन छः करोड़ में १ करोड़ ८० लाख स्त्रियाँ होंगी। अभी तक भी वहाँ नीग्रो, कैथोलिकों तथा यहूदियों के साथ पूर्ण समानता का व्यवहार नहीं होता। लेकिन सर हेनरी वालेस ने १ करोड़ ३० लाख नीग्रो, २ करोड़ ३० लाख कैथोलिकों तथा ५० लाख यहूदियों को भी काम दिलाने का विश्वास दिलाया है। इन जातियों के साथ कोई भेद-भाव नहीं किया जायगा।

साधारण जनता के हित का भी अमेरिकन योजनाओं में ध्यान रखा जा रहा है। स्व० प्रैजिडैंट रूजवेल्ट ने चार प्रकार की स्वतंत्रताओं की घोषणा की थी जिनका उल्लेख हम इस पुस्तक के नागरिक अधिकारों के प्रसग में कर आए हैं। श्री रौबर्ट वैगनर की एक योजना के अनुसार अमेरिका में पहली बार बीमारी का बीमा जारी किया जायगा। स्वास्थ्यगृहों तथा औषधालयों आदि का नये सिरे से निर्माण करने के लिए दस वर्षों में इस योजना के अनुसार ९५ करोड़ डालर खर्च किया जायगा। बेकारी या बुढ़ापे में भी ब्रिटेन की बीवरिज योजना के अनुसार सहायता की योजना बनाई गई है। स्व० रूजवेल्ट ने तो बीवरिज के ही मुख्य सुझावों को अमेरिकन कॉंग्रेस के सामने पेश किया था। इसकी प्रस्तावना में यह स्पष्ट था कि प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसे काम और रोटी मिले। अमेरिकन सरकार ने मिल-मालिकों से भी यह अनुरोध किया है कि मजदूरों के वेतन में कम से कम १५ फ़ीसदी वृद्धि कर दें। युद्धकाल में और उसके बाद अमेरिकन मज़दूरों की व्यापक हड़तालों ने उसे ऐसा करने पर विवश कर दिया।

अमेरिका के मार्ग में सब से बड़ी बाधा यह है कि उसके पास कोई बड़ा साम्राज्य नहीं है। ब्रिटेन अपने साम्राज्य में एक इकाई के

के नाम पर अनेक व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कर लेता है, तट-करों में रियायतें प्राप्त कर लेता है। इस बाधा को दूर करने के लिए अमरीका १९४३-४४ से ही प्रयत्नशील है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से संसार के आर्थिक विकास की उसकी प्रवृत्तियों के मूल में यही मुख्य रहस्य है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के नाम पर वह तट-करों आदि के बंधन शिथिल कर देना चाहता है, ताकि उसका माल निर्बाधगति से सर्वत्र पहुँच सके। ब्रिटेन को ९३॥ करोड़ पौंड का विशाल कर्ज देते समय भी अमेरिका ने उससे इस संबंध में आश्वासन प्राप्त कर लिया है, कि वह साम्राज्य को एक इकाई मान कर अमेरिका के निर्यात में विशेष बाधा उपस्थित नहीं करेगा। वह यूरोप के देशों में सक्रिय हस्तक्षेप चाहता है, इसीलिए वह मध्यपूर्व में अपने तेल के हितों को सुरक्षित कर रहा है ताकि यूरोपीय यातायात के लिए उसे वहाँ से तेल प्राप्त हो सके।

भारत में नई योजनाएँ

बम्बई-योजना—रूस, ब्रिटेन और अमेरिका की भाँति अपने आर्थिक विकास या पुनर्निर्माण के लिए अन्य देश भी विविध योजनाएँ बना रहे हैं। भारतवर्ष में भी इस तरह का प्रयत्न युद्ध से पूर्व गैर सरकारी तौर पर प्रारंभ हुआ था, यह हम पहले कह आए हैं। युद्ध के समाप्त होते होते भारत के प्रमुख आठ अर्थशास्त्रियों ने भी बम्बई योजना के नाम से एक प्रमुख योजना तैयार की थी। इस योजना को प्रस्तुत करने वालों के नाम निम्नलिखित थे—सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, जे० आर० डी० ताता घनश्यामदास बिड़ला, सर अर्देशिर दलाल, सर श्रीराम, कस्तूरभाई लालभाई, ए० डी० शराफ और जॉन मथाई। इस योजना के प्रस्तावकों का मुख्य लक्ष्य यह था कि—

प्रत्येक भारतीय की आमदनी की सालाना औसत १५ सालों

के अन्दर दुगनी हो जाय, लेकिन तब तक जनसंख्या भी ५० लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ जायगी, इसलिए भारत की कुल राष्ट्रीय आय आज से कम से कम तिगुनी हो जाय। साधारणतः भारत की राष्ट्रीय आमदनी २२ अरब रुपये वार्षिक है। इसे बढ़ा कर ६६ अरब रुपये करने के लिए—

(१) खेती की खालिस उपज को सवा दो गुना तक बढ़ाया जाय। १९३१-३२ में ११ अरब ६६ करोड़ रु० खेती की पैदावार से आय हुई थी। नये आदर्श के अनुसार १५ साल बाद इससे २६ अरब ७० करोड़ रुपये की आमदनी होनी चाहिए।

(२) बड़े कल-कारखानों व छोटे धन्धों की आमदनी छः गुना कर दी जाय अर्थात् ३ अरब ७४ करोड़ रु० से बढ़ा कर २२ अरब ४० करोड़ रु० तक पहुँचाई जाय।

(३) रेलवे, जहाज, बिजली, डाक, तार से आजकल कुल ६ अरब ८४ करोड़ रु० की आमदनी होती है। १५ साल बाद १४ अरब ५० करोड़ रु० तक हो जानी चाहिए।

जन-साधारण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा, स्वास्थ्य और मकानों के संबंध में भी एक विस्तृत योजना बनाई गई थी और उन पर आगामी १५ वर्षों में क्रमशः ४९०, ४५० और २२०० करोड़ रु० खर्च करने के प्रस्ताव पेश किये गये थे। इस योजना में ध्यान रखा गया था कि भारत के प्रत्येक नागरिक को कितने भोजन, कितने वस्त्र और कितने मकान की आवश्यकता है। उद्योग-धन्धों, खेती, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान आदि पर कुल एक खरब रु० खर्च करने की योजना बनाई गई थी। बेकारी को सर्वथा दूर करना, जमींदारी पद्धति समाप्त करना, संपन्न-वर्ग पर सीधे कर लगाकर असमानता को दूर करना आदि की भी सिफारिशें इस योजना में थी। इसमें बाकायदा यह बताया गया था कि राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए फिलहाल कितने कारखाने

कितने घरेलू धन्धे, कितनी रेलवे, कितने मकान, कितने स्कूल और कितने हस्पताल खोले जावें। अन्त में यह बताया गया था कि १५ साल बाद प्रत्येक भारतीय की १३५) रुपये वार्षिक आय हो जायगी। यह अन्तिम आदर्श नहीं है, केवल एक मंज़िल मानी गई है।

सरकारी योजना—बम्बई के उद्योगपतियों की इस योजना के बाद भारत में कई योजनाएँ बनाई गईं, जिनमें से भारत-सरकार की तथा गाँधीजी की योजनाएँ उल्लेखयोग्य हैं। भारत-सरकार की योजना भी १५ वर्षों के लिए नियत थी। इस योजना के चार मुख्य भाग थे—

(क) व्यावसायिक और कृषि-संबंधी विकास के मुख्य साधन के रूप में बिजली असाधारण रूप में पैदा करना।

(ख) कल कारखानों और विशेषतः बड़ी मैशीनरी तैयार करने वाले कारखानों और घरेलू धन्धों का विकास।

(ग) यातायात की व्यवस्था और सड़कों तथा गाड़ियों का निर्माण। और

(घ) खेती की पैदावार बढ़ाना, सिंचाई का प्रबंध, खाद की तैयारी और कृषि-रोगों से रक्षा।

व्यावसायिक विकास के लिए प्रथम पाँच वर्षों में १० अरब रुपये खर्च किये जायँगे। ग्रामसुधार व कृषि की उन्नति के लिए १५ वर्षों में १० अरब रुपये खर्च किये जायेंगे, जिससे खेती की पैदावार १५ साल बाद दुगनी हो जाय। यातायात-समिति ने सारे देश में सड़कों का जाल बिछा देने के लिए एक दस-साला योजना बनाई है, जिसके अनुसार ४ अरब ५० करोड़ रुपये से ४ लाख मील सड़कें बनाई जायँगी। रेलवे इंजिन तथा बॉयलर बनाने के कारखाने भारत में खोले जायँगे और प्रति वर्ष पाँच सौ मील रेलवे लाइन बनाई जायगी। १० साल में एक अरब की लागत से ५००० मील लंबी रेलवे लाइन बन जायगी। रेलवे यात्रियों

को भी विशेष सुविधाएँ देने की योजनाएँ बनाई गई हैं। इसी तरह भारत-सरकार द्वारा नियत कमेटियों ने एक लाख वर्गमील नये जंगल बसाने, नहरें बनाने, जहाजी धन्धे को उन्नत करने आदि की योजनाएँ बनाई हैं। देश में शिक्षा-प्रसार के लिए एक ४० वर्षीय योजना बनाई गई है, जिसका उद्देश्य प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा, दस्तकारी शिक्षा और योग्य विद्यार्थियों को ऊँची शिक्षा देने की सुविधाएँ देना है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा निःशुल्क होगी। ६ से १४ साल तक के बालकों को अनिवार्य रूप से पढ़ना होगा। जब ४० वर्षों में यह योजना पूरी हो जायगी, तब शिक्षा पर प्रति वर्ष ३ अरब १२ करोड़ रु० व्यय हुआ करेगा। स्वास्थ्य-संबंधी कमेटी ने भी आगामी १० वर्षों में १० अरब रुपये खर्च की योजना बनाई है। जब यह योजना पूर्ण हो जायगी, तब प्रति २००० नागरिकों के पीछे एक डाक्टर हो जायगा और प्रति व्यक्ति पर २ रु० ६ आ० ६ पाई खर्च होगा, जब कि आजकल कुछ आनों से अधिक खर्च नहीं होता।

प्रांतीय योजनाएँ भारत सरकार की योजनाओं के साथ प्रत्येक प्रान्तीय सरकार ने भी उन्नति की योजनाएँ बनाई हैं। इन सब योजनाओं का उद्देश्य बिजली के पावर हाऊस, नहरी सिंचाई, जंगल लगाना, खेती में सुधार आदि हैं। इन योजनाओं पर करीब ८३३ करोड़ रु० व्यय होगा। भारत सरकार इन योजनाओं की पूर्ति के लिए ३६ करोड़ रुपया पेशगी देगी और शेष व्यय प्रान्तीय सरकारें स्वयं या कर्ज लेकर करेंगी। बिजली की योजनाओं पर ११ करोड़ ३० लाख, नहरों और बिजली के कुँओं पर ८४ करोड़ और जंगल, खेती तथा मछली पर ४ करोड़ २८ लाख रु० की योजनाएँ बनाई गई हैं। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार नदियों पर बड़े बड़े बाँध बनाकर बिजली की योजनाएँ बना रही है।

पंजाब सरकार ने जो योजनाएँ बनाई हैं उनमें बिजली-घर

बनाने की योजना पर सबसे अधिक ध्यान दिया गया है। इसके प्रमुख कारण ये हैं—(१) बिजली सबसे सुलभ और सस्ती पड़ती है। कोयला और तेल सब जगह प्राप्त नहीं होता, उसके लाने में लगातार भारी खर्च पड़ता है। बिजली केवल बड़े बड़े कल कारखानों के लिए ही नहीं, छोटे छोटे घरेलू धन्धों और खेती की सिंचाई आदि के लिए भी उपयोगी है। पंजाब सरकार ने इस संबंध में अपनी योजनाओं का उद्देश्य यह बताया है कि सारे प्रान्त में बिजली की लाइनों का ऐसा जाल बिछा देना जिससे अधिकांश जनता को अत्यन्त सुलभ मूल्य पर बिजली मिल सके।

यू० पी० सरकार शारदा नहर को ६० फीट नीचे गिराकर एक बड़ा बिजलीघर खोलने की स्कीम बना रही है, इससे १० जिलों में वह बिजली पहुँचा सकेगी। शाहगंज पर भी वह एक नया बिजलीघर बना रही है। मद्रास सरकार मैतूर तथा नायर स्थानों पर बड़े-बड़े बिजलीघर बना रही है। बिहार में दामोदर नदी पर बाँध बनाकर अमेरिका की नई टैनेसी घाटी के नमूने पर नई बस्ती बसाई जायगी। इसके लिए टैनेसी घाटी के प्रमुख इंजनीयर से परामर्श भी लिया गया है। निजाम हैदराबाद की सरकार भी टैनेसी घाटी के नमूने पर गोदावरी पर बाँध तथा बिजलीघर बना कर एक व्यावसायिक क्षेत्र बनाना चाहती है। इस योजना पर २४ करोड़ रुपया व्यय होगा। अन्य प्रान्तीय सरकारें भी अपने अपने प्रान्तों की आर्थिक योजनाएँ बना रही हैं। मद्रास और उड़ीसा की सरकारों ने मिल कर मछकंड बिजली योजना बनाई है, जिस पर करीब ७ करोड़ ३२ लाख रुपया व्यय होगा। इससे आंध्र प्रान्त के पाँच जिलों को तथा उड़ीसा को बिजली मिल सकेगी। इन बिजलीघरों के साथ साथ बड़े-बड़े बाँधों द्वारा नई नई नहरें निकाली जायँगी, जिससे खेती की सिंचाई का भी अच्छा प्रबंध हो जायगा। सड़कों के किनारों पर वृक्ष लगाने, नहरों के धरातल को पक्का करने तथा ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने,

मछलियों के धन्धे का विकास करने, सब्जी व फलों की खेती को उन्नत करने की योजनाओं के अलावा शिक्षा और स्वास्थ्य की भी योजनाएँ बन रही हैं।

प्रान्तीय सरकारें सीमेंट तथा खाद आदि के कारखाने स्वयं खोलने पर विचार कर रही हैं। इन सरकारी योजनाओं के अतिरिक्त यह भी उम्मीद की जाती है कि १९४५-४७ में विविध उद्योगपति भी कल कारखानों के विकास में १ अरब ४० करोड़ रुपया की पूँजी लगावेंगे, जिसकी अनुमति प्रान्तीय सरकारों से मिल जायगी।

भारतवर्ष के स्वतंत्र होने के बाद इन सब योजनाओं में और भी प्रगति की गई है। कई योजनाओं पर कार्य प्रारंभ कर दिया गया है। देश को ४० वर्ष की बजाय १० वर्षों में साक्षर करने की योजना बनाई गई है। ३ सालों में ५० प्रतिशत जनता को शिक्षित करने की योजना है। टैकनिकल शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा है।

मँहगाई को रोकने के लिए दो प्रकार की योजनाएँ बनाई गई हैं—इस्पात, सूती कपड़ा, सीमेंट, कागज, औषधियाँ, मोटर-बैटरी, आदि ३२ उद्योगों के लिए तात्कालिक योजनाएँ तैयार की गई हैं। जिन धन्धों के लिए विदेशों से मशीनरी मँगाई जाती है, उनमें तीन-चार साल लग सकते हैं। इन दोनों योजनाओं के पूर्ण होने पर इन उद्योगों की उत्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। उदाहरण के तौर पर सूती कपड़ा ३७७०० लाख गज के बजाय ५१८६० लाख गज, इस्पात ८,५०,००० टन की जगह १७,५०,००० टन और गंधक का तेजाब ६५००० की जगह १५१००० टन तैयार होने लगेगा। इन योजनाओं पर २ अरब रु० व्यय होने का अनुमान किया गया है। १४ मार्च १९४८ को भारतवर्ष में बनाया गया समुद्री जहाज विजगापट्टम बन्दरगाह के कारखाने से समुद्र में उतार कर इस दिशा में बड़ा भारी कदम उठाया गया। यह जहाज ८००० टन का था। और भी जहाज बनाये जा रहे हैं। बंगलौर में वायुयान बनाने का

कारखाना खुल गया है, जो १९५० तक ३० वायुयान बना देगा। मोटर बनाने के दो प्रारंभिक कारखाने भी खुल चुके हैं। बाइसिकलें, सीने की मशीनें आदि भी भारत में बनने लगी हैं। बिहार के सिंदरी स्थान पर खाद तैयार करने का बड़ा भारी कारखाना खोला जा रहा है।

देश के विभाजन से अन्न समस्या और भी विकट हो गई है। अविभाजित भारत की ८० फीसदी जनता को भोजन देना है, जब कि गेहूँ और चावल की पैदावार पहले की अपेक्षा ६५ तथा ६९ प्रतिशत रह गई है। सिंचाई की विस्तृत अच्छी व्यवस्था पश्चिमी पंजाब में रह जाने के कारण भारत के पास सिंचाई वाली जमीन भी ६६ फीसदी रह गई है। गेहूँ की सिंचाई की जमीन तो केवल ५४ फीसदी रह गई है। भारत ने करोड़ों रुपये की लागत से जो बाँध व नहरें पश्चिमी पंजाब व सिंध में बनाई थीं वे सब पाकिस्तान में रह गई हैं। इसलिए सरकार ने खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए विशाल योजनाएँ बनाई हैं। ये योजनाएँ दो प्रकार की हैं—तात्कालिक और कुछ समय लेने वाली। ६० लाख एकड़ जमीन को सात वर्ष में ट्रैक्टरों द्वारा कृषियोग्य भूमि बनाने की योजना पर २ अरब ६६ करोड़ रुपया व्यय होगा। संयुक्तप्रान्त के मेरठ जिले व मत्स्यसंघ में सैकड़ों विशालकाय ट्रैक्टर कृषि कार्य में प्रयुक्त होने लगे हैं। सिंचाई के लिए बड़ी बड़ी नहरों के बनाने की योजनाओं का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। पूर्वी पंजाब की नाँगल और भाकरा बाँध योजनाएँ देश के भविष्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। नाँगल बिजली योजना के अनुसार रोपड़ से ४२ मील ऊपर सतलुज नदी आर पार एक बाँध बनाया जायगा और एक नहर निकाली जायगी। नहर के किनारे चार बिजली घर बनाये जावेंगे। भाकरा बाँध के पूरा हो जाने पर १३९००० किलोवाट बिजली पैदा हो जायगी। इन योजनाओं से २०० मील लम्बी नहरें बनेंगी, जो ४५ लाख एकड़ भूमि को सींचेंगी।

अध्याय २

साम्यवाद की ओर

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि इस महान् युद्ध ने मानव-जाति के आर्थिक जीवन पर बहुत प्रभाव डाला है। सरकारों ने आर्थिक विकास के संबंध में अपने उत्तरदायित्व को विशेष रूप से अनुभव किया है और इसीलिए प्रत्येक देश अपने को अधिक से अधिक स्वावलंबी बनाने की चेष्टा में प्रयत्नशील है। जब सरकारें आर्थिक क्षेत्र में अपनी जिम्मेवारी महसूस करते हुये नियंत्रण व हस्तक्षेप शुरू कर देती हैं, तब उसका स्वाभाविक परिणाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता की हानि होता है। राष्ट्र को जिस चीज़ की आवश्यकता है और जितनी मात्रा में है, उतनी मात्रा में और वही वस्तु बनाने के लिए उद्योगपतियों को विवश होना पड़ता है। वह अपने वैयक्तिक लाभ या सुविधा की दृष्टि से नहीं, बल्कि देश की दृष्टि से व्यावसायिक निर्माण करेंगे। जब भारत में जूट बहुत सस्ता हो गया था तो बंगाल सरकार ने जूट की खेती पर पाबंदी लगा दी थी। इसी तरह अन्न-संकट के दिनों में भारत सरकार ने अनेक लाभप्रद फ़सलों की बजाय गेहूँ बोने पर जोर दिया।

पूँजीवाद के विरुद्ध असंतोष—औद्योगिक विकास में सरकारों के हस्तक्षेप और नियंत्रण के साथ साथ एक और भी प्रवृत्ति पैदा हुई। वह प्रवृत्ति थी केवल देश की राष्ट्रीय आय बढ़ाने की अपेक्षा सर्वसाधारण के हितों को अधिक महत्त्व देने की। राशन की प्रवृत्ति, जिसका उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर आये हैं, इसी का परि-

णाम था। नवीन योजनाओं में प्रत्येक नागरिक की न्यूनतम आय, स्वास्थ्य, शिक्षा और भोजन तथा निवास की चिंता भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। युद्ध में सपन्न वर्ग की अपेक्षा साधारण जनता को अधिक बलिदान करने पड़े। इसलिए यह अस्वाभाविक न था कि युद्ध के बाद वह यह माँग करती कि संपन्न वर्ग हमारा शोषण न कर सके और हमारी सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाय। ब्रिटेन की पूँजी-पति सरकार ने जनता को संतुष्ट करने के लिए बीवरिज योजना तैयार की। अमेरिका में भी ऐसी योजनाएँ तैयार हुईं, लेकिन योज-नाओं से जनता को वस्तुतः संतोष नहीं हुआ। उसकी माँग बढ़ती गई और वह विविध देशों में संपन्न वर्ग के विरुद्ध विविध रूपों में प्रकट हुई। ब्रिटेन में युद्ध के विजेता मि० चर्चिल को जनता ने दूध को मक्खी की तरह निकाल दिया। मि० चर्चिल की दृढ़ता और व्यवहार-कुशलता के कारण इंगलैंड युद्ध में विजयी हुआ था। उन्हें विश्वास था कि ब्रिटिश जनता उनके उपकारों को न भूलेगी, लेकिन जब चुनाव के परिणामों की घोषणा हुई तब संसार यह देखकर चकित रह गया कि मि० चर्चिल और उसकी पार्टी को करारी हार मिली। पार्लमेंट की ६२७ सीटों में से केवल १९५ सीटें अनुदार दल को और ३९० मजदूर दल को मिलीं। मि० चर्चिल के बड़े बड़े महा-रथी हार गये। अमेरिका तथा अन्य देशों में जनता का असंतोष देश-व्यापी हड़तालों के रूप में प्रकट हुआ।

उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

कारण—पूँजीवाद के विरुद्ध असंतोष के बढ़ने का एक और मुख्य कारण भी था—साम्यवादी रूस का बढ़ता हुआ प्रभाव। इस युद्ध में से अत्यन्त प्रभावशाली और शक्तिशाली रूस का अभ्युदय हुआ है। स्वभावतः उसकी विचारधारा का प्रचार विविध देशों में बढ़ा। रूस के साथ पूर्णतः सहमत न होते हुए भी व्यवसायों के

राष्ट्रीय-करण की प्रवृत्ति बढ़ी। युद्धकाल में व्यापार-व्यवसाय पर नियंत्रण के अनुभव ने भी इस प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायता दी और पूँजीपतियों के प्रति विरोधी भावना ने भी।

भिन्न-भिन्न धन्धों के सरकार द्वारा चलाने की प्रवृत्ति बढ़ने का एक अप्रत्यक्ष कारण और भी था। जनता के प्रति ज्यों-ज्यों सरकार अपनी जिम्मेवारी अधिकाधिक अनुभव करती गई, त्यों-त्यों उसके खर्च भी बढ़ते गए। इन खर्चों को पूरा करने के दो साधन हैं। एक तो जनता पर कर-वृद्धि और दूसरा स्वयं धंधे चला कर आय-वृद्धि। जनता पर कर पहले ही बहुत हैं, उन्हें एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। दूसरा मार्ग उसके लिए खुला है। इससे साधारण जनता भी संतुष्ट रहती है, क्योंकि इससे अप्रत्यक्ष कर कम होते हैं और धंधों के संचालन में अपने व्यवस्थापक प्रतिनिधियों द्वारा उन पर उसका नियंत्रण भी रहता है।

ब्रिटेन में—ब्रिटेन के मजदूर दल ने अपने चुनाव-घोषणापत्र में अनेक व्यवसायों को देश की सम्पत्ति बना देने की नीति पर विशेष ज़ोर दिया था। जनता ने उस नीति को पसन्द किया, यह ब्रिटिश चुनावों के परिणामों से स्पष्ट है। मजदूर दल ने शासन-सूत्र हाथ में लेने के बाद इंग्लैंड के सब से प्रमुख बैंक, बैंक आफ़ इंग्लैंड, को राष्ट्र की सम्पत्ति बना दिया है। कोयले की खानों तथा यातायात के प्रमुख साधनों को भी मजदूर दल ने व्यक्तिगत संपत्ति न रहने देकर राष्ट्र की संपत्ति बना दिया है। कोयले का व्यवसाय ब्रिटेन का अत्यंत प्रमुख व्यवसाय है। शस्त्रास्त्र तथा अन्य युद्ध-सामग्री के कल कारखाने भी सरकार अपने हाथ में ले रही है। बीमे के व्यवसाय पर भी सरकारी कब्जा हो जाय, इसका प्रबन्ध वह कर रही है। लाखों मकान बनाने आदि पुनर्निर्माण की अनेक योजनाओं का सरकार स्वयं संचालन कर रही है। 'न्यू टाउन्स बिल' के अनुसार सरकार नये नगर और गाँव बना सकेगी तथा पुराने नगरों का नव-निर्माण

कर सकेगी। लोहे और फौलाद के भारी व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण का बिल भी सरकार तैयार कर चुकी है। वह समुद्री तार (केबल) और बेतार के धंधों पर भी कब्जा कर रही है। नागरिक उड़ान कानून बना कर वह हवाई कम्पनियों का भी राष्ट्रीय-करण कर रही है। इन सब प्रवृत्तियों का ब्रिटिश सम्पन्न वर्ग ने पहले पहल बहुत विरोध किया और यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि इससे व्यावसायिक विकास में प्रगति अपेक्षाकृत शिथिल गति से होगी। लेकिन मजदूर सरकार को अपने कार्य-क्रम में जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त है। इसलिए वह साम्यवाद की दिशा में इतना बड़ा कदम उठाने में समर्थ हो गई है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि ब्रिटेन का मजदूर दल साम्य-वाद के सिद्धांत को अपनाता हुआ भी रूस का अंधानुकरण नहीं करना चाहता। ब्रिटेन के साम्यवादी नेता रूस की तरह पूँजीवाद के विरुद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाना चाहते। श्रेणी-संघर्ष के वे विरुद्ध हैं। वे शनैः शनैः वैधानिक मार्ग द्वारा सम्पत्ति के राष्ट्रीय-करण के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। पिछले दिनों ब्रिटेन की कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध फतवा देते हुए वहाँ की ट्रेड यूनियन काँग्रेस ने एक यह भी कारण बताया था कि कम्यूनिस्ट पार्टी को रूस से सदा प्रेरणा मिलती है और उसकी नीति का निर्धारण वे लोग स्वयं नहीं, बल्कि रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी करती है। ब्रिटेन के नेता इस नीति को स्वीकार नहीं कर सकते कि उनके कार्यक्रम आदि का निर्धारण कोई दूसरा देश करे। यह स्वाभाविक भी है।

अन्य देशों में—ब्रिटेन में उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण की जो प्रवृत्ति चल रही है, वही अन्य राष्ट्रों में भी है। फ्रांस की नई स्थायी सरकार ने जनवरी सन् १९४६ में बिजली के सब कारखानों को पूँजीपतियों के हाथ से लेकर देश की सम्पत्ति बनाने का निश्चय किया है। यूगोस्लेविया की सरकार ने, जिस पर रूस का प्रभाव

बहुत अधिक है, अगस्त १९४५ से सब खानों पर सरकारी कब्ज़ा कर लिया है। वहाँ शीशे और जस्ते की खानें अंगरेज़ पूँजपतियों के हाथ में हैं और ताँबे की खानों पर फ्रैंच पूँजीपतियों का अधिकार है। यूगोस्लेवियन सरकार के इस निश्चय से एक नई समस्या खड़ी हो गई है कि इन अंग्रेज़ और फ्रांसीसी पूँजीपतियों को मुआवज़ा मिलेगा या नहीं। पोलैंड की सरकार भी ऐसे ही नियम बनाने जा रही है।

भारत में—विभिन्न उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण की यह प्रवृत्ति केवल यूरोप में ही नहीं, आस्ट्रेलिया में भी फैल रही है। भारतवर्ष में भी यह प्रवृत्ति किसी तरह कम नहीं है। बम्बई के उद्योगपतियों की जिस योजना का ज़िक्र हम पिछले अध्याय में कर आये हैं, उसमें भी ज़मींदारी पद्धति को समाप्त करने की सिफ़ारिश की गई थी। काँग्रेस ने प्रान्तीय असैंबलियों के चुनाव में भी इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने की घोषणा की थी। मद्रास, बिहार और युक्त-प्रान्त की असेम्बलियों ने बहुमत से ज़मींदारी पद्धति समाप्त कर देने का निश्चय भी कर लिया है। और अब इन पर अमल होने जा रहा है। ज़मींदारी पद्धति के विरुद्ध बहुत समय से आन्दोलन चल रहा था और उसे समाप्त कर के वस्तुतः साम्यवाद की दिशा में एक बड़ा भारी क़दम उठाया गया है। रियासतों में भी ज़मींदारी प्रथा समाप्त हो रही है।

उद्योगधन्धों को भी देश की संपत्ति बनाने का आन्दोलन भारत में जारी है। विभिन्न शहरों में पहले बिजली कम्पनियाँ पूँजी-पतियों की होती थीं, लेकिन अब इन कम्पनियों पर म्यूनिसपल कमेटियाँ तथा कारपोरेशन और सरकारें अधिकार कर रही हैं। पंजाब-सरकार ने लाहौर की बिजली कम्पनी पर अधिकार कर लिया था। यू० पी० सरकार भी इस दिशा में कदम उठा रही है। दिल्ली और कलकत्ते की स्थानीय संस्थाओं ने बिजली व ट्राम कम्पनियों को,

ठेका समाप्त होने पर, सारा कारोबार अपने हाथ में कर लेने की सूचना दे दी है। भारत सरकार इस सम्बन्ध में पहले ही प्रयत्न कर रही थी। विविध प्रान्तों में जितनी रेलवे कम्पनियाँ थीं, उन सब के ठेके समाप्त होने पर वह उन्हें खरीदती जा रही है। इस तरह अब प्रायः सब रेलवे लाइनें कम्पनियों के हाथ से निकल कर सरकार के हाथ में आ गई हैं।

लारियों का व्यवसाय—रेलवे के साथ साथ पिछले कुछ वर्षों से लारियों का यातायात के रूप में प्रयोग बहुत बढ़ गया है। लारी-व्यवसाय युद्ध से पूर्व इतना अधिक बढ़ गया था कि रेलवे को उससे खतरा महसूस होने लगा था। यात्रियों और माल के यातायात में लारियाँ अपनी अनेक सुविधाओं के कारण रेलवे से सख्त मुकबला करने लगी थीं। सरकार की इस धन्धे पर दृष्टि जानी स्वाभाविक थी। पहले तो केवल रेलवे को लारियों के मुकाबले से होने वाली क्षति से बचाने के लिए यह प्रस्ताव किया गया कि रेलवे-लारी बोर्ड बनाकर पारस्परिक प्रति-स्पर्धा को रोका जाय और स्थान-स्थान पर रेलवे को भी लारी चलाने की अनुमति दी जाय, लेकिन पीछे से यह प्रवृत्ति बदल कर लारियों पर अधिकार करने की हो गई। इस संबन्ध में पंजाब, यू० पी० और मध्यप्रान्त आदि में जो नई योजनाएँ बन रही हैं, उनका आशय यह है कि लारी के व्यवसाय को चलाने वाली ऐसी कम्पनियाँ बनाई जावें, जिनमें प्रान्तीय सरकार, रेलवे तथा जनता की एक नियत अनुपात से पूँजी लगाई जावे। रेलवे केन्द्रीय सरकार का विषय है, इस तरह लारी व्यवसाय पर केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारों का नियंत्रण हो जायगा। यू० पी० के बहुत बड़े क्षेत्र में सरकारी लारियाँ चलती हैं। दिल्ली की बिजली कम्पनी सरकार के हाथ में आ गई है। दिल्ली में चलने वाली बसें भी अब सरकार के नियंत्रण में चल रही है। रिजर्व बैंक को सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है।

भारत सरकार की नई आर्थिक नीति के अनुसार रेलवे तथा युद्ध-सामग्री के बड़े-बड़े वर्कशाप अब सरकार की ही संपत्ति होंगे। भारत में अन्न-संकट को दूर करने के लिए खाद बनाने के बड़े-बड़े कारखाने खोलने की जो योजनाएँ बनी हैं, वे भी सरकार की ही संपत्ति होंगे। यू० पी० की असैम्बली में १९४६-४७ का बजट पेश करते हुए वहाँ के अर्थमंत्री ने यह घोषणा की थी कि सीमेंट व खेती के औजार बनाने के कारखाने सरकार स्वयं बनाने का विचार कर रही है। एक और प्रस्ताव द्वारा तो यू० पी० असैम्बली ने पूँजीवाद को समाप्त करने का सिद्धांत भी स्वीकार कर लिया है। इसमें कहा गया है कि असैम्बली का यह मत है कि समाज के हित के लिए यह आवश्यक है कि पूँजीवाद का पूर्ण विघटन हो। असैम्बली में यह विश्वास भी प्रकट किया गया है कि उत्पादन, विनिमय और वितरण के प्रमुख साधनों के समाजीकरण के लिए यथा-शीघ्र कार्रवाई की जाय। यह कब से अमल में आयगा इस बारे में निश्चित रूप से कुछ उल्लेख नहीं किया गया।

बिजली और नहरों की विशाल योजनाएँ सरकार को सब व्यवसाय अपने हाथ में लेने को प्रेरित कर रही हैं। ट्रैक्टरों द्वारा विशाल कृषि क्षेत्रों में खेती सामूहिक दिशा की ओर बड़ा भारी क़दम है। सिंदरी (बिहार) में खाद का कारखाना सरकार स्वयं बना रही है। इस्पात का एक बहुत बड़ा कारखाना सरकार द्वारा स्वयं खोलने की योजना बन रही है। पाकिस्तान से लाखों हिन्दुओं व सिखों के इधर आने पर सरकार ने व्यापार नियंत्रण, शिविर निर्माण, गृह निर्माण आदि की अनेक छोटी बड़ी योजनाएँ अपने हाथ में ले ली हैं।

भारत सरकार ने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के संबंध में बहुत विचार-विनिमय के बाद ८ अप्रैल १९४८ को एक प्रस्ताव द्वारा अपनी नीति स्पष्ट कर दी थी। इसमें कहा गया है कि जनता को

समृद्धिशील बनाने का दायित्त्व राष्ट्र पर है। शस्त्रास्त्र, गोला-बारूद और परमाणु शक्ति के उत्पादन और रेलवे यातायात के नियंत्रण पर केन्द्रीय सरकार का एकाधिकार होना चाहिये। कोयला, लोहा, इस्पात, वायुयान निर्माण, जहाज निर्माण, रेडियो सेट, टेलीफोन यंत्र और खनिज तेल इन उद्योगों पर सरकार का आवश्यक नियंत्रण और नियमन रहेगा। यद्यपि वर्तमान औद्योगिक कारखानों पर कब्जा करने का सरकार को अधिकार सदा ही रहेगा, फिर भी सरकार ने १० वर्षों के लिए इन उद्योगों को पनपने का अवसर देने का निर्णय किया है। इस अवधि की समाप्ति पर संपूर्ण विषय पर फिर से सोच विचार किया जायगा। साधारणतः सरकार द्वारा संचालित उद्योगों का शासन-प्रबंध एक कारपोरेशन द्वारा किया जायगा। विद्युत् शक्ति के उत्पादन और वितरण पर सरकार का अधिकार रहेगा। नमक, मोटर, बिजली, इञ्जनीयरिंग, भारी मशीनें, मशीनी औजार, उच्च प्रकार के रसायन, खाद और औषधियाँ, बिजली तथा रसायन संबंधी उद्योग, लोह रहित धातुएँ, रबड़ की वस्तुएँ, सूती तथा ऊनी कपड़ा, सीमेंट, चीनी, कागज, हवाई तथा समुद्री यातायात, खनिज पदार्थ और सुरक्षा संबंधी उद्योग ऐसे आधार भूत महत्त्वपूर्ण उद्योग हैं, जिनका केन्द्रीय सरकार द्वारा संयोजित तथा नियमित होना आवश्यक है।

भारत सरकार की यह नीति स्पष्टतः विभिन्न व्यवसायों के राष्ट्रीयकरण और सरकार द्वारा नियंत्रण की दिशा में बहुत भारी कदम है। इसमें बहुत से निजी उद्योगों को क्रमशः बन्द करने का सुझाव किया गया है, यद्यपि इन पर एकदम अधिकार नहीं किया गया। इस तरह पूँजीवाद और साम्यवाद में परस्पर समन्वय की नीति पर देश चल रहा है। आज जब देश की अत्यधिक उत्पादन और नवीन योजनाओं के विकास की अनिवार्य आवश्यकता है, तब समन्वय की नीति ही सर्वोत्तम मार्ग है।

असमानता दूर करने के प्रयत्न

युद्ध के बाद साम्यवाद की दिशा में जो कदम उठाये जा रहे हैं, उन सब के मूल में यह भावना विद्यमान है कि अमीर और गरीब के पारस्परिक भारी अन्तर को यथा-संभव कम किया जावे। इसके लिए निम्नलिखित उपाय काम में लाये जा रहे हैं—

१—बहुत से उद्योग-धन्धे सरकार स्वयं चलाने लगी है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

२—सार्वजनिक उपयोग के प्रायः सभी व्यवसाय—रेलवे, बिजली, पानी तथा यातायात के अन्य साधन सरकार स्वयं अपने हाथ में ले रही है।

३—उद्योगपतियों पर तरह तरह के नियंत्रण लगाये जा रहे हैं ताकि वे एक नियत परिमाण से अधिक लाभ न कमा सकें। एक नये बिल द्वारा ६ फीसदी से अधिक डिविडेंड न देने का नियंत्रण कम्पनियों पर लगाया जा रहा है।

४—मजदूरों के न्यूनतम वेतन नियत किये जा रहे हैं, ताकि मिल मालिक उनका शोषण न कर सकें।। उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, निवास आदि की जिम्मेवारियाँ भी मिलमालिकों पर डाली जा रही हैं, जिससे एक ओर मिल-मालिकों का लाभ कम हो, दूसरी ओर कारीगरों की जीवन-संबंधी आवश्यकताएँ अधिक से अधिक पूरी हों।

५—अप्रत्यक्ष करों को कम करके बड़ी आमदनी पर क्रमशः प्रत्यक्ष कर बढ़ाये जा रहे हैं। ब्रिटेन की भाँति भारत में भी उत्तराधिकार कर लगाने का सिद्धान्त स्वीकार किया जा चुका है। इसका अर्थ यह है कि किसी सम्पन्न व्यक्ति के मरने पर जब उसका पुत्र जायदाद का उत्तराधिकारी बने, तब जायदाद के अनुपात से उस पर अच्छी मात्रा में कर लगाया जावे। इसका उद्देश्य यह है कि अमीर आदमियों

की जायदाद का एक हिस्सा शनैः-शनैः सरकार के पास चला जाता रहे। ब्रिटेन में २००० पौं० से अधिक की जायदाद पर यह कर लगता है और अधिकाधिक जायदाद पर कर की दर भी बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि २० लाख की जायदाद पर नये कानून के अनुसार ७५ फीसदी तक कर लगता है। भारत की केन्द्रीय असैम्बली ने यह सिद्धान्त तो स्वीकार कर लिया है, लेकिन इसकी दरों आदि का अभी कोई निर्धारण नहीं किया। फ्रांस में हर एक नयी कम्पनी की पूँजी पर टैक्स लगाने का निश्चय किया गया है। युद्धकाल में भारत में व्यवसायों आदि पर अतिरिक्त लाभ कर ९३ फीसदी तक लगा दिया गया था।

इन सब साधनों से प्रत्येक देश की सरकार अमीर और गरीब के पारस्परिक अन्तर को यथा-संभव कम करने की कोशिश कर रही है।

विश्वव्यापी हड़तालें—साम्यवाद की दिशा में ये कदम बिना किसी संघष के नहीं उठाये गये। युद्धकाल में ही मजदूरों ने वेतन-वृद्धि आदि की माँगें शुरू कर दी थीं। और अमेरिका में बार बार हड़तालें शुरू भी की गईं, लेकिन शत्रु को जीतने के कार्य को सर्व प्रथम और अनिवार्य बताते हुए कानून के ज़ोर और देशभक्ति के नाम पर उन्हें सदा दबा दिया गया। थोड़ी बहुत माँगें महँगाई भत्ते के नाम पर जरूर पूरी की गईं, लेकिन इससे उन्हें संतोष नहीं हुआ। युद्ध समाप्त होते ही मजदूरों का दबा हुआ असंतोष भड़क उठा और प्रत्येक देश में व्यापक प्रभावकारी हड़तालों के रूप में प्रकट हुआ।

अमेरिका में—अमेरिका में लोहे के कारखानों, मोटरों की फ़ैक्टरियों, तेल के कूँओं, जहाजी कारखानों आदि प्रायः सभी धन्धों में युद्ध के समाप्त होते ही हड़तालों की जबरदस्त लहर चली। प्रायः हर एक धन्धे में लाखों मजदूरों ने हड़ताल कर दी या हड़ताल की धमकी दी। तेल की हड़ताल में ढाई लाख मजदूर शामिल थे। लिफ्टों

पर काम करने वाले न्यूयार्क के ११००० मजदूरों ने धमकी देकर १६ लाख न्यूयार्क-निवासियों को चिन्तित कर दिया था। एक अरब डालर प्रतिवर्ष कमाने वाले दर्जियों के संघ ने भी न्यूयार्क शहर में हड़ताल कर दी। जब कोयले की खानों में हड़ताल हुई, तो ५-६ सप्ताह बाद रेलों का चलना मुश्किल हो गया। स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई कि अमेरिका के प्रैजिडैंट मि० ट्रूमैन को यह आज्ञा देनी पड़ी कि सवारी गाड़ियाँ २५ फीसदी और एक सप्ताह बाद ५० फीसदी कम कर दी जावें। खाद्य तथा अनिवार्य जीवनोपयोगी पदार्थों के सिवा कोई चीज़ रेलों पर न लादी जाय और बहुत सी माल-गाड़ियाँ भी बंद कर दी जाँय। बिजली के उन कारखानों पर भी इस हड़ताल का भीषण प्रभाव पड़ा जो कोयले से चलते थे। शिकागो, फिलाडैल्फिया तथा वाशिंगटन आदि बड़े बड़े शहरों में बिजली दुर्लभ हो गई, सड़कों और गलियों में प्रायः अंधकार सा छा गया। अमेरिका में ९५ फीसदी रेलवे एंजिन कोयले से चलते हैं, ६२ फीसदी बिजलीघर तथा ५५ फीसदी अन्य कारखाने भी कोयले से चलते हैं। कोयलों की खानों के मालिकों का कहना था कि यदि हम मज़दूरों की माँग के अनुसार १८ सेंट प्रति घंटा उनका वेतन बढ़ा दें और प्रति टन कोयले पर एक टैक्स लेने का अधिकार मजदूर-संघ को दे दें, तो कोयले का लागत खर्च बढ़ जाने से कोयला महँगा हो जायगा और इस तरह न केवल कल-कारखानों के खर्च बढ़ जावेंगे, बल्कि रेलवे के किराये, बिजली की दर आदि सभी में वृद्धि करनी पड़ेगी। रेलवे के लाखों कारीगरों ने भी हड़ताल की धमकी दे दी। अन्त में, बहुत समय बाद किसी तरह समझौता किया गया और मजदूरियों में वृद्धि की गई।

भारत में—अमेरिका की यह लहर दूसरे देशों में भी फैली। आस्ट्रेलिया में नर्सों, छापनेवालों, खनक मजदूरों तथा बिजली-घरों में हड़ताल फैल गई। इंगलैंड में हज़ारों जहाजियों की जबर्दस्त

हड़ताल से हफ़्तों सारा विदेशी व्यापार ही बंद रहा। चीन और लंका तक में हड़ताल फैल गई। भारतवर्ष में तो १९४६ के पूर्वार्ध में हड़तालों का बहुत ज़ोर रहा। जगह जगह कपड़े की मिलों, कोयले की खानों, जहाज़ी कारखानों, प्रेसों आदि में हड़तालें हुईं। ट्राम-गाड़ियों, बिजली घरों, लारी ड्राइवरों के अतिरिक्त विविध प्रान्तों में सरकारी दफ़्तरों, बैंकों, प्राथमिक स्कूलों के हज़ारों अध्यापकों, पटवारियों और पुलिस के सिपाहियों तक ने अपनी अपनी माँगें स्वीकार कराने के लिए हड़ताल का अवलंबन किया। तमाम रेलवे लाइनों के कर्मचारियों ने २७ जून १९४६ से समस्त देश-व्यापी हड़ताल करने का नोटिस दे दिया। सारे देश में घबराहट फैल गई। दो तीन दिन पहले २४-२५ जून को समझौता हुआ और यह हड़ताल नहीं हुई। इसके बाद ११ जुलाई १९४६ से डाकखानों के निम्न कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। यह हड़ताल ७ अगस्त तक रही। इसमें लाखों डाकिये व मजदूर और सार्टर आदि सम्मिलित थे। इस तरह विविध स्थानों में हड़तालों का ज़ोर बढ़ा और इनके परिणाम-स्वरूप मज़दूरों ने वेतन में तथा महँगाई भत्ते में वृद्धि के अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ भी प्राप्त कर लीं। क़रीब दो साल बाद (१९४९ के प्रारंभ में) फिर रेलवे व डाकखानों के कर्मचारी हड़ताल की धमकी दे रहे हैं। दूसरे धंधों में भी यह प्रवृत्ति ज़ारी है।

हमें यह याद रखना चाहिये कि ये सब हड़तालें केवल आर्थिक कारणों से नहीं की जातीं। इनमें से अनेक हड़तालों का उद्देश्य विशुद्ध राजनीतिक होता है। कम्यूनिस्टों ने अपनी बलवृद्धि के लिए भी हड़तालें कराईं। भारत में आज सोशलिस्ट नेता भी इसी मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। आस्ट्रेलिया में अनेक हड़तालें केवल जावा के देशभक्तों की सहानुभूति में की गईं। अमेरिका में भी सरकारी दल को परेशान करके विरोधी दल की शक्ति बढ़ाने का उद्देश्य गुप्त रूप से काम कर रहा था। अधिकांश हड़तालों का उद्देश्य ज़रूर

आर्थिक रहा और इसमें संदेह नहीं कि मजदूरों को इनमें सफलता भी मिली। लेकिन हड़तालों से देश के कल-कारखानों को भारी नुकसान पहुँचता है, इसलिए प्रायः सभी देशों की सरकारें ऐसा क़ानून बनाने पर विचार कर रही हैं, जिससे अनावश्यक हड़तालों को रोका जा सके। इसके लिए हड़ताल करने से पूर्व सब मामला आवश्यक रूप से पंच के सुपुर्द करने का क़ानून बनाया जायगा।

काम के घंटों में कमी—मजदूर और किसान संबंधी दृष्टिकोण सभी देशों में बदल रहे हैं। मजदूरों की सुख-सुविधा के लिए जहाँ तरह तरह के क़ानून सब देशों में बन रहे हैं, वहाँ काम के घंटों के बारे में भी नये क़ानून बनाये गये हैं। भारतवर्ष में आज से कुछ साल पहले १० घंटे का दिन काम के लिए माना जाता था, फिर काम के घंटे ९ कर दिये गये और अब नये क़ानून द्वारा १ अगस्त १९४६ से काम के घंटे सिर्फ आठ कर दिये गये हैं। लेकिन इससे भी मजदूरों को संतोष नहीं हुआ। आस्ट्रेलिया में मजदूरों की यह माँग है कि काम के घंटे प्रति सप्ताह सिर्फ चालीस रहें। अपनी माँग को हड़ताल द्वारा तय कराने के बजाय उन्होंने कामनवैल्थ के आरबिट्रेशन कोर्ट में अपना दावा पेश किया है। उनका कहना है कि विधान के अनुसार मानवीय अधिकार उन्हें भी प्राप्त हैं और इस कारण उन्हें भी जीवन में उतना आनन्द जरूर मिलना चाहिए, जितना साधारण जनता के लिए आवश्यक है। और उस आनन्द का उपभोग करने के लिए उन्हें अतिरिक्त समय भी चाहिए। उनकी दूसरी दलील यह थी कि कम घंटे काम करने से उनमें जो तरोताजगी आयगी, उसके परिणाम-स्वरूप वे कम समय में भी अधिक चीज पैदा कर सकेंगे। पहले भी काम के घंटे ५४ से ४८ और ४८ से ४४ किये गये हैं, लेकिन उससे माल की पैदावार और आमदनी में कमी नहीं आई। अब भी मशीनों में अधिक सुधार हो जाने के कारण कम समय काम करने का माल की पैदावार पर कोई अंतर नहीं होगा। ४० घंटे

सप्ताह से उनका अर्थ है सप्ताह में दो दिन पूरी छुट्टी। अमेरिका व न्यूज़ीलैंड में भी इसके परीक्षण हुए हैं।

भारत में नई प्रवृत्तियाँ

स्वतंत्र भारत की सरकार मजदूरों की सुख सुविधा की दिशा में बहुत कदम उठा रही है। अप्रैल १९४८ में मजदूरों के लिए सामाजिक बीमे का कानून बनाया गया है। इसके अनुसार बड़े-बड़े कारखानों के ५ लाख मज़दूरों का बीमा किया जायगा। उन्हें डाक्टरी सहायता मिलेगी। नक़द बीमारी सहायता के अनुसार ५६ दिन तक आधा वेतन मिलेगा। स्त्रियों की मातृत्व संबंधी सहायता १२ सप्ताह तक १२ आने प्रतिदिन के हिसाब से मिलेगी। अशक्त होने पर, काम करते हुए चोट लगने या मृत्यु हो जाने पर आश्रितों को पेंशन आदि की सुविधायें मिलेगी। इसके लिए कारखानेदारों व मज़दूरों, दोनों, से चन्दा लेकर कोश स्थापित किया जायगा। पहले पाँच वर्षों तक इस योजना का दो तिहाई खर्च केन्द्रीय सरकार देगी। यह योजना अप्रैल १९४९ से अमल में आने लगेगी, ऐसी आशा है। काम की स्थिति में सुधार के लिए भी कानून बनाये जा रहे हैं। १० वर्षों में मज़दूरों के लिए १० लाख मकान बनाने की भी योजना बन चुकी है। मज़दूरों के न्यूनतम वेतन निर्धारित करने का कानून १५ मार्च १९४८ से अमल में आ गया है। उचित वेतन का निर्णय मिल-मालिकों, सरकार व मज़दूरों के प्रतिनिधियों की समिति करेगी।

भारतीय ट्रेड यूनियन में मज़दूरों का यह अधिकार स्वीकार कर लिया गया है कि वे अपने संघ बना सकते हैं, सामूहिक रूप से कारखानेदारों से सौदा कर सकते हैं। लेकिन वर्ग संघर्ष को यथा-संभव समझौते द्वारा रोकने के लिए त्रिदल संगठन की योजना को उसने पसन्द किया है।

भारत सरकार ने यह सिद्धान्त भी स्वीकार कर लिया है कि

कल कारखानों के कुल लाभ में से एक अंश पर मजदूरों का अधिकार है और इसलिए उसे लाभ का एक अंश जरूर मिलना चाहिये।

———

अध्याय ३

नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समस्याएँ

परस्पर सहयोग की अनिवार्यता—पिछले दो अध्यायों में हमने आर्थिक समस्याओं के दो पहलुओं पर विचार किया है—राष्ट्रीय और व्यक्ति रूप से नागरिक। विविध राष्ट्र अपने अपने व्यवसाय धन्धों को बढ़ाने के लिए क्या क्या योजनाएँ बना रहे हैं, अपनी राष्ट्रीय आय बढ़ाने के क्या क्या प्रयत्न कर रहे हैं यह हम पहले अध्याय में बता आये हैं। दूसरे अध्याय में हमने यह बताने का प्रयत्न किया है कि नागरिकों की व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए सरकारें कौन कौन से कदम उठा रही हैं। उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण इनमें से मुख्य है और मजदूरों की वेतन-वृद्धि तथा काम के घंटों में कमी आदि साधारण हैं। लेकिन संसार की आर्थिक समस्याएँ इससे बहुत अधिक उलझी हुई हैं। रेल, तार, जहाज तथा अन्य वैज्ञानिक साधनों के द्वारा संसार आज इतना परस्पराश्रित व परस्पर सबद्ध हो गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और आर्थिक व्यवस्था का परस्पर गहरा संबंध है। एक देश के किसी निर्णय का प्रभाव दूसरे देश पर पड़े बिना नहीं रहता। आज ऐसा संभव नहीं है कि एक देश बिलकुल रसातल को चला जावे और दूसरा अधिकाधिक संपत्तिशाली होता जाय। जैसे विश्व-शांति प्रत्येक देश के लिए मिल कर भोगने की चीज है, उसी तरह समृद्धि भी। अमेरिका के अत्यंत प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री सौमैंथो ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए एक जगह बताया है—"शांति की भाँति समृद्धि भी अविभाज्य है।

......दरिद्रता, जहाँ कहीं भी उसकी सत्ता हो, हमारे लिए खतरनाक सिद्ध होगी और हममें से प्रत्येक के कल्याण में बाधक होगी।...... हम जानते हैं कि किसी देश के आर्थिक जीवन का सूत्र संसार भर के आर्थिक जीवन से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। किसी एक प्रदेश में उस सूत्र का तार विच्छिन्न हो जाने दें तो समस्त विश्व का आर्थिक ताना-बाना बिखर जायगा।"

आज किसी एक देश को दूसरे देश से अलग किया ही नहीं जा सकता। इसीलिए आर्थिक समस्या भी बड़ी उलझन वाली और पेचीदी होगई है और वस्तुतः आज हमारी समस्त राजनीति का मूल केन्द्र भी आर्थिक स्वार्थ है। मध्यपूर्व का तेल साम्राज्यवादी राष्ट्रों के संघर्ष का केन्द्र बन गया है। अमेरिका और ब्रिटेन जैसे मित्रराष्ट्र भी आज केवल आर्थिक स्वार्थ के लिए परस्पर संघर्ष करते दीखते हैं। जर्मनी और जापान दोनों राष्ट्रों को कुचल देने की इच्छा मित्रराष्ट्रों में है, लेकिन फिर भी दूसरी ओर हम देखते हैं कि अमेरिका जहाँ ब्रिटेन के आर्थिक विकास के लिए उसे सहायता दे रहा है वहाँ जापान व जर्मनी के व्यावसायिक विकास में भी अमेरिका और रूस अपने अपने दृष्टिकोण से, मदद देने की योजनाएँ बना रहे हैं। इस अध्याय में हम ऐसी ही अन्तर्राष्ट्रीय उलझन की कुछ समस्याओं पर प्रकाश डालना चाहते हैं।

ब्रिटेन को अमेरिकन ऋण

अमेरिका की महत्त्वाकाँक्षाओं को इस युद्ध में ब्रिटेन ने जाग्रत कर दिया है। इन्हीं महत्त्वाकाँक्षाओं के परिणाम-स्वरूप आज वह संसार के सभी बाजारों पर छा जाना चाहता है। मध्यपूर्व और यूरोप के बाजारों में ही नहीं, चीन तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के द्वीपों में भी वह एकतंत्र राज्य चाहता है। परमाणुबम के लिए आवश्यक धातु यूरेनियम जहाँ से मिले, टिन जहाँ से सुलभ हो, वह वहीं अपना पैर

फैलाना चाहता है। पक्का माल जहाँ वह बेच कर खूब नफ़ा कमा सके वहाँ वह अधिकार करना चाहता है। युद्ध काल में उसने जो अड्डे सैनिक कार्यों के लिए लिये थे, अब वह उन पर सदा के लिए अधिकार चाहता है। ब्रिटेन उसके इस आर्थिक साम्राज्य के विस्तार का स्वागत नहीं करता दीखता। उधर अमेरिका भी इसे समझता है और इसलिए जब इंगलैंड ने उस से कर्ज माँगा, तब वहाँ कर्ज देने के विरुद्ध बड़े जोर से आवाज़ उठाई गई। करीब साल भर तक उसे परेशान करने के बाद कर्ज दिया भी गया, तो ऐसी शर्तों के साथ जिससे अमेरिकन आर्थिक हितों की पूरी तरह रक्षा हो सके।

इंगलैंड इस युद्ध में बहुत कंगाल हो चुका था। उसके पास न भोजन-सामग्री थी, न कपड़े। लाखों मकान, पुल, रेलवे स्टेशन तथा बड़ी-बड़ी इमारतें बमों द्वारा अग्नि-वर्षा से ध्वस्त हो चुकी थीं। सब कारखाने युद्ध-सामग्री बनाने में लगे थे। वे कोई माल तैयार करके एकदम विदेशों में निर्यात भी न कर सकते थे। उसने अमेरिका से प्रार्थना की कि वह उधार पट्टे की व्यवस्था को फिर से चालू करे अथवा उसे भारी मात्रा में कर्ज दे जिसे वह आगामी कुछ वर्षों में शनैः शनैः चुका देगा।

अमेरिकन अर्थ-शास्त्रियों ने उसकी माँग स्वीकार करने से पूर्व कुछ शर्तें पेश कीं। उनका कहना था कि एक ओर इंगलैंड हमें नकद पैसा देने में असमर्थता प्रकट कर रहा है, दूसरी ओर वह निर्यात व्यापार बढ़ाने तथा अन्य देशों में पूँजी लगाने के लिए उद्यत है। अमेरिका की यह भी शिकायत थी कि हमसे तो वह विशेष सुविधा चाहता है, लेकिन हमें वह कोई सुविधा देने को तैयार नहीं है। इंगलैंड अपने व्यापार के विस्तार के लिए साम्राज्य में रियायती नीति का आश्रय लेता है। इतने बड़े ब्रिटिश साम्राज्य में अमेरिका को कोई विशेष व्यापारिक सुविधा प्राप्त नहीं है। अमेरिकन तथा ब्रिटिश सरकार में चर्चा चलती रही कि किन शर्तों पर अमेरिका उसे रुपया

दे। आखिर खूब दौड़-धूप और विवाद के बाद दोनों राष्ट्रों में समझौता हो गया।

इस समझौते के अनुसार अमेरिका ब्रिटेन को ९३ करोड़ ७५ लाख स्टर्लिङ्ग देने पर सहमत हो गया। यह रुपया १९५१ के बाद चुकाया जाना आरंभ होगा। इस पर २ प्रतिशत सूद लगेगा। यदि किसी वर्ष इंगलैंड ब्याज या किश्त देने में असमर्थ होगा, तो वह अमेरिका को इसकी सूचना दे देगा। समझौते में इस असमर्थता की शर्तें भी तय कर दी गई हैं।

लेकिन इस के साथ ब्रिटेन को भी दो बातें माननी होंगी। पहली बात यह कि उसे अपने साम्राज्यांतर्गत प्रदेशों के साथ उस कर्ज की पुनर्व्यवस्था करनी पड़ेगी, जो स्टर्लिंग के रूप में ब्रिटेन ने युद्ध काल में लिया है। इस पुनर्व्यवस्था में तीन बातें हैं—

१—स्टर्लिंग कर्ज को चुका देना या डालरों में परिवर्तित कर देना,

२—शेष कर्ज को चुकता करने का समझौता और

३—उस कर्ज का भार लेनदार राष्ट्रों पर भी डालना, क्योंकि अमेरिका व ब्रिटेन की सम्मति में यह युद्ध केवल ब्रिटेन का न था बल्कि साम्राज्य के समस्त देशों के लिए भी था।

ब्रिटेन ने एक और महत्त्वपूर्ण घोषणा यह भी की है कि वह तट कर या विनिमय के रूप में कोई ऐसी नीति स्वीकार नहीं करेगा, जिससे अमेरिका के निर्यात व्यापार में कोई बाधा आये।

ब्रिटेन के अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि इस समझौते का परिणाम यह होगा कि संसार के आर्थिक संगठन का नेतृत्व अमेरिका के पास चला जाएगा, ब्रिटेन की स्थिति अत्यन्त हीन हो जायगी। ब्रेटन वुड्स समझौते के द्वारा उसे अंतर्राष्ट्रीय कोष का सदस्य भी बनना पड़ा है जो अमेरिका के हाथों का एक खिलौना है। सम्भवतः उसे फिर से गोल्ड स्टैंडर्ड को भी अपनाना पड़ेगा। परन्तु यह सब कुछ जानते हुए भी वह असहाय और विवश था। यही कारण है कि

ब्रिटेन का अनुदार दल इस समझौते का विरोधी होते हुए भी मत-विभाजन के समय उदासीन रहा।

इस समझौते से ब्रिटेन को सब से बड़ी हानि यह हुई है कि उसने साम्राज्य के रूप में संसार के एक विशाल प्रदेश के चारों ओर जो एक परकोटा बना रखा था, वह टूट गया है, और अब अमेरिकन माल बिना किसी विशेष बाधा के ब्रिटिश साम्राज्य में ब्रिटिश माल के मुकाबले में भी आ सकेगा। इसका अर्थ है सदा के लिए ब्रिटिश व्यापार पर एक करारी चोट। लेकिन कल की बजाय आज अधिक निकट और महत्त्वपूर्ण है। इस लिए उसे सब कुछ सहना पड़ा। यदि उसके पास यह विशाल साम्राज्य या उसका बाजार न होता, तो उस समय जो दुर्गति ब्रिटेन की होता, उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

लेकिन इस परिचय से केवल यह नहीं समझना चाहिए कि अमेरिका ने सिर्फ सौदेबाजी के रूप में ब्रिटिश साम्राज्य में अधिक से अधिक रियायतें लेकर उसे कर्ज दिया है। कर्ज देने में अमेरिका का एक और भी आर्थिक हित था। इंगलैण्ड ने अमेरिका से बहुत सा कर्ज लिया था। इसे चुकाने में वह असमर्थ था। इसे वह चुका सके, इसके लिए भी जरूरी था कि इंगलैंड के कल-कारखाने उन्नत हों, उसका व्यापार बढ़े और वह कुछ कमाने लायक हो। इंगलैंड अपनी व्यावसायिक उन्नति और पुनर्निर्माण के लिए कर्ज चाहता था। एक और बात भी थी। अमेरिका के कल-कारखाने भी तभी चल सकते हैं, जब कि उसका माल खरीदने वाले ग्राहक देश सम्पन्न हों। इंगलैंड की माल खरीदने अथवा कर्ज चुकाने की ताकत को बढ़ाने के लिए भी उसे समर्थ बनाना ज़रूरी था। यही कारण है कि अमेरिका के अर्थशास्त्रियों ने इंगलैंड को भूखा मरने देकर अपना एक प्रतिस्पर्धी नष्ट करने की अपेक्षा अपने हित में भी यह आवश्यक समझा कि उसे मित्र रूप से सहायता देकर पुनर्जीवित किया जाय

और इस तरह न केवल अपना पुराना कर्ज वापस लिया जाय, बल्कि आगे के लिए विदेशी व्यापार का चक्र चालू रखा जाय।

जो समस्या ब्रिटेन के साथ थी, वही समस्या अन्य राष्ट्रों के साथ थी। अमेरिका ने इस युद्धकाल में बहुत से राष्ट्रों को रुपया दिया था। वह सब वापस नहीं मिल सकता, जब तक वे देश अपने कल-कारखाने फिर से बनाकर अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत न कर लें। इसीलिए यूरोप के अनेक देशों ने पुनर्निर्माण के लिए अमेरिका से रुपया लिया है और उसने प्रसन्नता के साथ दिया है। अतः यह स्वाभाविक है कि कर्ज देते समय अमेरिका कुछ ऐसी शर्तें भी करा ले, जिनके अनुसार उसे व्यापार आदि की विशेष सुविधाएँ मिलें।

जर्मनी से क्षति-पूर्ति की समस्या

जर्मनी के साथ संधि के समय भी यही समया उपस्थित होगी। मित्रराष्ट्रों की यह स्वाभाविक इच्छा है कि वे अपनी भारी हानि या क्षति को पूर्ण करने के लिए जर्मनी पर भारी तादाद में जिम्मेवारी डालें। गत महायुद्ध के बाद जर्मनी पर जो रकम हरजाने के परिणामस्वरूप नियत की गई थी वह इतनी बड़ी थी कि पचासों वर्षों तक यदि वह प्रति मिनट हजारों मार्क देता रहता तो भी पूर्ण न होती। इस महायुद्ध में तो गत महायुद्ध से बीसियों गुना अधिक क्षति हुई है। यह सब क्षति पूरी कराने के लिए प्रत्येक राष्ट्र अत्यधिक उत्सुक है।

इस क्षति को पूर्ण करने के दो उपाय हैं। एक तो यह कि जर्मनी से नकद रकम ली जाय, और दूसरा यह कि उससे माल के रूप में क्षति-पूर्ति करवाई जाय। परन्तु इन दोनों अवस्थाओं में यह आवश्यक होगा कि जर्मनी के कल-कारखाने लगातार जारी रहें; क्योंकि तभी तो वह नकद या माल के रूप में कर्ज चुका सकेगा। लेकिन ब्रिटेन के पूँजीपतियों को इससे संतोष नहीं हो सकता। वे

पिछले ४० वर्ष से यह अनुभव कर रहे हैं कि जर्मनी उनके साथ व्यापारिक प्रति-स्पर्धा करके उनके व्यापार को छीनने की कोशिश करता है। इसलिए वह यह चाहते हैं कि जहाँ जर्मनी के सैनिक बल को सदा के लिए कुचल दिया जाय, वहाँ उसके व्यावसायिक आधार को भी सदा के लिए तबाह कर दिया जाय। परन्तु यह विचार जहाँ एक ओर अपने राष्ट्र के व्यवसाय के भविष्य के लिए बहुत अच्छा है, वहाँ इसका दूसरा पहलू भी है।

यदि जर्मनी के कारखाने समृद्ध रहेंगे, तभी वह इंगलैंड को क्षति पूर्ति के नाम पर कुछ दे सकेगा; अन्यथा वह एक कौड़ी भी देने से इनकार कर देगा। जब दे ही नहीं सकेगा, तो वह देगा ही कहाँ से ? एक साधारण दीवालिये से भी आप कुछ नहीं ले सकते।

प्रश्न केवल इतना ही नहीं है। यूरोप के आर्थिक चक्र में जर्मनी का एक विशेष स्थान है। यदि वह अपना कार्य न करे तो अन्य देशों के आर्थिक जीवन पर उसका प्रभाव पड़ेगा। क्षति-पूर्ति की शर्त को पूर्ण करने के लिए यह आवश्यक है कि जर्मनी निर्यात अधिक करे आयात कम; यह बहुत कठिन है। निर्यात के साथ साथ आयात का कुछ संतुलन अवश्य होना चाहिये। पर यदि आयात किसी तरह कम भी किये जा सकें तो इसका प्रभाव उन देशों पर पड़ेगा, जिनके आर्थिक जीवन का आधार ही जर्मनी के व्यवसायों को माल पहुँचाना है। बहुत से बलकान राष्ट्र जर्मनी को ही कच्चा माल भेज कर कमाते थे। जर्मनी के व्यवसाय नष्ट हो जाने पर वह देश तबाह हो जाएँगे। यह कहा जा सकता है कि जर्मनी के स्थान पर फ्रांस और इंगलैंड उनसे माल मगाएँगे, परंतु उस हालत में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा कम हो जाने से कच्चे माल की कीमतें भी कम हो जाएँगी। इस कारण जर्मनी के शत्रु बलकान राष्ट्रों का भी हित इसमें होगा कि जर्मनी का व्यवसाय नष्ट न हो।

इस प्रश्न का एक और भी पहलू है। यदि जर्मनी से क्षति-

पूर्ति के रूप में माल लिया जाता है, तो उसका प्रभाव अमेरिका व ब्रिटेन के व्यवसाय पर भी पड़ता है, जैसा कि गत महायुद्ध के बाद पड़ा था। जर्मनी से हरजाना लेने के लिए उसका माल अवश्य लेना चाहिये, लेकिन जहाँ यह माल एक ओर क्षति की रकम लेने वाले राष्ट्रों की जेब भरता है, वहाँ उनकी अपनी आमदनी के जरिये को भी रोक देता है। ये जर्मन माल लेंगे तो उनके अपने कारखाने क्या करेंगे ? उन देशों में स्वयं बेकारी फैलेगी। यह भी वह नहीं चाहते। इस तरह इस संधि के परिणाम-स्वरूप जर्मनी तो मारा ही जायेगा, विजेता राष्ट्र भी परेशान रहेंगे।

गत महायुद्ध के बाद फ्रांस ने जर्मनी की लोहे व कोयले की खानों पर अधिकार कर लिया था। आज भी ऐसा किया जा सकता है। परन्तु पिछली बार फ्रांस ने जर्मनी के सस्ते कोयले से ब्रिटेन की खानों का ही मुकाबला शुरु कर दिया था। अब यदि ब्रिटेन किसी तरह उन खानों पर अधिकार कर ले, तो जर्मन खानों पर अधिकार करने वाले ब्रिटिश पूँजीपति स्वयं अपने देश की खानों का मुकाबला करने लगेंगे।

यदि जर्मनी से कुछ वसूल करना भी हो, तो पहले उसे इस लायक तो बनाना ही पड़ेगा कि वह कुछ कमाने और देने लायक हो सके। इसके लिए जर्मनी को मित्रराष्ट्रों की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। उसके बग़ैर उसका खड़ा होना कठिन है। गत युद्ध के बाद भी अमेरिका ने जर्मनी को पर्याप्त सहायता दी थी। यह एक मनोरंजक बात है कि जर्मनी ने पिछले युद्ध के बाद क्षतिपूर्ति आदि के नाम पर कुल १७ अरब मार्क दिये, जब कि अमेरिका तथा ब्रिटेन आदि ने उसे कर्ज़ के तौर पर २७ अरब मार्क दिये थे। इस कर्ज़ का न तो मूलधन ही जर्मनी ने चुकाया, न व्याज ही। इसका अर्थ यह है कि उसने क्षतिपूर्ति की भारी रक़म तो दी नहीं, उलटे १० अरब मार्क और झपट लिये। यह भारी रक़म जर्मनी को इसलिए मिल गई

थी कि संपन्न जर्मनी की अपेक्षा दरिद्र और शोषित जर्मनी मित्र-राष्ट्रों के लिए ज्यादा नुकसानदेह था। सचमुच समस्त विश्व की समृद्धि के साथ ही किसी देश की आर्थिक अवस्था अच्छी रह सकती है।

रूस और ब्रिटेन आदि के आपसी स्वार्थ-संघर्ष के कारण जर्मनी के संबंध में अन्तिम नीति का निर्धारण होने में देर हो रही है, लेकिन यह निश्चित है कि जर्मनी को बिलकुल पंगु राष्ट्र बना देने का दुष्परिणाम विजेता राष्ट्रों को भी भोगना पड़ेगा। इसे वे खूब जानते हैं। जापान के पुनर्जीवन को तो अमेरिकन अधिकारी आवश्यक समझ कर उसके कल-कारखानों को फिर से खड़ा करने लगे हैं। ब्रिटेन और अमेरिका ने रूर के कारखानों को फिर चालू कर दिया है, यद्यपि रूस इसे भावी युद्ध की तैयारियों का नाम दे रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

व्यापार का अर्थ है चीजों की खरीद-बिक्री। लेकिन यह सिर्फ उन दो या अधिक देशों में जारी रह सकती है, जो एक दूसरे का माल खरीदते-बेचते हों। कोई देश अपना माल बिना बेचे सदा दूसरे देशों से माल खरीदता नहीं रह सकता, क्योंकि ऐसा करने से कुछ ही वर्षों में वह असमर्थ हो जायगा, उसकी खरीदने की ताक़त ही कम हो जायगी। इसीलिए प्रत्येक व्यवसाय-संपन्न देश भी यह चाहता है कि उसका ग्राहक समर्थ हो। बस, यही कारण है कि आज परस्पर स्वार्थों में तीव्र संघर्ष होते हुए भी व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक प्रवृत्तियों—जिनकी चर्चा हम पहले कर आये हैं—के मूल में भी यही रहस्य है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोश और बैंक का प्रयोजन यह है कि कोई राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से बिलकुल असहाय और निर्बल न हो जाय। अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य-सम्मेलन और पुनर्निर्माण संस्था का उद्देश्य भी यही है। किसी देश में कृषि-पदार्थों के मूल्यों में भारी

उतार-चढ़ाव का असर उसके समस्त व्यापार पर पड़ता है। इसीलिए यह योजना बनाई जा रही है कि प्रत्येक देश के प्रधान कृषि-पदार्थों का स्टाक एक अन्तर्राष्ट्रीय बोर्ड रखे और वह उनके न्यूनतम व अधिकतम मूल्य घोषित कर दे। यदि किसी देश में उनके मूल्य अचानक बहुत तेजी से बढ़ जावें, तो बोर्ड अपने स्टाक में से उस देश को अन्न भेजे, जिससे वहाँ मूल्य फिर कम हो जावें। इसके विपरीत यदि किसी देश में ऐसे पदार्थों के दाम बहुत कम हो जावें, तो उक्त बोर्ड एकदम वहाँ खरीद शुरू कर दे। इस तरह किसी देश के बाज़ार में ऐसा उतार-चढ़ाव नहीं होने पावेगा, जिसका परिणाम बहुत हानिकारक हो। इस योजना पर कोपन-हेगन कान्फ्रैंस में विचार किया गया है।

भारतवर्ष का स्टर्लिंग कोश

भारतवर्ष के सामने एक और आर्थिक समस्या है, जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस युद्ध में ब्रिटेन ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भारतवर्ष से की। यहाँ से अरबों रुपये का माल उसने लिया, लेकिन युद्ध की भारी जिम्मेदारियों के कारण वह इसका नकद मूल्य नहीं चुका सकता था। मूल्य चुकाने के लिए उसने यह क़दम उठाया कि उसने आठ अरब रुपये के करीब भारत को कर्ज़ दिया हुआ था वह सारा रुपया इस समय वसूल कर लिया। भारतीयों की यह माँग थी कि इस कर्ज़ का अधिकांश हम पर अन्याय से लादा गया है, इसलिए वह हम तब तक नहीं चुकावेंगे, जब तक कि उसकी न्याय-सगतता पर एक निष्पक्ष कमीशन विचार न कर ले। वह सारा रुपया माल के रूप में ब्रिटेन ने वसूल कर लिया। यदि इतना ही होता तो भी गनीमत थी। उसकी जरूरतें उतने माल से पूरी नहीं हुई, इसलिए उसने १३-१४ अरब रुपये का और माल भी भारत से उधार ले लिया। यह सब रुपया इंगलैण्ड में स्टर्लिंग-कोश के नाम

से जमा है। अब भारत इस रुपये की माँग कर रहा है।

बंबई के उद्योगपतियों ने अपनी योजना बनाते हुए यह विचार किया था कि इंगलैंड ने जो १४ अरब रुपया ले रखा है, उससे हम बड़ी बड़ी मशीनें लेंगे। लेकिन ब्रिटेन ने भारत को यह नहीं बताया कि वह यह रुपया कब और किस रूप में चुकायगा। साधारणतः ब्रिटिश अर्थशास्त्री इस रुपये के संबंध में जो सुझाव रख रहे हैं, उनसे भारतीय प्रसन्न नहीं हैं। ब्रिटेन के लिए इतनी बड़ी रक़म जल्दी चुका देना कठिन है। स्वभावतः वह यह चाहता है कि इस रक़म को कपड़े, छोटी छोटी मशीनें, साइकिल, टाइप राइटर आदि के रूप में वह शनैः शनैः चुकाता रहे। वह यदि अभी बिना मूल्य लिये कर्ज के रूप में माल दे, तो उसके व्यवसाय पर भारी असर पड़ेगा। लेकिन भारतीयों का ख़याल यह है कि यदि हम अपने कर्ज के बदले माल लेंगे, तो उससे देशी कल-कारखानों के मार्ग में एक प्रतिस्पर्धी खड़ा कर लेंगे। हमें तो बड़ी मशीनें चाहिएँ। इस सवाल पर स्वतन्त्र भारत की नई सरकार ने ब्रिटेन से चर्चा की और उसके परिणाम स्वरूप १ अरब १६ करोड़ पौं० के कर्ज में से ३० करोड़ पौंड दे चुका है। आगे की अदायगी पर विचार करने के लिए एक कमीशन ब्रिटेन ने फरवरी १९४९ में भारत में आया है।

जनसंख्या की समस्या

इस युद्ध से पूर्व एक बड़ी समस्या संसार के सामने जनसंख्या की समस्या थी। इस युद्ध ने उस पर भी प्रभाव डाल कर उसे एक नया रूप दे दिया है। इस समस्या पर कुछ विस्तार से विचार करने की जरूरत है।

ध्रुवीय प्रदेशों को छोड़ दें, तो संसार के स्थल-प्रदेश का क्षेत्रफल ३३ अरब एकड़ ठहरता है। परंतु खेती के योग्य जमीन १३ अरब एकड़ से अधिक नहीं है। सन् १६७० में संसार की आबादी ८० करोड़

थी, पौने दो सौ सालों में यह बढ़ कर करीब दो अरब हो गई। अब यह जनसंख्या प्रतिवर्ष दो करोड़ के हिसाब से बढ़ रही है। अनुमान के अनुसार एक शताब्दी में संसार की जनसंख्या दुगनी हो जायगी, इसलिए अर्थ-शास्त्री यह भय कर रहे हैं कि कुछ सदियों में ऐसी अवस्था आ जायगी कि प्रति मनुष्य एक एकड़ ज़मीन भी न मिलेगी।

विशाल क्षेत्रफल और कम आबादी वाले देशों के सामने जन-संख्या और भोजन की समस्या अभी पैदा नहीं हुई, लेकिन छोटे-छोटे क्षेत्रफल के घनी आबादी के देशों के लिए तो यह समस्या जीवन-मरण का प्रश्न बन गई है। जापान के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा।

जापान की आबादी १९३५ में ७ करोड़ १० लाख के करीब थी। इस दृष्टि से उसका स्थान संसार के विभिन्न देशों में पाँचवाँ था। चीन, भारत, रूस और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के बाद उसी की आबादी सब से अधिक थी। लेकिन इसके मुकाबिले में उसका क्षेत्र-फल अनुपात में बहुत ही कम है। नीचे की तालिका से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जायगा।

नाम देश	आबादी	क्षेत्रफल वर्गमील	आबादी प्रतिमील
आस्ट्रेलिया	६८,००,०००	३०,००,०००	२·२७
कैनेडा	१,१२,००,०००	३६,९५,०००	३
सं० रा० अमेरिका	१३ ००,००,०००	३०,००,०००	४०·३
फ्रांस	४,२०,००,०००	२,१२,६००	१९८
रूस	१८,००,००,०००	८१,४४,०००	२२
भारत (संयुक्त)	४०,००,००,०००	१८,०८,६८०	२२१·२
जापान	७,१०,००,०००	१,४७,०००	४७५
आरजैण्टाइना	१,१७,००,०००	१०,८०,०००	१०·८
चीन	४५,८०,००,०००	४२,७८,०००	१०७

जर्मनी	७,८०,००,०००,	२,१०,०००	३७१·४

उपर्युक्त आँकड़े एक ही बात को स्पष्ट करते हैं कि जहाँ आस्ट्रेलिया, कैनेडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस, आरजैण्टाइना में जन-संख्या बहुत थोड़ी है, वहाँ जर्मनी, भारत और खास कर जापान में देश के क्षेत्रफल को देखते हुए जन-संख्या बहुत अधिक है। उसकी जन-संख्या जिस अनुपात से बढ़ रही थी उसे देखते हुए यह जरूरी था कि उसे बसने के लिए जापान से भिन्न कोई विस्तृत देश मिले। जापानी अपने देश में रह नहीं सकते थे। वे दूसरे देशों में, जहाँ की आबादी बहुत कम है, जाकर बस सकते थे, लेकिन आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड ने १९०१ में, कैनेडा ने १९२७ में न्यू गायना ने १९३२ में, मलाया ने १९३३ में, आरजैण्टाइना ने १९३४ में, संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका व मैक्सिको ने १९३६ में जापानियों के आकर बसने पर पाबंदी लगा दी। जापानी जाते तो कहाँ, भ्रातृभाव का सब जगह अभाव था। लाचार होकर ही जापान ने चीन में अपने पैर फैलाने का प्रयत्न किया था।

जब रहने को ही मकान नहीं, तब खेती करके अपने लायक अन्न उपजाने की तो बात ही दूर रही। आस्ट्रेलिया में प्रति व्यक्ति १४१ एकड़ भूमि पर खेती हो सकती है, कैनेडा में ३० एकड़, अमेरिका में ८ एकड़ और जापान में सिर्फ़ १५ एकड़। विशेषज्ञों का कहना है कि कम से कम प्रति व्यक्ति ३·५ एकड़ भूमि पर खेती होनी चाहिये। इस तरह जनसंख्या के बढ़ाने का अर्थ है मकान और अन्न दोनों की कमी।

इंगलैण्ड के सामने भी यही समस्या है। वहाँ भी ५०५ व्यक्ति प्रतिवर्ग-मील रहते हैं। वहाँ भी जितनी जमीन है, उसकी सिर्फ़ २३ फ़ीसदी भूमि पर खेती हो सकती है। यही समस्या अन्य देशों के सामने आ सकती है। इंगलैंड और जापान के बाद जर्मनी की जन-संख्या प्रति वर्ग-मील सबसे अधिक थी। आखिर इस बढ़ती हुई

जन-संख्या की समस्या का कोई हल तो निकालना ही चाहिए। जापान और जर्मनी का कहना था कि अन्य यूरोपियन राष्ट्रों ने अपने क्षेत्र-फल से कई गुना विस्तृत प्रदेशों में अपना साम्राज्य फैला रखा है, इसलिए उनके निवास व भोजन की समस्या हल हो गई है, लेकिन हम क्या करें! हमारे लिए सब दरवाज़े बंद हैं। हम क्या बढ़ती हुई जन-संख्या को गला घोट कर मार दें?

सन्तति-निग्रह—संसार के अनेक विचारकों ने दुनियाँ की इस बढ़ती हुई भीषण जन संख्या पर भय प्रकट किया और उन्होंने कहा कि वह समय आने वाला है, जब कि विज्ञान के समस्त साधनों के बावजूद जनसंख्या के मुक़ाबले में पैदावार कम होगी और मनुष्य भूखों मरने लगेंगे। अभी तो कैनेडा, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया आदि नये बसे हुए प्रदेश यूरोपियन राष्ट्रों को भोजन दे रहे हैं, लेकिन जब वहाँ भी आबादी बढ़ जायेगी, तब क्या होगा। वे अपना अन्न यूरोप को न भेज सकेंगे। इसलिए विचारकों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि मनुष्य कम से कम सन्तान उत्पन्न करें। यूरोप के अनेक भागों में और विशेष कर फ्रांस में सन्तति-निग्रह का आन्दोलन चल पड़ा। सन्तति-निग्रह के कितने ही कृत्रिम साधन तैयार किये गये। संसार में इन कृत्रिम साधनों का प्रचार बहुत बढ़ गया। भारत में भी इनकी बिक्री कम नहीं होती।

फिर प्रतिक्रिया—कुछ समय तक यह आन्दोलन खूब चला, लेकिन प्रथम महायुद्ध और उसके बाद आने वाले युद्ध के भय ने फिर राष्ट्रों में संतति-निग्रह के विरुद्ध भावना शुरू की। युद्ध में विजय के लिए राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए जन-संख्या की वृद्धि आवश्यक है। जर्मनी में हिटलर ने फिर जन-संख्या बढ़ाने का आन्दोलन शुरू किया। विवाह संस्था का प्रचार फिर ज़ोरों से किया गया। हज़ारों विवाह सरकारी खर्चे से होने लगे। अविवाहितों पर कई प्रकार की पाबन्दियाँ लगा दी गईं। स्त्रियों को बहुत से कार्यक्षेत्रों से निकाल

दिया गया और गृहस्थ आश्रम व्यतीत करने को विवश किया गया। अधिक सन्तान पैदा करने के लिए इनाम और मासिक सहायता के प्रलोभन दिये गये। इटली में भी इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा और जापान में भी यह आन्दोलन जारी हुआ। युद्ध के बाद रूस ने इस दिशा में और भी जोर से प्रयत्न किया है। उसने अधिक से अधिक सन्तान पैदा करने पर प्रति बालक इनाम और मासिक व्यय देने की घोषणा की है। जो माता जितनी ज्यादा संतान पैदा करेगी, उसे वैसे ऊँचे खिताब भी दिये जायेंगे।

अन्य उपाय—जन-संख्या कम करने के लिए प्रकृति और मनुष्य स्वयं भी जाने या अनजाने प्रयत्न कर बैठते हैं। बीमारी-महामारी समय समय पर फूट कर करोड़ों आदमियों को नष्ट करती रही है। यूरोप ने महामारियों पर विजय पा ली है, लेकिन भारत अभी तक महामारियों और दुर्भिक्षों का शिकार है। १७९३ से १९०० तक पृथ्वी भर में युद्धों से ५० लाख से अधिक आदमी नहीं मरे, पर मि० डिग्बी के कथनानुसार इसी अरसे में भारत में सवा दो करोड़ आदमी भूख से मर गये। भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक उपद्रवों से भी कभी कभी काफ़ी लोग मर जाते हैं। यदि बाढ़ें और युद्ध आकर आबादी को न रोकते, तो यह निस्सन्देह था कि चीन की आबादी वहाँ के लिए समस्या बन जाती। मनुष्य अपने स्वार्थ-संघर्ष के कारण जब युद्ध करता है तब उसकी वेदी पर लाखों मनुष्यों की बलि दे दी जाती है। पिछले दोनों महायुद्धों में कई लाख सैनिक मर गये या अपाहिज होकर संतानोत्पत्ति में असमर्थ हो गये।

रोग, जलप्रलय और युद्ध आदि दैवी तथा मानवी आपत्तियों को रोकने के लिए मनुष्य प्रयत्नशील है। तब जनसंख्या की यह समस्या कैसे हल की जाय? ऊपर विभिन्न देशों की जनसंख्या की तालिका देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज भी आस्ट्रेलिया, कैनेडा, सोवियत संघ, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और

आरजैण्टाइना आदि ऐसे विशाल भू-प्रदेश हैं, जहाँ आबादी की घनता बहुत कम है। इसलिए अन्तराष्ट्रीय दृष्टि से इस समस्या का एक ही हल है कि ऐसे प्रदेशों में बाकायदा एक योजना के अनुसार नई बस्तियाँ बसाई जावें और वहाँ उसके समीपवर्ती घनी आबादी के देशों से नियत संख्या में नागरिकों को जाकर बसने की आज्ञा दी जावे। इस तरह विभिन्न देशों की आबादी को करीब एक समान करने की योजना अंतर्राष्ट्रीय संघ बना सकता है।

शरणार्थियों का प्रश्न—इसी समस्या से मिलती जुलती एक समस्या और भी है। और वह है यहूदियों तथा शरणार्थियों की। यहूदियों का अपना देश नहीं है, उन्हें कहाँ बसाया जाय? उन्होंने फिलस्तीन में अपना राज्य 'इजराइल' बलपूर्वक स्थापित कर लिया है, उसे बहुत सी सरकारों ने स्वीकार भी कर लिया है। युद्ध काल में विविध कारणों से करीब चार करोड़ मनुष्य अपने अपने देश छोड़ कर दूसरे देशों में जा बसे थे या जा बसने पर विवश हुए थे। उन्हें फिर अपने देशों में भेजने, उन्हें घरबार देने तथा उनका जीवन-क्रम, उनका कारोबार पूर्ववत् व्यवस्थित करने के लिए भी कम परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। यूरोपियन देशों का सीमा-विभाजन कृत्रिम है। वहाँ एक देश में ऐसे क्षेत्र सम्मिलित कर लिये गये हैं, जिनमें विदेशी जातियों बड़ी संख्या में बसती है, जो सदा किसी न किसी संकट का कारण बन जाती है। उनका क्या किया जाय? रूस के प्रभाव में आकर जैकोस्लोवेकिया की नई सरकार ने अपने एक प्रांत सुडेटनलैंड से छः लाख जर्मनों को निकालने का निश्चय किया। इसी तरह की समस्याएँ स्थान स्थान पर पैदा हुईं। पोलैंड में जर्मन लाखों की संख्या में पहले से बसते आ रहे हैं। क्या उन्हें वहाँ से निकाल दिया जायगा? दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका में बहुत से भारतीय बसते हैं, जिनके पूर्वजों ने उन प्रदेशों को बसाने और समृद्ध करने में विशेष भाग लिया था। अब वहाँ की सरकारें उन्हें निकालना

चाहती हैं। ऐसे प्रश्न भी अंतर्राष्ट्रीय संघ के सामने उपस्थित होंगे। दक्षिणी अफ्रीका के विरुद्ध तो अंतर्राष्ट्रीय संघ में मामला पेश ही है।

इस समस्या का समाधान करते समय कुछ विचारक यह परामर्श दे रहे हैं कि जिन देशों में प्रकृति उदार है और व्यावसायिक उन्नति की बहुत गुंजाइश है, वहीं अधिक आदमी बसाने चाहिएँ। इसके विपरीत जिन देशों में प्रकृति ने जीवन-निर्वाह के साधन कम दिये हैं, वहाँ आबादी कम रहनी चाहिए अथवा प्रकृति-समृद्ध देशों को इसके लिए विवश किया जाय कि वे ऐसे देशों को एक नियत मात्रा तक अवश्य कच्चा माल भेजें। इस हल में सब से बड़ी बाधा है देशों की संकुचित राष्ट्रीयता तथा वर्ण-पक्षपात की। गोरे देश यह नहीं चाहते कि वहाँ एशियाई आकर बसें। इसी वर्ण-द्वेष के कारण ही जापानियों को अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड में बसने की इजाजत नहीं दी गई, और अफ्रीका में भारतीयों पर तरह-तरह के अत्याचार किये जा रहे हैं। यही सब देख कर कुछ विचारक यह भी कल्पना करने लगे हैं कि वह दिन दूर नहीं है, जब कि संसार में श्वेत और अश्वेत जातियों में जोरदार संघर्ष होगा।

भारत के विभाजन के कारण यहाँ जो शरणार्थियों की समस्या पैदा हो चुकी है, इस पर हम पहले प्रकाश डाल चुके हैं।

———

पाँचवाँ भाग

अध्याय १

विज्ञान की नई दुनियाँ

आज की दुनियाँ और आज से दो तीन सदी पहले की दुनियाँ में जमीन आसमान का फर्क है। दुनियाँ बिलकुल बदल गई है। यदि १६ वीं सदी का कोई व्यक्ति आज की दुनियाँ को देखे, तो वह सचमुच आश्चर्य-सागर में डूब जायगा। आज की राजनीतिक और सामाजिक विचार-धाराएँ तो पहले से भिन्न हैं ही, हमारा जीवन क्रम और भी अधिक बदल गया है। इस महान् क्रान्तिकारी अंतर का श्रेय मनुष्य की वैज्ञानिक आविष्कारक प्रतिभा को है। यह रेलगाड़ी, ये मोटरें, यह तार, यह ग्रामोफोन या रेडियो, ये बड़े-बड़े कल कारखाने, १०००—१५०० मील प्रति घंटा की चाल से चलने वाले वायुयान, पहले नहीं थे। पहले मनुष्य गाँवों में रहता था। सादा खाना, सादा कपड़ा और हाथ से मेहनत, उसका जीवन था। अब वह अपने घर बैठा-बैठा लंदन या न्यूयार्क का गाना सुनता है, या अपनी बात सुना सकता है, बैठे बैठे बटन दबा कर प्रकाश कर लेता है, उसके कमरे में पंखा स्वयं चलने लगता है, यदि चाहे तो प्रातःकाल अमृतसर से दिल्ली या अंबाला जाकर अपना काम समाप्त करके उसी दिन वापस लौट आता है। एक मशीन दिन भर में

पचासों गज कपड़ा उसके लिए बुन देती है, एक कारखाना घंटे में एक बड़ी सी मोटर तैयार कर देता है। यह सब केवल विज्ञान का वरदान है।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। ज्यों-ज्यों मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती गई, त्यों-त्यों वह अपनी प्रतिभा और बुद्धि के बल पर नये आविष्कार करता गया। आज हम जो संसार देख रहे हैं वह कुछ वर्षों में नहीं बना। पिछली कई सदियों से वैज्ञानिक अत्यन्त धैर्य व साधना से प्रकृति को वश में करने की चेष्टा कर रहा है। इस महान् प्रयत्न में उसने न जाने कितना त्याग किया। उसके अपूर्व बलिदान व आत्मोत्सर्ग, अनर्थक लगन, तपस्या व साधना और उसकी असाधारण प्रतिभा का परिणाम आज की दुनियाँ है। विज्ञान ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की है। भौतिक विज्ञान, रसायन, चिकित्सा, ज्योतिष, भूगर्भ विद्या आदि सभी क्षेत्रों में आज क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका है।

विज्ञान-वेत्ता यों तो शान्तिकाल में भी अपनी मूक-साधना में रत रहते हैं, किन्तु युद्ध-काल की आवश्यकताएँ उन्हें एक विशेष उद्देश्य से, जिसमें देशप्रेम की स्फूर्ति भी रहती है, नये से नये आविष्कार करने के लिए प्रेरित करती हैं और यही कारण है कि जो वैज्ञानिक उन्नति बीस-पच्चीस वर्षों के परिश्रम से भी नहीं हो पाती, वह युद्ध के चार-पाँच वर्षों में अनायास ही हो जाती है। यही कारण है कि बीसवीं सदी के दो युद्धों के बाद संसार इस दृष्टि से बहुत आगे बढ़ गया है।

पदार्थ और शक्ति

वैज्ञानिकों के कथनानुसार इस सृष्टि का निर्माण पदार्थ और शक्ति के सम्मिश्रण से हुआ है। पदार्थ स्वयं जड़ होता है। वह स्वयं किसी नई अवस्था को प्राप्त नहीं करता। किसी शक्ति से ही उसमें

गति लाई जा सकती है। और उसके रूप या गुण में परिवर्तन किया जा सकता है। लोहे का टुकड़ा जहाँ रखा है, वहीं उसी रूप में पड़ा रहता है। बाहरी शक्ति से उसका रूप भी बदला जा सकता है और उसे स्थानान्तरित भी किया जा सकता है। संसार के तमाम पदार्थ— छोटे से तिनके से लेकर यह विशाल पृथ्वी, ये अनगिनत तारे और यह महान् प्रचण्ड सूर्य—सभी पदार्थ की रचना हैं। पदार्थ एक ऐसी वस्तु है, जिसे हम स्पर्श कर सकते हैं, जो भार रखता है, स्थान घेरता है और अपने आपको ठोस, द्रव, तथा गैस इन तीन रूपों में बदल लेता है। परन्तु इस पदार्थ को नया रूप देने वाली, उसमें जान डाल देने वाली या उसे गति देने वाली शक्ति ही है। एक खड़ी हुई मोटर या रेलगाड़ी पर बच्चा भी चढ़ जाता है लेकिन जब शक्ति के प्रभाव से मोटर या रेलगाड़ी तेज़ चल रही हो, तब उसके पास जाने का साहस अत्यन्त बलवान् मनुष्य भी नहीं कर सकता। एक बरतन में पड़ा पानी कोई विशेषता नहीं रखता, लेकिन जब वही भाप बन जाता है, तो उसकी शक्ति से बड़ी से बड़ी रेलगाड़ी चलने लगती है।

शक्ति—शक्ति कई प्रकार की होती है। भौतिक, रासायनिक और जीवन शक्ति। वैज्ञानिकों ने इन तीनों शक्तियों की सहायता से विविध क्षेत्रों में महान् वैज्ञानिक उन्नति की है। मनुष्य हो, या अन्य प्राणी, वृक्ष हों या छोटी छोटी वनस्पति, सब जीवन-शक्ति से पैदा होते हैं, बढ़ते हैं और चरम विकास को प्राप्त होते हैं। पदार्थों को रासायनिक शक्ति रूपान्तरित कर देती है, उनके गुण बदल देती है और उनमें नई जान सी डाल देती है। भौतिक शक्ति के भी पाँच भेद किये जा सकते हैं—यांत्रिक शक्ति, ताप शक्ति, प्रकाश शक्ति, विद्युत शक्ति और चुम्बक शक्ति। संसार में हम जितने बड़े बड़े आविष्कार देखते हैं, सब इन्हीं शक्तियों की कृपा है। बड़े-बड़े कल कारखाने ताप शक्ति के बल पर चलते हैं। रेलगाड़ियों और बड़े-बड़े

जहाजों को यही ताप शक्ति चलाती है।

सूर्य—वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि समस्त शक्ति का मूल उद्गम सूर्य है। संसार के अन्य तारों की तरह सूर्य भी एक गोला है, यद्यपि इसका क्षेत्रफल बहुत अधिक है। इसका व्यास ८ लाख ६५ हजार मील है। यह कितना बड़ा है इसका हम इसी से अनुमान कर सकते हैं कि इसके विशाल परिमाण में १० लाख से अधिक पृथ्वियाँ समा सकती हैं। लेकिन इसकी घनता पृथ्वी की अपेक्षा बहुत कम है। इसी कारण जहाँ इसका परिमाण पृथ्वी से १० लाख गुना है, वहाँ इसका भार केवल ३,३०,००० गुना ज्यादा है। यह सूर्य एक आग का गोला है, जिसकी सतह पर हजारों मील ऊँची लपटें धू धू करती हुई अपना तांडव किया करती हैं। सूर्य की ऊपरी तह पर तापमान ७००० डिग्री का है। सूर्य के अन्दर तापमान अधिकाधिक बढ़ता जाता है और १० लाख से अधिक डिग्री तक पहुँच जाता है। इस विशाल सूर्य के अन्दर प्रतिक्षण प्रचंड उथल पुथल होती रहती है और कल्पनातीत संख्या में परमाणु परस्पर टकराते रहते हैं।

यही विशाल सूर्य संसार की समस्त शक्ति का केन्द्र और प्राणदाता है। यह अपने निर्माण-काल से आज तक निरंतर प्रतिक्षण प्रकाश और ताप के रूप में अनंत शक्ति बाहर फेंकता रहा है और न जाने कितने अरबों साल तक इसी तरह समस्त विश्व को—अपने सौर परिवार को—अनंत शक्ति प्रदान करता रहेगा। सूर्य की विशाल सतह का प्रत्येक इंच प्रतिक्षण ५० हार्स-पावर जितनी शक्ति बाहर फेंकता है। यह शक्ति उसमें कहाँ से आती है ? यदि वह औक्सीजन गैस में जलते हुए तप्तपिंड की तरह होता, तो अब तक ठंढा होकर शक्ति-हीन हो जाता—ठीक उसी तरह, जिस तरह आग में रख कर तपाया हुआ लोहा बाहर निकालने पर कुछ समय में ठंढा हो जाता है। यदि सूर्य भी केवल तप्त-पिंड होता तो यह भी

कभी का ठंडा हो गया होता। फिर सूर्य को तपाने के लिए अनंत ईंधन की आवश्यकता होती! यदि कुल सूर्य बढ़िया पत्थर के कोयले का बना हुआ होता तो उसे, जितनी गरमी सूर्य देता है उतनी पैदा करने के लिए, कुल डेढ़ हज़ार वर्ष में गल कर भस्म हो जाना पड़ता। परन्तु इतिहास हमें बताता है कि सूर्य लाखों वर्षों से समान भाव से चमकता चला आ रहा है। वस्तुतः विभिन्न वैज्ञानिकों ने इस संबंध में तरह तरह की कल्पनाएँ की हैं कि सूर्य में इतनी प्रचंड शक्ति कहाँ से आती है।

शक्ति का उद्गम—सन् १८४९ में एक वैज्ञानिक ने यह कल्पना की थी कि सूर्य पर लगातार उल्काओं की वर्षा होती रहती है, इसी से सूर्य गरम रहता है। उल्का वे आकाशीय पिंड हैं, जो हमें रात्रि के समय गिरते हुए तारे के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। विश्व में असंख्य उल्काएँ होंगी। यह सिद्धान्त साधारणतः समझ में आने लगा है; लेकिन दूसरे गणितज्ञ वैज्ञानिकों ने गणना से यह परिणाम निकाला है कि यदि पृथ्वी के तोल के बराबर उल्काएं सूर्य में जाकर गिरें, तो केवल १०० वर्ष के लिए ही गरमी उत्पन्न हो सकेगी। यदि वस्तुतः इतनी उल्काएँ विश्व में होतीं, तो पृथ्वी पर भी प्रत्येक रात्रि को बराबर उल्काओं की वर्षा होती रहती। उन गणितज्ञ वैज्ञानिकों ने यह भी कहा कि यदि वस्तुतः इतनी उल्काएँ सूर्य पर गिरा करतीं, तो उनके कारण सूर्य तीन करोड़ वर्षों में दुगना बड़ा हो जाता।

सन् १८५३ में प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक हैल्महोल्ट्ज़ ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि सूर्य में सिकुड़ने के कारण गरमी उत्पन्न होती है। उसका सिद्धांत यह था कि सूर्य गैस के रूप में है और आकर्षण के कारण बराबर अधिकाधिक संकुचित होता जा रहा है। इसलिए उसमें बराबर गरमी पैदा होती रहती है। यही कारण है कि सूर्य लगातार ठंढा होता जा रहा है और अरबों साल बाद सूर्य भी

पृथ्वी की भाँति एक शीतल ठोस पदार्थ बन जायगा। परन्तु तीस वर्ष बाद लार्ड कैल्विन ने इस सिद्धांत को असत्य बताते हुए कहा कि इस क्रिया में केवल इतना ही ताप उत्पन्न होगा, जितना सूर्य दो ढाई करोड़ वर्ष में बिखेरता है और यह निश्चित है कि सूर्य अरबों वर्षों से चमकता आ रहा है।

इलेक्ट्रोन और प्रोटोन—इस प्रकार वैज्ञानिक बहुत दिनों से चक्कर में पड़े हैं। अब भी इसका ठीक-ठीक पता नहीं चला कि सूर्य में गरमी कहाँ से आती है। परंतु प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टाइन के सापेक्ष्यवाद से यह मालूम होता है कि पदार्थ और शक्ति दोनों एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। यदि उद्रजन का एक अणु शक्ति में बदला जा सके, तो वह शक्ति इतनी प्रचंड होगी कि उससे प्रशांत महासागर के सारे जहाज ६ मास तक चलाये जा सकते हैं। राई के बराबर कोयले से, यदि वह सापेक्ष्यवाद के इस सिद्धांत से शक्ति में परिवर्तित हो सके, तो हजारों मन कोयले के जलने के बराबर शक्ति उत्पन्न होगी। वस्तुतः प्रत्येक परमाणु अनन्त शक्ति का केन्द्र है। उसमें असंख्य विद्युत्-आविष्ट प्रोटोन और इलेक्ट्रोन हैं। प्रत्येक परमाणु में स्थित ऋण विद्युत् को इलैक्ट्रोन और धन विद्युत् को प्रोटोन कहते हैं। ये दोनों आपस में मिलते नहीं और एक, दूसरे के चारों ओर इस तरह घूमता रहता है, जैसे सूर्य के चारों ओर पृथ्वी। सूर्य और पृथ्वी में परस्पर आकर्षण होते हुए भी जैसे वे मिलते नहीं, उसी तरह प्रोटोन और इलैक्ट्रोन भी परस्पर नहीं मिलते। इलैक्ट्रोन प्रोटोन से १००० गुणा बड़ा है और एक परमाणु में कई लाख इलैक्ट्रोन भरे जा सकते हैं। यही इलक्ट्रोन प्रोटोन के चारों ओर बहुत तीव्र गति से घूमते रहते हैं। इलैक्ट्रोन और प्रोटोन साधारण ताप में कभी परस्पर टकराते नहीं और प्रत्येक पदार्थ की अपनी अपनी सत्ता बनी रहती है। लेकिन सूर्य की प्रचंड भट्ठी में, जहाँ करोड़ों डिग्री गरमी है, ये परमाणु अपने घटकों में—एलैक्ट्रोनों और प्रोटोनों में—संघर्ष को नहीं बचा

सकते। वे बहुत तीव्रता के साथ परस्पर संघर्ष करते हैं और टूट जाते हैं। उनके टूटने से अनन्त शक्ति पैदा होती है। सूर्य में यह क्रिया निरंतर होती रहती है और इस कारण वह शक्ति का असीम और अनन्त भण्डार है। इस कल्पना के अनुसार भी सूर्य की शक्ति प्रतिक्षण कुछ न कुछ कम होती रहती है, लेकिन वह कमी इतनी नगण्य है कि उसका सूर्य पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। सूर्य का विशाल परिमाण और असंख्य टन भार है, उसे शीतल होने में अभी अरबों बरस की देर है।

सूर्य की शक्ति सुरक्षित रहने का एक और भी बड़ा कारण है। जिस तरह एक वृत्त में कहीं से प्रारंभ होकर रेखा फिर उसी वृत्त में आकर मिल जाती है, उसी तरह सूर्य के प्रकाश की रेखा हजारों बरसों में इस विशाल विश्व का घेरा समाप्त करके फिर उसी सूर्य में आकर मिल जाती है। उसी प्रसिद्ध आइंस्टाइन के मतानुसार आकाश मण्डल का व्यास ५,००,००० संख मील है। इस घेरे को पूरा करने के लिए प्रकाश की किरण को ८४ अरब साल लगेंगे। इस तरह प्रकाश की एक किरण ८४ अरब साल बाद सूर्य में वापस आ जाती है। इतने लम्बे भ्रमण और मार्ग के संघर्ष के कारण कुछ शक्ति तो घट ही जाती है। लेकिन उसका एक बड़ा अंश फिर उसी सूर्य में वापस आ जाता है। इस तरह सूर्य की शक्ति में अत्यंत नगण्य कमी हो पाती है।

सौर मण्डल—सूर्य हमारी पृथ्वी से नौ करोड़ मील दूर है। यह पृथ्वी उसके चारों ओर चक्कर लगाती है, जो एक वर्ष या ३६५ दिनों में पूरा होता है। पृथ्वी की भाँति आठ और ग्रह—बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो—हैं। ये सब क्रमशः सूर्य से अधिकाधिक दूर हैं। सूर्य के मुकाबले में ये ग्रह बहुत छोटे हैं। यदि सूर्य को हम फुटबाल मान लें, तो बृहस्पति को एक बड़ा नीबू, शनि को अखरोट, यूरेनस और नेप्च्यून को देशी बेर, शुक्र और पृथ्वी को मटर का दाना तथा मंगल और बुध को मूँग के दाने के

बराबर मान सकते हैं। ये सब ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते रहते हैं। पृथ्वी यह चक्र एक वर्ष में पूर्ण करती है तो बुध सूर्य के बहुत पास होने के कारण केवल तीन मास में ही चक्र पूरा कर लेता है। शुक्र सात मास में, मंगल लगभग दो वर्ष में, बृहस्पति १२ वर्ष में, शनि साढ़े उनतीस वर्ष में, यूरेनस ८४ वर्षों में और नेपच्यून तथा प्लूटो क्रमशः १६५ और २४९ वर्षों में सूर्य की एक बार प्रदक्षिणा कर लेते हैं। इन ग्रहों के सूर्य-प्रदक्षिणा में इतना अधिक अन्तर इस कारण है कि ये सब सूर्य से क्रमशः अधिकाधिक दूर हैं। एक वैज्ञानिक ने कल्पना की है कि यदि मनुष्य ३०० मील प्रति घंटे की चाल से वायुयान द्वारा इन तक पहुँचने के लिए बिना एक क्षण ठहरे यात्रा करे तो वह चन्द्रमा तक ३० दिनों में, शुक्र तक ९ वर्षों में, मंगल तक १२ वर्षों में, बुध तक १८ वर्षों में, सूर्य तक ३५ वर्षों में, बृहस्पति तक. १२९ वर्षों में, शनि तक २९६ वर्षों में, यूरेनस तक ६११ वर्षों में, नेपच्यून तक १०७१ वर्षों में और प्लूटो तक १२५७ वर्षों में पहुँच सकेगा। ये सब ग्रह एक सौर परिवार के सदस्य हैं, जिन्हें सूर्य से निरंतर प्रकाश मिलता है। वैज्ञानिकों ने इस सौर परिवार के संबंध में एक और भी मनोरंजक कल्पना की है। यदि पृथ्वी का वज़न एक सेर मानें, तो चन्द्रमा का वज़न १/५ छटाँक होगा। शेष ग्रहों का वज़न इस तरह होगा :—

बुध	१ छटाँक	यूरेनस	१७ सेर
मंगल	१½ छटाँक	शनि	२ मन १३ सेर
शुक्र	१३ छटाँक	बृहस्पति	७ मन ३० सेर
नेपच्यून	१४ सेर	सूर्य	८००० मन

इस अद्भुत और महान् ब्रह्माण्ड में केवल एक ही सौर मंडल नहीं है। इसके अतिरिक्त दूसरे भी अनेक सूर्य और उनके साथ ग्रह उपग्रह तथा करोड़ों अन्य तारागण हैं।

बिजली के आविष्कार

बिजली—यों तो शक्ति के विशेष रूप हैं और उन सबका उपयोग मनुष्य कर ही रहा है; लेकिन इस बीसवीं सदी में बिजली का उसने सब से अधिक उपयोग किया है। आज किसी भी बड़े शहर में रहने वाला मनुष्य जब अपने घर में या उसके आस पास देखता है, तब बिजली की महिमा देख कर आश्चर्य-सागर में उतराने लगता है। रोशनी, पंखा, चूल्हा, रेडियो तो घर में ही हैं। टेलीफोन, तार, सिनेमा, ट्राम, मोटर, बिजली की गाड़ियाँ आदि न जाने कितनी वस्तुएँ वह बाहर देखता है। बिजली कितने छोटे बड़े कारखानों को चलाती है। बिजली के इतने अधिक उपयोग की ओर वैज्ञानिकों के आकर्षण के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :—

१--बिजली की चाल १८६००० मील प्रति सैकण्ड है। इस कारण वह अत्यन्त अल्प समय में कहीं भी जा सकती है।

२—वह तांबे की सैकड़ों हजारों मील लंबी तारों के द्वारा कहीं भी अत्यन्त आसानी से ले जाई जा सकती है। और कोई शक्ति ऐसी नहीं कि जो इतनी आसानी से अन्यत्र ले जाई जा सकती हो।

३—उसे थोड़ी या अधिक मात्रा में आवश्यकतानुसार घर घर बाँटा जा सकता है और उस पर पूर्ण नियंत्रण रखा जा सकता है।

४—उसे किसी भी स्थान पर संग्रह किया जा सकता है।

५—यह शक्ति बहुत सरलता से ताप, चुम्बक और रासायनिक शक्ति में बदली जा सकती है।

बिजली के तीन मुख्य आविष्कारों के आगे दिये गये परिचय से ज्ञात होगा कि मनुष्य ने इसे किस तरह अपने वश में कर लिया है।

टेलीफ़ोन और टेलिविज़न

टेलीफ़ोन का आविष्कार अमेरिका-निवासी ग्राहम बेल ने किया था। ग्राहम बेल एक धनी पुरुष के घर में उसके गूँगे व बहरे पुत्र को पढ़ा कर निर्वाह करता था। उसको पढ़ाते हुए वह इस परिणाम पर पहुँचा कि जब हम बोलते हैं, तब वायु में कम्पन पैदा होते हैं। यह कम्पन कान के अन्दर पर्दे पर चोट देते हैं, तो शब्द पहुँचता है। इसी नियम पर उसने टेलीफ़ोन का निर्माण किया।

टेलीफ़ोन में जहाँ हम बोलते हैं, उसके सामने एक कार्बन का पत्रा लगा रहता है। इसे डायाफ्राम कहते हैं। इसके पीछे कार्बन या कोयले का चूरा भरा होता है। कोयले के चूरे में से बिजली की हलकी धारा गुज़र रही होती है। यह बिजली तार द्वारा सुनने वाले आदमी के टेलीफ़ोन में गुज़रती है। टेलीफ़ोन पर बोलने से वायु में कम्पनों की चोटों का प्रभाव कार्बन पर पड़ता है। इससे बिजली की धारा की ताकत बढ़ती और घटती रहती है। सुनने वाले के टेलीफ़ोन में एक लोहे का पत्रा होता है। इसके पीछे बिजली का चुम्बक जड़ा हुआ होता है। धारा की ताकत के बढ़ने घटने से चुम्बक की ताकत भी बढ़ती और घटती है। इसका प्रभाव यह होता है कि चुम्बक के आगे लगा हुआ लोहे का पत्रा आगे पीछे काँपता है और वायु को चोटें देता है। इस प्रकार टेलीफ़ोन में बोलने से जिस प्रकार की चोटें वायु को मिलीं, उसी प्रकार की चोटें सुनने वाले को अपने टेलीफोन पर वायु से मिलती हैं। परिणाम यह होता है कि बिलकुल वही शब्द सुनाई देता है।

टेलीफ़ोन इस ज़माने का एक आश्चर्यजनक आविष्कार है। सैकड़ों मील पर बैठे हुए हम अपने मित्रों से उसी प्रकार बातें कर सकते हैं, मानो कि हम आमने-सामने बैठे हुए हों। व्यापारियों के लिए टेलीफोन से बड़ी सुविधा हो गई है। दुकान पर बैठे हुए वे अपने ग्राहकों से तथा दूसरे व्यापारियों से बातचीत कर सकते हैं।

आज कल टेलीफोन द्वारा लाखों रुपयों के लेन-देन घर बैठे ही होते रहते हैं।

टेलीफोन के प्रयोग से अभी वैज्ञानिकों को सन्तोष नहीं हुआ। वैज्ञानिकों ने अब एक ऐसा यन्त्र बनाया है, जिससे सैकड़ों मील की दूरी पर बैठे हुए आदमी को जहाँ बोलने वाले की आवाज़ साफ़ सुनाई देती है, उसके साथ ही बोलने वाले का चित्र भी सामने दिखाई देता है। इस यन्त्र को टेलीविज़न कहते हैं। इसकी सहायता से दूर-दूर देशों के समाचार और वहाँ के फोटो कुछ ही मिनटों में हमारे देश में पहुँच जाते हैं। अखबारों को वहाँ के समाचार और चित्र प्राप्त करने में बड़ी सुविधा हो गई है।

रेडियो या बेतार

आजकल बड़े शहरों में रेडियो का प्रचार बढ़ता जा रहा है। रेडियो से हम घर बैठे सारी दुनिया की खबरें सुन सकते हैं। टेलीफ़ोन में बिजली के गुज़रने के लिए खम्भों पर तारें लगी होती हैं, परन्तु रेडियो से बातें सुनने के लिए तार की कोई ज़रूरत नहीं होती। घर में एक रेडियो रखा जाता है। घर के ऊपर दो खम्भों के ऊपर के सिरों पर तार लगाई जाती है। यह तार आकाश में से बिजली की लहरों को पकड़ती है। इसे आकाशी (एरियल) कहते हैं। इस तार का एक सिरा कमरे के अन्दर रखे हुए रेडियो में लगा रहता है।

जो कोई चाहे, अपने घर में रेडियो रख कर दुनिया भर की बातें सुन तो सकता है, परन्तु वह अपनी बात दूसरों को सुना नहीं सकता। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, लाहौर आदि शहरों में सरकार की ओर से ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन हैं। इन स्थानों पर देश-विदेश के समाचार साधारण जीवनोपयोगी बातें तथा गायन आदि के प्रोग्राम रखे जाते हैं। संसार के किसी भी कोने में जिसके पास रेडियो हो, वह इन प्रोग्रामों को सुन सकता है।

ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन में एक यन्त्र होता है। इसे माईक्रोफोन

कहते हैं। माईक्रोफ़ोन की रचना टेलीफोन के बोलने वाले भाग से मिलती जुलती होती है। इसमें बिजली की धारा गुज़रती रहती है। गायक माईक्रोफ़ोन के सामने मुँह करके गाता है। इससे वायु में शब्द की लहरें बिजली की लहरों का रूप धारण कर लेती हैं। यह लहरें ताँबे की तार में से गुज़रती हुई एक और यन्त्र में से गुज़रती हैं, जो कि इन लहरों की शक्ति को हज़ारों गुना तेज़ कर देता है। यहाँ से यह ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन के एरियल में जाती हैं। यह एरियल बहुत ऊँचे ऊँचे होते हैं। एरियल इन लहरों को आकाश में फैला देता है। एरियल से छूटी हुई ये लहरें सारे भूमंडल में बड़े वेग से फैल जाती हैं। इनकी चाल बहुत तेज़ होती है, ये एक सैकिंड में सात बार सारे भूमंडल के चारों ओर चक्कर लगा सकती हैं।

हमारे घर के रेडियो का एरियल इन लहरों को पकड़ कर इन बिजली की लहरों को फिर शब्द की लहरों का रूप देकर वायु में छोड़ता है और हम उस गायन को सुन सकते हैं। हमारा रेडियो हमारी इच्छानुसार हमें कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, जर्मनी, फ्रांस या दुनियाँ के किसी देश के प्रोग्राम सुना सकता है। हरेक ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन की बिजली की लहरों की लम्बाई अलग अलग होती है। हमारे रेडियो में एक सुई लगी रहती है। इसे घुमाने से हमारा रेडियो एक विशेष लम्बाई की लहरों को पकड़ने लगता है। इससे हम अपने अभीष्ट स्थान के प्रोग्राम सुन पाते हैं।

बिना तार के बातें करने का आविष्कार इटली-निवासी मारकोनी ने किया था। यह भेंट देकर मारकोनी ने संसार का महान् उपकार किया है। आजकल जहाज़ों और हवाई जहाज़ों में भी बेतार का प्रबन्ध होता है। जब किसी जहाज़ पर कोई आपत्ति आती है तो वह बेतार द्वारा अपने समाचार भेजता रहता है। इससे उसके आसपास के दूसरे जहाज़ उसकी सहायता के लिए तुरन्त पहुँच जाते हैं।

सिनेमा

सिनेमा वैज्ञानिक युग का एक आश्चर्यजनक आविष्कार है। पहली बार सिनेमा के पर्दे पर चलते और बोलते हुए चित्रों को देख कर आदमी वास्तव में ही स्तब्ध रह जाता है। आजकल सब बड़े शहरों में सिनेमा-घर बन चुके हैं।

सिनेमा में दो विशेषताएँ होती हैं। एक तो चित्रों का चलना फिरना और दूसरा चित्रों का बोलना। पहले हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि सिनेमा चित्र किस प्रकार चलते हैं। हमारी आँख जब किसी चीज को देखती है, तो उस वस्तु के हट जाने के बाद भी आध सैकिंड तक उसका चित्र हमारी आँख में बना रहता है। यदि हमारा मित्र एक चिनगारी वाली लकड़ी को पकड़ कर वेग से गोलाकार घुमावे तो हमें चिनगारी का पूरा गोला दीखता है, क्योंकि चिनगारी एक स्थान से हट कर आगे चली जाती है, परन्तु उसका चित्र हमारी आँखों में कुछ देर तक रह जाता है। इस प्रकार चिनगारी की सब अवस्थाओं का चित्र एक साथ आँख में रहने के कारण हमें पूरा चमकता हुआ गोला दीखता है। सिनेमा में चित्रों के चलने फिरने का यही कारण होता है। वास्तव में सिनेमा के पर्दे पर आदमी के चित्र चल नहीं रहे होते, परन्तु एक के बाद एक करके एक मिनट में अलग अलग अवस्था के सैकड़ों चित्र लैम्प द्वारा डाले जाते हैं। हमारी आँखों को यह प्रत्येक चित्र अलग अलग नहीं दीखते, परन्तु चित्रों का एक सिलसिला मालूम पड़ता है। इसी कारण हमें चित्र चलते फिरते हुए प्रतीत होते हैं।

सिनेमा के चित्र फोटोग्राफी के कैमरे द्वारा तैयार किये जाते हैं। सिनेमा के पात्र जब अपना प्रोग्राम कर रहे होते हैं, तो इस कैमरे से उनके फोटो एक लम्बी सी लिपटती हुई रील पर एक सैकिंड में १६ से २० तक एक के बाद एक करके अपने आप ही उतरते जाते

हैं। इसी रील को फिल्म कहते हैं। एक फिल्म में लगभग १६००० छोटे छोटे चित्र होते हैं। इस फिल्म को सिनेमा घर के खास प्रकार के लैंप में लगाते हैं। लैम्प से यह चित्र बड़े होकर पर्दे पर पड़ते हैं। यह फिल्म एक तरफ से खुल कर लैम्प के सामने से गुजरती हुई दूसरी ओर लिपट जाती है। हर एक चित्र बिलकुल थोड़ी देर के लिए लैम्प के सामने ठहरता है। दर्शक को एक चित्र के हटने और दूसरे चित्र के आने का भान नहीं होता, परन्तु एक ही ताँता प्रतीत होता है।

सिनेमा चित्रों के बोलने का वही ढंग होता है, जो कि ग्रामोफोन का होता है। इसमें थाली की तरह के रिकार्ड नहीं होते, परन्तु ग्रामोफोन जैसी सुई चलती हुई फिल्म के साथ एक किनारे पर पहले से तैयार की हुई लकीर पर रगड़ खाती है। इससे शब्द पैदा होता है।

एक्सरेज़

सन् १९१५ में प्रो० रांटजन अपनी प्रयोगशाला में बिजली के कई परीक्षणों में मग्न थे। उन्होंने एक बन्द काँच की नली के अन्दर आमने सामने के सिरों के साथ प्लाटिनम के पत्ते लगाए। इस नली में से लगभग सारी वायु निकाल दी गई थी। इन दोनों पत्रों के साथ बिजली की बैटरी जोड़ने पर उन्होंने देखा कि ट्यूब के अन्दर एक पत्ते से दूसरे पत्ते तक बिजली के कण दौड़ रहे हैं। इन बिजली के कणों की धारा में उन्होंने एक प्लाटिनम की थाली टेढ़ी करके रख दी। इससे बिजली की वह धारा नली के बाहर छूटने लगी। रांटजन ने किरणों के आगे एक गत्ता रखा तो उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यह किरणें गत्ते को पार कर गईं. फिर उन्होंने अपना हाथ इन किरणों के सामने रख दिया। उन्होंने देखा कि उनके हाथ की केवल हड्डियाँ ही दीख रही हैं। पहले तो वे घबराये, कि शायद इन

नई प्रकार की किरणों से उनका हाथ जल गया है, परन्तु बाहर जाकर उन्हें यह देख कर सन्तोष हुआ कि उनका हाथ सही सलामत है। उन्होंने ऐसी किरणों का आविष्कार कर लिया था, जो कि मांस, कपड़ा, चमड़ा आदि नरम वस्तुओं को पार कर जाती हैं और धातुओं, हड्डियों तथा अन्य वस्तुओं को पार नहीं कर सकतीं। इन किरणों का नाम 'एक्सरेज' रक्खा गया।

'ऐक्सरेज' का आविष्कार डाक्टरों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। जब किसी आदमी के शरीर में कोई बन्दूक की गोली या कोई और कठोर पदार्थ घुस जाय अथवा कोई बच्चा पैसा निगल जाय और उसका पता न लगे तो उसके शरीर में से ऐक्सरेज गुजार कर फोटो लिया जाता है। इससे उस पदार्थ के ठिकाने का ठीक ठीक पता लग जाता है। शरीर के अन्दर की बीमारियों का पता लगाने के लिए इन किरणों की सहायता से अन्दर की नसों की फोटो ली जाती है और उससे मालूम पड़ जाता है कि शरीर में किस प्रकार का विकार है।

'ऐक्सरेज' डाल कर असली और नकली हीरों की परख की जाती है। नकली हीरे 'ऐक्सरेज' द्वारा भेदे जा सकते हैं, परन्तु असली हीरे नहीं भेदे जा सकते।

चुंगी पर काम करने वाले अफ़सर बाहर से आये हुए पारसलों पर 'ऐक्सरेज' डाल कर जान लेते हैं कि उन पारसलों में क्या सामान है।

परमाणु बम

महायुद्ध से चाहे कितना भी भयंकर प्रलय होता हो, लेकिन उससे विज्ञान की बहुत उन्नति होती है। इस युद्ध में इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण परमाणु बम है। हम पहले बता आये हैं कि अणु को किसी तरह फोड़कर उसके अन्तरतम परमाणु को शक्ति में बदला जा सके,

तो प्रचंड शक्ति प्राप्त की जा सकती है। संसार का निर्माण जिन ९२ तत्त्वों से हुआ है, उनमें युरेनियम बहुत कड़ा है। उसका परमाणु टूटना बहुत कठिन है और विशेषकर उसका हलका परमाणु। यह उसी के भारी परमाणु का हजारवाँ भाग होता है। प्रत्येक परमाणु में एक सूर्य केन्द्र है, जिसके आस-पास घटक फिरते रहते हैं। दो परमाणुओं के घटकों के पास आते ही उनमें १ अरब १० करोड़ वोल्ट बिजली बन जाती है। युरेनियम के परमाणु पर अन्य-अन्य जाति के परमाणु का न्युट्रान गिराते ही वह फूट जाता है। युरेनियम के फटते ही उसके निजी न्युट्रान निकलते हैं, जो उसके भीतर चले जाते हैं। अब लगातार नए न्युट्रान निकलते हैं और अपने मुख्य स्थान में तेजी से चले जाते हैं। इससे प्रत्येक टुकड़े के भीतर अणुओं को तोड़ने की शक्ति स्थापित रहती है, जिससे युरेनियम का एक घनफुट एक सैकंड के सौवें हिस्से में सूर्य सदृश विलक्षण तेज से चमकने लगता है। १० लाख किलोवाट की इस शक्ति से १५० मील दूर बैठी एक अंधी लड़की को भी यह मालूम पड़ा था कि कुछ चमका है।

अणु शक्ति को प्रयुक्त करने में सब से बड़ा कदम जर्मन वैज्ञानिक ओटोहैन ने उठाया। नार्वे में जर्मन लोग ऐसी प्रयोग-शाला बना कर इसकी विध्वंस शक्ति को जीतने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु अंग्रेज सैनिकों ने उस पर आक्रमण कर के उसे नष्ट कर दिया था। डा० कार्लबोटहर भी ऐसा प्रयत्न कर रहा था, परंतु वह भाग कर इंगलैंड जा पहुँचा। और वहाँ उसकी स्थिति सुरक्षित न समझ कर वह अमेरिका भेजा गया। वहाँ बड़े बड़े ५७ वैज्ञानिक और ७५ हजार कुशल कारीगर इसी काम के लिए बसाए गए जो एक नगर में दो वर्ष तक गुप्त रूप से परीक्षण करते रहे। भेद पूर्ण रूपेण गुप्त रखा गया था। अनन्तोगत्वा जुलाई में बम बन गया।

अगस्त १९४५ के प्रारंभ में अमेरिका के उड़ाकुओं ने जापान के हिरोशिमा नामक नगर पर यह विध्वंसकारी प्रलयंकर बम गिराया।

वह अंडे के बराबर था, लेकिन इसने तीन लाख दस हजार की आबादी के नगर को बरबाद कर डाला। उसकी लौ और धूल ७ मील तक ऊपर गई। बड़ी बड़ी इमारतें जल कर कोयला हो गईं। लोहे के मीनार गल कर भाप बन गए। ४०-५० सहस्र मनुष्य निर्दयी काल के ग्रास बन गये। यूरेनियम के परमाणु के फटने से वहाँ की धातुएँ भी बदल गईं, उनसे ऐसी किरणें महीनों तक निकलती रहीं जिनसे लोगों के शरीर, मज्जा और अस्थि विकृत हो गए। इनसे भी हजारों मर गए। नागासाकी शहर पर भी ऐसा एक बम गिराया गया। कुल दोनों नगरों की मृत्यु-संख्या १ लाख २० हजार से कम नहीं थी। विज्ञान के इस विध्वंसकारी अमानुषी आविष्कार ने जापान-युद्ध की शीघ्र समाप्ति में बड़ी सहायता दी।

परमाणु बम के इस चमत्कार से समस्त संसार हैरत में आ गया। वैज्ञानिकों ने परमाणु की शक्ति की कल्पना तो पहले भी कर ली थी, लेकिन उन्हें यह स्वप्न भी न था कि अणु को विघटित कर प्रचंड शक्ति इतनी जल्दी प्राप्त कर लेंगे। लेकिन युद्ध के समय की तीव्र आवश्यकता ने वैज्ञानिकों को जल्दी से जल्दी इस कार्य में प्रेरित किया। जापान के दो नगरों पर इसकी सफलता ने सब राष्ट्रों को यह परमाणु बम जल्दी से जल्दी बनाने के लिए प्रेरित किया। अब स्थिति यह है कि अमेरिका परमाणु बम के रहस्य को अधिकाधिक गुप्त रखने की चेष्टा कर रहा है, तो रूस उस रहस्य का पता लगाने के के लिए सिरतोड़ प्रयत्न कर रहा है। कैनेडा के कुछ वैज्ञानिकों को इसका कुछ रहस्य मालूम था, उनसे कुछ भेद रूस के जासूसों ने जानने का प्रयत्न किया है। रूस के बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी जर्मनी के वैज्ञानिकों की सहायता से परमाणु बम के रहस्य को खोज निकालने का महान् प्रयत्न कर रहे हैं। एक बार तो यह समाचार भी प्रकाशित हो गया था कि रूस ने परमाणु बम बना लिया है। नये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने परमाणु बम पर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण का सिद्धान्त स्वीकार किया

है। लेकिन अमेरिका के राजनीतिज्ञ उसके भेद को बताने के लिए किसी तरह तय्यार नहीं है।

परमाणु बम के परीक्षण—परमाणु बम का आविष्कार भले ही मानव-संहार के लिए किया गया हो, लेकिन जब इस महान् शक्ति के स्रोत का ज्ञान हो गया है, तो वैज्ञानिक इस शक्ति का अधिक से अधिक अध्ययन करके उसे मानव जाति की सेवा के लिए उपयोगी बनाने पर तुल गए हैं। अमेरिकन सरकार ने लाखों रुपया व्यय करके परमाणु बम की शक्ति जानने के लिए दो परीक्षण जुलाई में किए। दोनों परीक्षण बेकिन टापू के निकट समुद्र के विशाल वक्षःस्थल पर किये गये। ७२ जहाज वहाँ खड़े किये गये। दूसरे परीक्षण की रिपोर्ट देते हुए पत्र-प्रतिनिधियों ने बताया कि उनका जलयान बम फटते ही नीचे से ऊपर तक काँप उठा। बटन के दबाने के कुछ सैकेंड बाद ही एक महाप्रलयंकर शब्द हुआ। यह शब्द होने के आधे मिनट बाद ही विस्फोट के आघात से समुद्र की सतह से लगभग २१३६ फुट व्यास की चौड़ाई वाला जल का एक विशाल और प्रचंड पहाड़ लगभग २ मील ऊँचा उठा और कुछ क्षण वहीं रुकने के बाद उसके भीतर से वाष्प और पानी की एक फुहार और भी ४००० फुट (पौन मील) तक ऊँची उठी। उसके वेग से ऐसा प्रतीत होता था कि वह कभी रुकेगा नहीं। यह पानी का पहाड़ श्वेत रंग का था, किंतु उसके किनारे आड़ू के रंग से लाल पीले थे। यह विशाल शंकु आकृति का जल-स्तम्भ क्रमशः ऊपर की ओर व्यास में कम होता जाता था। परीक्षण को देखने के लिए परीक्षण-स्थल के समीप उड़नेवाले ६० या ७० वायुयानों ने यह सूचना दी कि यद्यपि वे इस पानी के पहाड़ के बीच मथे जाने के डर से पर्याप्त ऊँचाई पर उड़ रहे थे, फिर भी ८००० फुट की ऊँचाई पर उड़ते हुए उनके वायुयानों के पंखों के सिरे भीग गए।

वाष्प और श्वेत कुहासे के बादलों ने ८५ जलपोतों के विशाल

बेड़े को—जिन्हें लक्ष्य करके यह बम चलाया गया था—बिलकुल छिपा लिया। इस प्रलय की समाप्ति पर देखा गया कि अनेक जलपोत अपने स्थान से हिल कर तितर बितर हो गए हैं। कुल मिला कर ७ लाख टन वजन के जलपोत—जिनमें २९००० टन का नेवादा (एक प्रसिद्ध जापानी) जलपोत भी था—ज्यों के त्यों जल की सतह पर विद्यमान थे। २७००० टन के अमेरिकन विमानवाही जलपोत सटाटो को इससे पर्याप्त क्षति पहुँची। यदि इसे परीक्षण स्थल से हटा कर पिछले समुद्री भाग में न बाँधा जाता तो वह अवश्य डूब जाता। २६१०० टन का अमेरिकन युद्ध पोत अर्कन्साज एवं एक ट्रांसपोर्ट पोत डूब गए और उनका कोई अवशेष पीछे नहीं रहा। आठ पनडुब्बियाँ भी इस समय बिखरी हुई थीं, सिर्फ दो पनडुब्बियाँ सुरक्षित देखी गईं।

अमेरिका ने और भी परीक्षण किये। इन परीक्षणों पर अमेरिका का लगभग ५० करोड़ डालर व्यय हुआ।

अणु शक्ति के अन्य उपयोग—वैज्ञानिक इस नयी प्रचण्ड शक्ति पर ऐसा नियंत्रण करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे इस शक्ति-भण्डार का संहार की अपेक्षा सदुपयोग किया सके। उन्हें यह विश्वास है कि परमाणु की शक्ति को वे दो-चार सालों के भीतर ही अपने वश में कर लेंगे। परमाणु में केन्द्री-भूत शक्ति के भण्डार का अनुमान इस उदाहरण से किया जा सकता है कि यदि एक प्याला भर पारे के परमाणुओं को विघटित किया जा सके, तो उनसे इतनी शक्ति प्राप्त होगी, जो किसी भी मालगाड़ी के १२० डब्बों को २ लाख ७० हज़ार मील तक खींच ले जा सकेगी। ऐसा करने में सबसे बड़ी बाधा यह कि यूरेनियम के अणु के फटने के बाद एक से एक न्यूट्रान पैदा होने और विस्फोट का क्रम निरंतर चलता जाता है। यदि किसी तरह पैदा होने वाले न्यूट्रानों की संख्या कम की जा सके, तो ऐसी नियंत्रित और कम वेग वाली शक्ति प्राप्त की जा सकती है, जिसका आसानी से अपनी इच्छानुसार प्रयोग किया जा सके। इसके लिए

वैज्ञानिक सीसे की एक ऐसी जाली तैयार कर रहे हैं, जो विघटित परमाणु बीज द्वारा विसर्जित न्यूट्रानों को सोखती जायगी।

अणुशक्ति का सर्व प्रथम प्रयोग बिजली की करैंट बनाने में किया जायगा। इसके द्वारा बहुत छोटे बिजली घर से तमाम नगर को प्रकाश तथा भोजन बनाने के लिए बिजली मिल सकेगी। जिस नगर में बिजलीघर होगा, उसके चारों ओर बसे हुए सैंकड़ों गावों में बैलों की जरूरत न रहेगी। कुँओं से बिजली के नलों द्वारा यथेच्छ जल निकाल लिया जाया करेगा। कल कारखानों में भी कोयले की जरूरत न रहेगी। अणु शक्ति से ही सारे कार्य सम्पन्न होंगे। इससे कहीं अग्नि या धुआँ भी दिखाई नहीं पड़ेगा, और धुएँ से होने वाली स्वास्थ्य की हानि का डर भी नहीं रहेगा। खानों से कोयला निकालना तथा उन्हें कल कारखानों तक लाना—ये सब परिश्रम और धनसाध्य कार्य बन्द हो जायँगे। अणु शक्ति से रेल, जलयान, वायुयान आदि के इंजिन भी चलाये जा सकेंगे। दिनों की यात्रा मिनटों की रह जायगी। अणु की शक्ति द्वारा हम पहाड़ों को समतल बना सकेंगे और समतल भूमि को पहाड़। रेगिस्तान को हम लहलहाते हुए खेतों में परिवर्तित हुआ देख सकेंगे। वस्तुतः अणु की शक्ति से संसार का नक्शा ही बदल जायगा।

राकेट शिप

परमाणु बम के बाद इस महायुद्ध का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आविष्कार राकेट शिप है। उड़न बम वी २ (V2) इसी का विकसित रूप है। राकेट बम का प्रयोग यद्यपि इस युद्ध में ही हुआ है, तथापि इसकी कल्पना इस युद्ध से कई वर्ष पूर्व कर ली गई थी। इस दिशा में अनेक प्रयत्न भी हो चुके थे। इस राकेटशिप में मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है :—

यदि हम आतिशबाजी में एक छोटी सी लकड़ी बाँध दें तो

मसाले के विस्फोट के कारण वह एक ही क्षण में सैकड़ों गज दूर आसमान में पहुँच जाती है और मसाले के समाप्त होने पर अपने भार व पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे गिर जाती है। आतिशबाजी के इस परीक्षण को देखकर वैज्ञानिकों ने रॉकेटशिप का नवीन आविष्कार किया। छोटी सी आतिशबाजी की लकड़ी को सैकड़ों गज दूर ले जाने वाली विस्फोटक शक्ति को देख कर वैज्ञानिकों ने एक शक्तिशाली विस्फोटक के द्वारा एक कमरे (वायुयान) को जिसमें ५-७ मनुष्य बैठे हुए हों उड़ाने की सोची। परीक्षण प्रारंभ हुए, एक मामूली सा वायुयान लिया गया, उसमें बहुत सा भार लादा गया और अतिशबाजियों में आग लगा दी गई जिससे वह एकदम आकाश में जा पहुँचा। इसकी गति बहुत तेज़ थी। इससे जर्मन वैज्ञानिकों को बहुत अधिक उत्साह मिला। वे और भी अधिक मनोयोग से बारूदी राकेटों पर प्रयोग करने लगे। आयेल नामक वैज्ञानिक ने एक मोटर गाड़ी बनाई, जो इन राकेटों की शक्ति से चलती थी। फानफ़ेल्ड नामक एक अन्य विज्ञानवेत्ता ने एक विशेष प्रकार का वायुयान बनाया, इसमें एंजिन नहीं था. लेकिन इसे उड़ाने के लिए सौ राकेट लगाए गए थे। ये राकेट इस यान को २०० फीट ऊँचे तक लेकर उड़े, लेकिन कुछ समय बाद वे गिर गये। बारूद का उपयोग सफल न होते देख कर पैट्रोल, वायु—आक्सीजन, हाइड्रोजन द्रव, हाइड्रोजन परऑक्साइड—तथा अन्य वस्तुओं का प्रयोग करके देखा गया और अंत में जर्मनों को अभीष्ट सफलता प्राप्त हो गई।

राकेट बम—जर्मनी ने इनका प्रयोग लंदन पर किया था। ये राकेट बम साधारण बमों के सामान न थे। वे स्वयं वायुयान थे, उन्हें पंखोंवाले बम कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। इनकी चाल ३५० मील प्रति घण्टा थी। इन बमों में एक कमी थी कि निश्चित रूप से इन्हें अपने लक्ष्य पर गिराने की व्यवस्था जर्मन वैज्ञानिक नहीं कर पाये थे, फिर भी १५ जून १९४४ से ३१ अगस्त १९४४ तक जर्मनों

ने लंदन को काफी नुकसान पहुँचाया। इस प्रकार के ८००० उड़नबम लंदन या दक्षिणी इंग्लैण्ड पर भेजे गये। इनमें सिर्फ १३०० बम लंदन तक पहुँचे, शेष मार्गस्थ गुब्बारों के जाल में उलझ गये। फिर भी लंदन की काफी हानि हुई। ५४७९ नागरिक मरे, १५९४३ घायल हुए, २३९७० मकान बिलकुल राख हो गये और १९५१३३ मकानों को सख्त हानि पहुँची। लेकिन इससे जर्मन वैज्ञानिकों को संतोष नहीं हुआ।

उड़न बम वी २—नये उड़न बम वी २ के नाम से बनाये गये। ये अत्यन्त शक्तिशाली और वेगवान् थे। इनकी गति शब्द से भी अधिक तेज थी। आकाश में उड़ते समय इनकी गति ३००० मील प्रति घंटा और गिरने पर जमीन में धँसते समय २००० मील प्रति घंटा थी। ये ६० मील ऊँचाई तक आकाश में ऊपर की ओर जा सकते थे। ये उड़न बम हलके फुलके नहीं थे। इनकी लंबाई ४६ फुट, तथा व्यास ५॥ फुट होता था। ईंधन आदि समेत इनका वजन १२ टन यानी ३३० मन के करीब था। इनमें एलुमीनियम के दो विशाल टैंकों में ७५०० पौंड अलकोहल तथा ११००० पौंड आक्सीजन भरी जाती है।

जर्मनी ने ये बम बनाये तो, लेकिन इतनी देर में कि वह इनसे शत्रु के आक्रमण को रोक नहीं सका। जर्मनी चारों ओर से घिर चुका था, अब ऐसे अस्त्र भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते थे। फिर भी जर्मन वैज्ञानिक हतोत्साह नहीं हुए। उन्होंने ऐसे राकेट बम बनाने का प्रयत्न किया, जो १२० मील की ऊँचाई पर—जहाँ कि वायु भी उनकी गति में बाधक न हो सके—८००० मील प्रति घंटे की चाल से उड़ सकें। अगर यह आविष्कार कुछ समय पूर्व हो जाता तो युद्ध का नक्शा ही बदल जाता। ऐसे बम अतलांतक महासागर को पार करके न्यूयार्क पर गिर सकते थे।

चन्द्रलोक में जाने का स्वप्न—जर्मनी के पतन के बाद जब

अंग्रेज़ और अमेरिकन वैज्ञानिकों ने जर्मनी के वे कारखाने देखे, जहाँ ऐसे राकेट बम बनाये जाते थे तो स्वभावतः उन्होंने भी उसके सिद्धान्तों को समझ कर अनुसंधान करना शुरू किया। उधर अमेरिका अणु बम बना चुका था। राकेट बमों की तीव्र गति और अणु बम की विध्वंसकारिता, इन दोनों भीषण शक्तियों के समन्वय से नये संहारकारी अस्त्रों का निर्माण अमेरिकन वैज्ञानिक करने में लगे हुए हैं। यदि किसी तरह ये प्रयत्न सफल हो गये, तो ज़रा कल्पना तो कीजिये कि कितनी विध्वंसक प्रलय शक्ति मनुष्य के हाथों में आ जायगी। ८००० मील प्रति घंटा अर्थात् १३३ मील प्रति मिनिट की चाल से चल कर परमाणु बम कितना विध्वंस कर डालेगा, इसकी कल्पना से ही आज के विचारक और नागरिक भयभीत हो जाते हैं। लेकिन वैज्ञानिक इस प्रकार की कल्पना से रत्ती भर भी भयभीत नहीं है। वह इस प्रकार की कल्पनाओं से और भी अधिक उत्साहित होकर अपने प्रयत्न में लग गया है। उसे इसके द्वारा मानव की वह पुरानी इच्छा पूरी होती दीखती है कि वह चन्द्रलोक में पहुँच कर उस बुढ़िया नानी के रहस्य को जान सकेगा, जिसके बारे में वह अपनी दादी से सुनता आया है कि वह चन्द्र में बैठी चर्खा कात रही है। सचमुच वैज्ञानिक अब यह दावे के साथ कहने लगे हैं कि पाँच दस वर्षों में ही चन्द्रलोक तक पहुँच जावेंगे। चन्द्र पृथ्वी का ही पुत्र है, इसी से तब उत्पन्न हुआ था, जब पृथ्वी सूर्य से अलग होकर बहुत वेग से घूम रही थी। इसी का एक खंड वेग से घूमती हुई पृथ्वी से टूट कर अलग हो गया, जो बाद में ठंडा होकर चन्द्र कहलाया।

रूसी परीक्षण—विभिन्न राष्ट्र किस तरह राकेट बम बनाने की दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं, यह ३ सितम्बर १९४६ के एक समाचार से स्पष्ट होगा। जून, जुलाई और अगस्त में स्वीडन में कुछ चमकती हुई रहस्यमय चीज़ बहुत दफ़ा आकाश में जाती देखी गई। इसकी

जाँच करने के लिए लन्दन के डेलीमेल का संवाददाता क्लिफ़र्ड वहाँ गया। उसने छानबीन के बाद यह समाचार दिया—"ये शान्त ज्वालामय अस्त्र असंदिग्ध रूप से रूसियों द्वारा ही छोड़े गये थे। ये राकेट बम २००० तक की संख्या में फेंके जा चुके हैं पर अभी तक किसी का भी कोई अवशेष नहीं मिला है। खयाल है कि ये राकेट बम उन्हीं अविष्कारों का विकसित रूप हैं जिन्हें जर्मन वैज्ञानिकों ने युद्ध-काल में तैयार किया था। ये राकेट बम ६०० मील तक जा सकते हैं। पर इनमें विस्फोटक पदार्थ नहीं रहता। सिर्फ़ चमक ही रहती है। ये बहुत नीचे धीमी रफ़्तार से उड़ते हैं।"

इसी संवाददाता ने यह भी लिखा था कि "ये बम टेढ़े मेढ़े भी चलते हैं। नार्वे स्वीडन में अभी तक इनमें से कोई नहीं गिरा, इसलिए यह अनुमान है कि ये (सुदर्शन चक्र की तरह) अपने चलाने वाले अड्डों पर वापस पहुँच गये होंगे। इन्हें संभवतः बाल्टिक तट के एक बन्दरगाह से छोड़ा जाता है।"

वस्तुतः इससे कई वर्ष पूर्व अमेरिकन वैज्ञानिकों ने मोटर को बिना ड्राइवर के अपनी इच्छानुसार रेडियो की बिजली की लहरों की सहायता से चलाने का प्रयत्न किया था। वहाँ एक बार चार जंगी जहाज़ तथा दो पनडुब्बियों की नकली लड़ाई से युद्ध का पूरा नाटक भी खेला गया, जब कि उनमें एक भी मनुष्य न था। न्यूयार्क की गलियों में बिना ड्राइवर की मोटरकारें स्वयं अपने मार्ग के इशारे देती हुई कभी तेज़ और कभी धीरे चलाई जा चुकी हैं।

रैडार

इस विश्व युद्ध में परमाणु बम और राकेट बम सब से अधिक चमत्कार-पूर्ण अस्त्र आविष्कृत हुए, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य आविष्कार महत्त्वशून्य थे। सैकड़ों प्रकार के आविष्कार वैज्ञानिकों ने किये और ये आविष्कार शान्तिकाल में मानव जाति

के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे, यह निश्चित है। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण आविष्कार रैडार है। शत्रु के वायुयान जब न जाने किस क्षण किस दिशा से आक्रमण करने लगे, तो इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि शत्रु के वायुयानों और पनडुब्बियों के आने के समय और दिशा का ज्ञान कुछ देर पहले हो जाय तो उससे बचने की व्यवस्था की जा सके। रैडार का आविष्कार इसी चिंता का परिणाम था। इसका सिद्धान्त संक्षेप रूप से यह है---

जब हम शब्द करते हैं तो उसकी लहरें कई बार किसी दीवार या चट्टान से टकरा कर वापस लौटती हैं, और हमें पुनः शब्द सुनाई पड़ता है; जिसे हम प्रतिध्वनि कहते हैं। गणना करके हम यह भी जान सकते हैं कि कितनी दूर से आवाज़ लौटी है। इसी तरह रेडियो लहर एक क्षण में १२६००० मील चलती है। जब यह लहर किसी विद्युत युक्त तार से टकरा कर लौटेगी, तो उसकी दूरी भी पता लगाई जा सकती है। इन रेडियो लहरों को वायुयान तथा पनडुब्बी नावें भी वापस कर देती हैं। बस इसी सिद्धांत पर रैडार यंत्र द्वारा रेडियो किरणें फेंकी जाती हैं। शत्रु के जहाज़ से टकरा कर जितनी देर में वे किरणें वापस रैडार के परदे पर अपना प्रतिबिम्ब डालती हैं, उसी से यह ज्ञात हो जाता है कि शत्रु का जहाज़ किस दिशा में और कितनी दूर है। बस उसका विध्वंस करने के लिए आवश्यक तैयारी कर ली जाती है। इसका उपयोग जर्मन विध्वंसकों और पनडुब्बियों के विरुद्ध बहुत किया गया था। इससे अपने जहाज़ों की भी दूरी मालूम हो जाती है, परन्तु वे एक दम सांकेतिक लिपि द्वारा अपनी मित्रता बता देते हैं।

अंधों की दृष्टि

ब्रिटिश सूक्ष्म यंत्र रैडार की प्रणाली को लेकर वैज्ञानिक आज विद्युत् कणों के प्रक्षण की ऐसी विधि खोज निकालने के प्रयत्न में हैं,

जिससे अंधों को भी दृष्टि प्राप्त हो सके। इसलिए वे ऐसे उपाय की खोज में हैं, जिसके द्वारा आँखों से देखी जा सकने वाली वस्तु कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनि में परिवर्तित की जा सके। ब्रिटिश आविष्कारक इस बात के प्रयत्न में हैं कि चलते समय अंधों की राह में जो रुकावटें या ठोकरें आती हैं उनको दूरी तथा दिशा की पूरी सूचना अंधे व्यक्ति को कानों द्वारा मिल सके। यह कार्य रैडार की प्रणाली से किया जा सकता है। शत्रु के दूरस्थ विमानों की सूचना जिस प्रकार रैडार द्वारा मिल सकती है, उसी प्रकार मार्ग की बाधाओं की सूचना नेत्रहीन व्यक्ति को मिल जाया करेगी और वह आवश्यकता के अनुसार मुड़ जाया करेगा।

बारूदी सुरंग

इन महत्वपूर्ण आविष्कारों के बाद बारूदी सुरंग का नम्बर है, यद्यपि यह इस युद्ध का सब से पहला आविष्कार था। समुद्र में जहाज प्रायः जिन मार्गों से आते जाते हैं, उन्हें रोकने के लिए अथवा किनारों पर जहाजों को न आने देने के लिए पानी में ऐसी सुरंगें बिछा दी जाती हैं, जो पानी में डूबकर भी पानी की सतह से बहुत नीचे नहीं जातीं। ये सुरंगें एक दूसरे के साथ एक बिजली के तार द्वारा ऐसे गुथी रहती हैं, जैसे माला के फूल धागे द्वारा। इस तार में उलझने अथवा सुरंगों से टकराने से सुरंग फट जाती हैं और जहाज डूब जाता है। इन सुरंगों की मालाएँ युद्ध काल में मीलों तक बिछा दी जाती हैं।

जर्मनी ने इस युद्ध के प्रारम्भ काल में एक नये प्रकार की सुरंग बनाई थी, जिसे मैग्नेटिक माइन अथवा चुम्बकीय सुरंग कहते थे। यह समुद्र में तैरती थी और इसके चुम्बकीय क्षेत्र में आते ही जहाज इस की तरफ खिंच आते थे अथवा यह जहाज की तरफ़ चली जाती थी और जहाज से छूते ही टकराकर फट जाती थी और जहाज को

डुबो देती थी। इससे बचने के लिए जहाज़ के चारों तरफ़ बिजली के तारों की ऐसी पेटियाँ लपेटी गईं जो चुम्बकीय सुरंगों के चुम्बकीय प्रभाव को उदासीन कर दें।

इन सुरंगों से समुद्र को साफ़ करने के लिए माइन स्वीपर (सुरंग साफ करने वाले) छोटे छोटे जहाज बनाये गये।

इस युद्ध में वायुयानों तथा बमों के जितने नये नये भेद आविष्कृत हुए, उनकी तो गिनती ही नहीं है। शत्रु सेनाओं पर चील की तरह झपटने वाले, बम बरसाने वाले, रसद व गोला और सैनिक ले जाने वाले, जहाजों को डुबाने वाले, शोर मचाने वाले, शत्रु की गतिविधि का निरीक्षण करने और फोटो लेने वाले आदि कितने ही प्रकार के वायुयान बनाये गये हैं। इसी तरह शोर मचाने वाले, फटने वाले, आग लगा देने वाले, चकाचौंध रोशनी करने वाले, नियत समय बाद फटने वाले आदि कितने ही प्रकार के बम बनाये गये।

और भी न जाने कितने प्रकार के छोटे बड़े वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण युद्ध को अधिक संहारकारी बनाने का प्रयत्न किया गया। उन सब का परिचय देना यहाँ संभव नहीं है। परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि दी है। उसका वह अपने कार्यों में प्रयोग करता है। युद्ध के समय मनुष्य पशु हो जाता है, इस लिए उसकी बुद्धि विध्वंस-कार्यों में लगती है। जिससे उसकी संहार-शक्ति बहुत बढ़ गई है।

प्रथम महायुद्ध के आविष्कार

१९१४ के महायुद्ध में भी अनेक अद्भुत आविष्कार किये गये थे। यद्यपि आज विज्ञान उनसे बहुत आगे जा चुका है तथापि उस समय उन्होंने भी कम चमत्कार नहीं दिखाया था। आज भी उनका महत्त्व कम नहीं है। इस युद्ध में उनका प्रयोग भी बहुत हुआ है। गत महायुद्ध के मुख्य आविष्कार थे—टैंक, ७५ मील तक मार करने

वाली बिगबर्था तोप और पनडुब्बी तथा जेपलिन वायुयान।

टैंकों का आविष्कार ब्रिटेन ने किया था। लोहे के भयानक सरीसृप की तरह पहले पहल जब टैंक रणक्षेत्र में प्रकट हुआ, तब जर्मन चकित रह गये थे। जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय के विषय में कहा जाता है कि उसने जब एक पहाड़ी पर खड़े हुए उस भीमकाय लोहपिंड को अपनी ओर आते हुए देखा तो वह चकित रह गया और उसे सूझ नहीं पड़ा कि उसका क्या नाम लेकर अपनी सेनाओं को उससे बचने के लिए चेतावनी दे। यह विशालकाय सशस्त्र मोटर-गाड़ी वस्तुतः खाइयों में छिपकर लड़ती हुई सेना का सामना करने के लिए बनाई गई थी। इसकी विशेषता यह है कि यह ऊँची नीची कँकरीली पथरीली जमीन में भी चल सकती है। इसका शरीर मोटे लोहे की चादर से ढका रहता है और भीतर बैठे हुए चालक शत्रुसेना पर गोलियाँ बरसाते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। दर असल इन्हें 'चलता फिरता दुर्ग' कहा जा सकता है। इस युद्ध में इनका बहुत विकास हुआ है और जरूरत पड़ने पर तैर सकने वाले टैंक भी बनाये गए हैं।

लम्बी मार करने वाली तोपें भी गत महायुद्ध का आविष्कार हैं। इसके गोले वस्तुतः एक के भीतर दूसरा, दूसरे के भीतर तीसरा और तीसरे के भीतर चौथा, इस प्रकार अनेक गोलों का समूह होते हैं। उनकी रचना ऐसी होती है कि पहला गोला फट कर शेष गोलों में आगे बढ़ने की गति उत्पन्न करता है। पहले गोले से उत्पन्न हुई गति समाप्त होने से पहले ही दूसरा गोला फट कर नई गति उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार क्रमशः नई गति प्राप्त करता हुआ गोला बहुत दूर चला जाता है। इन तोपों के निर्माण में भी इस युद्धकाल में विशेष उन्नति हुई है।

पनडुब्बी पानी में डूबे-डूबे चलने वाली एक नाव है जिसका आविष्कार गत महायुद्ध में जर्मनी ने किया था। इसमें चिमनी की भाँति एक नली लगी होती है, जिसमें से पनडुब्बी वाले शत्रु के

जहाज को देख कर टारपीडो का निशाना साध सकते हैं। जब इसे ऊपर आना होता है, तब इसको पानी को हौजो दबी हुई हवा के जोर से खाली कर दी जाती है और वह ऊपर आ जाती है। ये ६५० टन से लेकर १८०० टन तक की विचित्र प्रकार की होती हैं। इन से शत्रु के जहाज पर टारपीडो छोड़ कर उसे डुबा दिया जाता है। पनडुब्बी में एक छोटे से डब्बे में हवा इतनी अधिक दबा कर भर दी जाती है कि जब टारपीडो छोड़ना होता है तो इस डब्बे की एक खिड़की खोल दी जाती है और हवा इतने जोर से बाहर निकलती है कि टारपीडो को दूर तक फेंक देती है। ये टारपीडो कई कई टन के होते हैं। इस युद्ध में इनके द्वारा भी जर्मनी ने ब्रिटेन व अमरीका के सैकड़ों जहाज डुबाये।

लोक कल्याण के आविष्कार

जहाँ एक ओर मनुष्य संहार के लिए नये से नये अस्त्रों का आविष्कार करता है, वहाँ शत्रु के आक्रमण से बचने से लिए भी वह तरह-तरह के आविष्कार करता है। रैडार इसी दिशा में एक प्रयत्न था। वायुयानों के आक्रमण से बचने के लिए गुब्बारों के जाल आसमान में लटकाने की परंपरा चलाई गई। युद्ध में घायल लोगों की चिकित्सा के लिए तो बहुत अधिक प्रयत्न किया गया। पैंसिलिन नामक दवाई बहुत से रोगों में अव्यर्थ औषध सिद्ध हुई है। ६६६ नामक एक नया कृमिनाशक निकला है। टिड्डी दल को मारने में यह गजब का प्रभाव दिखाता है। घर की मक्खियों व मच्छरों का दूर करने के लिए इसका घोल बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। पीला बुखार पैदा करने वाले मच्छरों के अण्डों को मारने की शक्ति इसकी अद्भुत है। खेती के बहुत से कृमियों को इस जहर से मारा जा सकता है। टिड्डियाँ झींगुर, हरे टिड्डे, जूँ, खटमल, मच्छर आदि सबके लिए यह जहर घातक है। खेती को नष्ट करने वाले अधिकांश कृमि इससे

मारे जा सकते हैं। डी० डी० टी० भी ऐसा ही कृमिनाशक पदार्थ है। इसका आविष्कार सैनिकों को मलेरिया के कृमियों से बचाने के लिए हुआ था। इसके घोल में डाली हुई कमीजें ३-४ धुलाइयों के बाद भी मच्छरों को नहीं आने देतीं।

टैंटालम नामक एक नई धातु का आविष्कार किया गया है। यह मनुष्य के तन्तुओं से मिलती जुलती है। वह धातु टैंटालाइट नामक पदार्थ से निकलती है और इतनी मजबूत होती है कि इससे मनुष्य के बाल से भी पतला तार खींचा जा सकता है। इससे झिल्ली-दार कागज़ जैसी पतली और कोमल चादरें भी बन सकती हैं। इस धातु को सर्जन घायल सैनिकों के टूटे हुए अंग जोड़ने के काम में लाते हैं। इसकी चादरों से नई नाक बनाई गई है। इससे पेट की दीवारें भी बनाई जा सकती हैं। पतले तारों से टूटी हुई नसों के सिरे तक जोड़े जा सकते हैं।

समुद्री तार—आजकल समुद्री तार द्वारा प्रति मिनट लगभग १२० शब्द भेजे जा सकते हैं। स्वर्गीय बेयर्ड की एक नई प्रणाली के अनुसार प्रति मिनट कम से कम ७०, ५०,००० शब्द भेजे जा सकेंगे। संभव है ऐसी दशा में चिट्ठियाँ न भेज कर, मनुष्य समुद्री तार भेजना ही अधिक सुविधाजनक एवं कम खर्चीला समझें।

विद्युत्-संवाद-प्रेषण-विज्ञान का मूल अब तक यही रहा है कि लिखित शब्दों को अथवा उनकी ध्वनि को हम अन्य सुगम रूपों में परिवर्तित कर के उन्हें विद्युतग्राही तारों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को सुगम तरीके से भेज सकें। टेलीफ़ोन या तार भेजने के लिए इसी सिद्धान्त से काम लिया जाता है। तार में वर्ण संकेत को और टेलीफोन में शब्द ध्वनि को हम विद्युत् प्रवाह में बदल देते हैं, और इस प्रकार हमारा संवाद एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँच जाता है।

स्वर्गीय बेयर्ड की नवीन प्रणाली इसी शब्द प्रेषण के सिद्धान्त

पर आश्रित है। रेडियो चित्र एवं टेलीविज़न में आकाश के माध्यम द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को चित्र भेजने की प्रथा पहले से ही चालू है, अब इस विधि को समुद्री तारों के लिए काम में लाने का यत्न किया जा रहा है और स्व० बेयर्ड इस दिशा में छानबीन कर गए हैं। उन्होंने टेलिविजन के सिद्धान्त के आधार पर जो नई प्रणाली सुझाई है, उसके द्वारा संदेश बड़ी ही तेजी से भेजे जा सकेंगे। रेडियो के द्वारा जो चित्र भेजे जाते हैं, टेली-विजन के रिसीवर (ग्राहक) पर उसका पूर्ण बिम्ब एक सैकेंड के भीतर प्रायः २५ बार बनता है। दूसरे शब्दों में एक सैकेंड में २५ विभिन्न चित्र भेजे जा सकते हैं और इन चित्रों के स्थान पर यदि लिखे हुए शब्दों के चित्र या संदेश भेजे जाएँ और प्रति चित्र मे ५०० शब्द हों तो एक मिनिट के भीतर ७,५०,००० (साढ़े सात लाख) शब्द भेजे जा सकेंगे अर्थात् एक मिनट में, छपे हुए समाचार पत्रों के बीसियों पृष्ठ अथवा कई पूरे के पूरे उपन्यास, एक स्थान से सैकड़ों मील दूर भेजे जा सकेंगे।

सांयोगिक द्रव्य

युद्ध के समय विदेशी यातायात बन्द हो जाने के कारण विभिन्न देशों ने अपनी जरूरतें पूरा करने के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों के द्वारा कृत्रिम वस्तुएँ बनानी शुरू कीं। कोयले से तेल, लकड़ी से रेशेदार कपड़े, नकली रेशम और ऊन आदि बनाये गये। मछली के छिलकों से गीला न होने वाला कपड़ा तैयार किया गया है और जूट की जगह इस्तेमाल करने के लिए नकली जूट बनाया गया। जर्मनी युद्ध के पूर्व कोयले से २५ लाख टन तेल प्राप्त करता था और रबड़ की २०/ फीसदी जरूरत बूना द्रव्य से पूरी करता था। अमेरिका में काँच की बोतलों के स्थान पर कागज की बोतलें तैयार की गईं। जापान का काफूर पर एकाधिकार था, तारपीन से नकली काफूर बना कर उसका एका-धिकार तोड़ दिया गया। इस युद्ध में इण्डोनीशिया पर जापान का

अधिकार हो जाने से रबड़ नहीं मिल सका, इसलिए अमेरिका ने विविध मसालों से नकली रबड़ भारी तादाद में तैयार किया। मैग्नीशियम और ऐलूमीनियम की माँग बढ़ जाने के कारण दोनों को क्रमशः समुद्री मिट्टी से निकालने के नये तरीके भी निकाल लिये गये हैं। दूर दूर तक खाद्य पदार्थ भेज सकने के लिए ऐसे तरीके निकाले गये हैं कि वह बहुत समय तक खराब न हों।

लेकिन ?

इस युद्ध के महान् क्रान्तिकारी आविष्कारों ने आज विज्ञान की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा दी है। अब वैज्ञानिक बहुत ऊँची कल्पनाएँ करने लगे हैं और बहुत अधिक आत्मविश्वास के साथ करने लगे हैं। अगस्त १९४६ के प्रारंभ में एक वैज्ञानिक ने मृत प्राणियों को पुनः जीवित कर सकने की भविष्यवाणी की है। एक ब्रिटिश वैज्ञानिक डा० जैन्सर ने यह घोषणा की है कि हम आकाश के मध्यवर्ती रिक्त-स्थान पर नियंत्रण स्थापित करके पृथ्वी के जलवायु और मौसम तक को वश में कर सकेंगे। उसने यहाँ तक कहने का साहस किया है कि हम पानी को रेगिस्तानी क्षेत्रों की ओर तथा गरमी को हिमशीत प्रधान उत्तरी क्षेत्रों में भेज कर संसार के उस समस्त प्रदेश को बसने योग्य बना देंगे, जो आज कल सर्दी या रेगिस्तान के कारण निर्जन रहते हैं। इसी तरह विविध क्षेत्रों में वैज्ञानिक अद्भुत से अद्भुत आश्चर्य-जनक आविष्कारों की घोषणा कर रहे हैं। आज से पहले साधारण जनता ऐसी घोषणाओं पर विश्वास नहीं करती थी लेकिन परमाणु बम के आविष्कार के बाद ऐसी घोषणाएँ असंभव नहीं जान पड़तीं और लोग इनकी पूर्ति कुछ ही वर्षों की बात समझते हैं।

नये वैज्ञानिक आविष्कारों से निकट भविष्य में संसार बदल जायगा। विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है और जो कमी है उसे वह पूर्ण करने में प्रयत्नशील है। वह इसी

संसार को स्वर्ग बना देने का इरादा रखता है, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या यह प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के साथ साथ अपने ऊपर—अपने मन के ऊपर—भी विजय प्राप्त कर रहा है। संसार की बड़ी बड़ी शक्तियाँ आपस में निरंतर संघर्ष करने में लगी हैं और विज्ञान उन्हें जो अधिकाधिक शक्ति प्रदान कर रहा है, उससे वे और भी अधिक शक्तिशाली हो कर मानव संहार करने के मंसूबे बाँध रही हैं। विज्ञान मनुष्य को शक्ति दे रहा है, लेकिन उसका उपयोग वह लोक-कल्याण के लिए करेगा या संहार के लिए? पश्चात्य संस्कृति के आदर्श भौतिकवाद का विरोध म० गाँधी इसीलिए करते हैं। उनका कहना है कि आज वैज्ञानिक शक्ति के मद से मनुष्य पशु बनता जा रहा है। जब तक वह सत्य और अहिंसा का आदर्श नहीं अपनाता संसार में शांति नहीं हो सकती।

अध्याय २

नया शासन-विधान

शासन-विधान के प्रकरण में हम भारतवर्ष के वर्तमान विधान की रूपरेखा पढ़ आये हैं. किन्तु हमने यह भी लिखा है कि विधान-परिषद् स्वतंत्र देश का विधान तैयार कर रही है। यद्यपि वह विधान अन्तिम रूप से तैयार नहीं हुआ, फिर भी विधान-परिषद् द्वारा नियत उपसमिति ने सदस्यों के विचार जानकर जो प्रस्तावित रूप-रेखा तैयार की, उसके एक अंश पर विधान-परिषद् विचार भी कर चुकी है और शेष अंश पर भी १५ अगस्त १९४९ तक विचार होकर अन्तिम रूप से निश्चित होने की आशा की जा रही है। अब तक विधान-परिषद् द्वारा किये गये निर्णयों तथा शेष प्रस्तावित अंश को देखते हुए भारत का भावी विधान बहुत संभवतः निम्नलिखित

होगा :—

उद्देश्य—भारत के विधान के निम्नलिखित उद्देश्य बताये गये हैं। देश में सार्वभौम सत्तायुक्त लोकतंत्रवादी प्रजातंत्र की स्थापना; उसके सब नागरिकों के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय; विचार, भाषण और धर्म की स्वतंत्रता तथा सब के लिए समान विकास का अवसर देना आदि।

संघ—देश के सभी प्रान्त, रियासतें और रियासत संघ मिल कर एक अखिल देशीय संघ सरकार की स्थापना करेंगे। मूल-विधान में 'फैडरेशन' की जगह 'यूनियन' शब्द का प्रयोग इस बात का सूचक है कि इस संघ सरकार के हाथ में प्रान्तों के लिए भी काफी अधिकार रहेंगे।

विधान-परिषद् ने अपने विधान और कार्य संचालन तथा शासन-नीति के लिए कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की भी स्थापना की है जिनको दृष्टि में रखकर न केवल विधान-परिषद् विधान बनायेगी, बल्कि भारत-सरकार भी किसी प्रश्न पर नीति निर्धारण करते हुए जिन्हें सदा ध्यान में रखेगी। ये सिद्धान्त संक्षेप में निम्नलिखित हैं :—

प्रत्येक व्यक्ति को जीविका के पर्याप्त साधन, समाज के अधिकतम कल्याण की दृष्टि से उत्पत्ति के साधनों का वितरण, गोरक्षा, निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा, पुरुषों व स्त्रियों को समान काय का समान वेतन, प्राचीन पंचायतों की स्थापना आदि।

नागरिक के अधिकार—प्रजातंत्र देश के किसी भी विधान का मुख्य भाग नागरिकों के अधिकार का रहता है। वस्तुतः यही प्रजातंत्र का आधार है। प्रस्तुत विधान में भी नागरिकों को निम्न मूलभूत अधिकार दिये गये हैं :—किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति या लिंग के कारण कोई भेदभाव नहीं किया जायगा। दुकानों या सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश, और कुओं, जलाशयों व सड़कों आदि के

प्रयोग का सब को अधिकार होगा। नौकरी या व्यवस्थापिका की सदस्यता के लिए धर्म, जाति या लिंग का कोई भेदभाव नहीं रहेगा। कोई व्यक्ति अस्पृश्य नहीं माना जायगा। देश भर में घूमने, कहीं बसने, कोई व्यवसाय करने, अपनी संपत्ति रखने या बेचने में प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र होगा। भाषण, लेखन, विचार-स्वातंत्र्य, धर्म तथा विश्वास के पालन और निःशस्त्र संगठन का भी प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार रहेगा।

राष्ट्रपति—देश का प्रमुखतम शासक राष्ट्रपति (प्रैज़िडैंट) कहलायेगा। उसका चुनाव सीधे जनता द्वारा नहीं, केन्द्रीय, प्रान्तीय और रियासती व्यस्थापिका सभाओं द्वारा होगा। उसका चुनाव केवल पाँच वर्ष के लिए होगा। दो बार राष्ट्रपति पद प्राप्त करने के बाद तीसरी बार कोई इस पद के लिए खड़ा नहीं हो सकेगा। इस पद के उम्मीदवार के लिए ३५ वर्ष की न्यूनतम आयु आवश्यक है। व्यवस्थापिक सभा में आवश्यक निर्देश भेजने, उन सभाओं को बुलाने, स्थगित करने और भंग करने के अधिकार राष्ट्रपति को रहेंगे। असाधारण परिस्थितियों में कुछ नये कानून बनाने का अधिकार भी उसे होगा, परन्तु ६ महीने के बाद भी जारी रखने के लिए व्यवस्थापिका सभा की अनुमति लेनी पड़ेगी। मन्त्रिमंडल की सलाह से किसी राष्ट्र से युद्ध घोषित करने व संधि करने और किसी की फाँसी की सजा को क्षमा करने के भी अधिकार राष्ट्रपति को दिये गये हैं। व्यवस्थापिका सभा के दो तिहाई सदस्य उस पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दें, तो उसे अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ेगा।

राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में, त्यागपत्र देने पर या उसकी मृत्यु हो जाने पर उपराष्ट्रपति उसके स्थान पर कार्य करेगा। उसका चुनाव संयुक्त केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के द्वारा होगा। उसका भी कार्यकाल पाँच वर्ष तक के लिए होगा। वह राज्य-परिषद् का सभापति भी होगा।

मंत्रिमंडल—व्यवस्थापिका सभा के चुनाव में आने वाले बहुसंख्यक दल के नेता को राष्ट्रपति अपना प्रधान मंत्री बनायेगा। शेष मंत्रियों की नियुक्ति वह प्रधान मंत्री की अनुमति से करेगा। देश की रक्षा, आन्तरिक शासन, विदेशों से सम्बन्ध, अर्थ-व्यवस्था, यातायात, कानून, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, रेलवे, श्रम, निर्माण तथा खाद्य वस्तुओं के प्रबन्ध आदि के लिए प्रत्येक मंत्री अलग अलग चुना जायगा। लेकिन प्रत्येक कार्य के लिए समस्त मंत्रिमंडल संयुक्त रूप से उत्तरदायी होगा। यह मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका सभा के प्रति पूर्णतः उत्तरदायी होगा। किसी भी समय अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने पर मंत्रिमंडल को त्यागपत्र देना पड़ेगा। बजट में कोई कटौती होने या सरकारी प्रस्ताव पास न होने का अर्थ है मंत्रिमंडल पर अविश्वास का प्रस्ताव।

व्यवस्थापिका सभा—कानून बनाने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को होगा। इस के अन्तर्गत दो सभाएँ होंगी, एक राज्य परिषद् (कौंसिल) और दूसरी लोकसभा (असैम्बली)। राज्य परिषद् के २५० सदस्य होंगे। इनमें से १५ सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान आदि के प्रतिनिधि होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति मनोनीत करेगा और शेष २३५ विभिन्न प्रान्तों की प्रतिनिधि सभाओं द्वारा चुने जावेंगे। इस परिषद् का सभापति उपराष्ट्रपति होगा। प्रति तीसरे वर्ष इसके एक तिहाई सदस्य चुनाव द्वारा बदल दिये जायँगे।

लोक सभा के सदस्यों की संख्या ५०० होगी। यह अपना अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष स्वयं चुनेगी। इसका कार्यकाल पाँच वर्ष होगा। किसी प्रश्न पर यदि दोनों सभाओं में मतभेद होगा, तो दोनों की संयुक्त बैठक बुलाई जायगी। लोक सभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर होगा।

इन दोनों सभाओं की कार्यवाही हिन्दी अथवा अंग्रेजी में हुआ करेगी। वर्ष में दोनों सभाओं के दो दो अधिवेशन जरूर होंगे।

साधारणतः कोई भी प्रस्ताव किसी भी सभा में पेश किया जा सकता है; किन्तु दोनों सभाओं में पास हो जाने के बाद प्रधान की स्वीकृति मिल जाने पर कानून बन सकेगा। आर्थिक प्रश्नों पर राज्य परिषद् की अनुमति अनिवार्य नहीं होगी।

सर्वोच्च अदालत—भारत में एक सर्वोच्च अदालत होगी। इसमें एक प्रमुख न्यायाधीश और सात दूसरे न्यायाधीश होंगे। इस अदालत को केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के आपसी मामले, अपील तथा परामर्श संबधी मामलों के सुनने का अधिकार होगा। हिन्दुस्तान की अदालतों में हुए किसी भी निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च अदालत में अपील की जा सकती है। विधान-संबधी किसी प्रश्न की व्याख्या राष्ट्रपति के पूछने पर सर्वोच्च अदालत करेगी।

प्रान्तीय शासन

गवर्नर—प्रत्येक प्रान्त का प्रमुख शासक गवर्नर होगा। वह विधान और कानून के अनुसार शासन सत्ता का उपयोग करेगा। गवर्नर के चुनाव के दो तरीके प्रस्तुत किये गये हैं। एक के अनुसार राज्य की धारा सभा के मतदाता स्वयं गवर्नर का चुनाव करेंगे। दूसरे तरीके के अनुसार धारा सभा चार व्यक्तियों की सूची पेश करेगी और उनमें से राष्ट्रपति किसी एक को गवर्नर चुन लेगा।

मंत्रिमंडल—गवर्नर शासन कार्य से अपनी सहायता के लिए एक मंत्रिमंडल नियुक्त करेगा। प्रधानमंत्री व्यवस्थापिका सभा के बहुमत दल का नेता ही चुना जायगा। गवर्नर मंत्रिमंडल के परामर्श से काम करेगा। केवल व्यवस्थापिका सभा को बुलाने व भंग करने, प्रमुख आय-व्यय-निरीक्षक नियत करने तथा राज्य की शान्ति व्यवस्था में संकट आने पर वह अपनी सम्मति से काम करेगा। मंत्रिमंडल तब तक काम कर सकेगा, जब तक कि उक्त सभा का उस पर विश्वास होगा।

व्यवस्थापिका-सभा—प्रत्येक प्रान्त में व्यवस्थापिका सभा कानून बनाने, बजट पास करने तथा शासनसंबंधी नीति निर्धारित करने के लिए होगी। पंजाब, युक्त-प्रान्त, बिहार, बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रान्तों में दो सभाएँ—कौंसिल व असेम्बली होंगी। आसाम, उड़ीसा और मध्यप्रान्त में केवल एक असेम्बली होगी।

प्रान्तीय असेम्बली के सदस्यों की संख्या ६० से कम और ३०० से अधिक नहीं हो सकती। बालिग मताधिकार के आधार पर इसके सदस्यों का चुनाव होगा। जिन प्रान्तों में कौंसिल होगी, उनकी सदस्य-संख्या असेम्बली के सदस्यों की एक चौथाई से अधिक नहीं होगी। आधे सदस्य विज्ञान, कृषि, इंजीनियरिंग आदि व्यवसायों, विश्वविद्यालयों तथा साहित्य के प्रतिनिधि होंगे। एक तिहाई सदस्य असेम्बली द्वारा चुने जावेंगे और शेष को गवर्नर मनोनीत करेगा।

असेम्बली का अवधिकाल ५ वर्ष होगा, परन्तु कौंसिल स्थायी संस्था रहेगी, जिसके सदस्यों का एक तिहाई भाग हर तीसरे वर्ष सदस्यता से हट जायगा।

हाईकोर्ट—प्रत्येक प्रान्त में एक हाईकोर्ट होगा, जो प्रान्त के न्याय-विभाग का भी नियंत्रण करेगा। न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रह सकता है।

छोटे प्रान्त—दिल्ली, अजमेर, मारवाड़, कुर्ग और पंथपीपलोदा तथा अण्डेमान निकोबार का शासन केन्द्रीय सरकार चीफ़ कमिश्नरों द्वारा अपने हाथ में रखेगी।

संकटकालीन परिस्थिति आने पर राष्ट्रपति प्रान्तों का शासन अपने हाथ में ले सकेगा और कोई आज्ञा प्रान्तों पर लागू कर सकता है।

अल्पसंख्यकों के लिए विधान में विशेष अधिकार रखे गये हैं। उनकी जनसंख्या के अनुपात से केन्द्रीय व प्रान्तीय असेम्बलियों

में स्थान सुरक्षित कर दिये जायँगे, लेकिन उनका चुनाव संयुक्त चुनाव के आधार पर होगा। यह सुविधा केवल दस वर्ष के लिए रहेगी।

विधान में संशोधन—यदि विधान में कोई संशोधन आवश्यक हो तो उसके लिए दोनों सभाओं में उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई और कुल सदस्यों का बहुमत लेना आवश्यक है।

प्रस्तावित विधान में शासन-संबंधी सब विषयों की तीन सूचियाँ बनाई गई हैं। पहली सूची में केन्द्रीय सरकार के विषय आते हैं। दूसरी सूची में प्रान्तीय सरकार के विषय गिनाये गये हैं। तीसरी सूची में ऐसे विषय हैं, जो केन्द्रीय व प्रान्तीय दोनों सरकारों के क्षेत्र के अन्तर्गत है।

परिशिष्ट

देश के बारे में कुछ ज्ञातव्य बातें

जनसंख्या

जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद भारतवर्ष का स्थान है। इसकी जनसंख्या विभाजन से पूर्व ३८,७९,९८,९५५ थी जब कि १९३१ में ३५ करोड़ थी। यह संख्या संसार की कुल जनसंख्या का पंचमांश है। प्रति बीसवें वर्ष यह संख्या ८ करोड़ बढ़ जाती है। इसमें से ८७ फ़ीसदी जनता गाँवों में रहती है और कुल १३ फ़ीसदी जनता छोटे या बड़े शहरों में रहती है। सबसे घनी आबादी बंगाल प्रांत में है, जहाँ औसतन ७५१ व्यक्ति प्रति वर्गमील रहते हैं। पूर्वी पंजाब में ४०६ व्यक्ति प्रति वर्गमील रहते हैं। एक लाख से अधिक आबादी के शहर भारत में ४९ हैं और यह संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। साधारणतः सारे भारत में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक है। पंजाब, सीमाप्रान्त और बम्बई में स्त्रियों की कमी विशेष रूप से खटकती है। विभाजन के बाद भारत की आबादी करीब ३२ करोड़ ७० लाख है। और क्षेत्रफल करीब १२,२०,०९९ वर्गमील रह गया है।

विभिन्न धर्म

संसार के दो महान् धर्मों—बौद्ध व हिंदूधर्म की जन्मभूमि भारतवर्ष है। इस्लाम और पारसी धर्म का भी यह विशेष क्षेत्र है। सिक्खों, जैनियों और ईसाइयों की संख्या भी भारत में है। प्रति १०० भारतीयों में लगभग ६६ हिन्दू, २४ मुसलमान और ६ आदि-

वासी हैं। लेकिन २० वर्ष पूर्व हिन्दू ६८ और मुसलमान २२ प्रतिशत थे। १९४१ की जनसंख्या के अनुसार धार्मिक दृष्टि से भारतवर्ष इस प्रकार विभक्त था:—

हिन्दू	२५,४९,३०,०००	६६·१ फ़ीसदी
मुसलमान	९,२०,५८,०००	२३·८१ "
आदिवासी	२,५४,४२,०००	६·५८ "
ईसाई	६३,१७,०००	१·६३ "
सिख	५६,९१,०००	१·४७ "
पारसी	१४.४५,०००	०·३ "
अन्य	४,१०,०००	०·१ "

अब यह संख्याएँ बदल गई हैं। भारत-संघ में मुसलमानों की संख्या करीब ४ करोड़ है। अधिकांश मुस्लिम-बहुल प्रदेश पाकिस्तान में चले गये हैं। पाकिस्तान में ६॥ करोड़ मुसलमान और १। करोड़ हिन्दू हैं।

भाषाओं की दृष्टि से भारत निम्नलिखित रूप में विभक्त है—

हिन्दी	१२,१२,४२,२२९
बँगला	५,३४,६८,४६९
गुजराती	१,०८,४९,९८४
मलयालम	९१,३७.६१५
तामिल	२,०४,१२ ६५२
तैलगू	२,६३,७३,७२७
मराठी	२,०८,९०,६५८
पंजाबी	१,५८,३९,२५४
कन्नड़ी	१,१२,०६,३८०
उड़िया	१,११,९४,२६५
मुलतानी	८५,६६,५०१

इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दी भाषियों की संख्या सबसे अधिक है।

आर्थिक स्थिति

भारतीयों की आर्थिक अवस्था बहुत शोचनीय है। हमारी खेती की जमीनें अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम पैदा करती हैं। जावा में प्रति एकड़ ४० टन गन्ना पैदा होता है, जब कि भारत में केवल १३ टन गन्ना होता है। मिस्र और अमेरिका में प्रति एकड़ क्रमशः ४५० और २०० पौंड रुई पैदा होती है जब कि भारत में सिर्फ़ ९८ पौंड रुई पैदा होती है। कल-कारखानों से यहाँ प्रति व्यक्ति ४०–५० रुपया वार्षिक आय होती है जब कि इंगलैंड और अमेरिका में १००० से १५०० तक आय होती है। इसीलिए भारत में प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १६८ रुपये है, जब कि अमेरिका, और इंगलैंड में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ४६६८ और २३५५ रुपया है।

भारत में शिक्षा

यद्यपि शिक्षा का प्रतिवर्ष प्रचार हो रहा है, तथापि अभी तक भारत में शिक्षा की दशा बहुत शोचनीय है। पाँच बरस से ऊपर के लड़के लड़कियों और स्त्री पुरुषों में साक्षर जनों की संख्या आज १४·६ प्रतिशत है, जब कि दुनियाँ के उन्नत देशों में यह संख्या ८० फीसदी से कम नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में शिक्षा पर बहुत कम व्यय होता है। १९४० के हिसाब के अनुसार केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों ने प्राथमिक या उच्च शिक्षा पर कुल ११ करोड़ रुपया खर्च किया अर्थात् ६॥ आना प्रति व्यक्ति; जब कि ब्रिटेन की सरकार ने प्रति छात्र १९ रुपया और रूस की सरकार ने ३० रूबल खर्च किया। १९४५-४६ में रियासतों को छोड़ कर देश में प्राइमरी शिक्षा पर कुल ७ करोड़ २२ लाख रुपया खर्च हुआ।

विश्व-विद्यालय—इस समय भारत के विविध प्रांतों में अलग अलग विश्व विद्यालय शिक्षा प्रसार का काम कर रहे हैं। युक्त प्रांत और मद्रास में सबसे अधिक—पाँच-पाँच—विश्व विद्यालय हैं। मध्य प्रान्त में दो तथा अन्य सब प्रांतों में एक-एक।

युक्त प्रांत—१. बनारस हिंदू विश्व-विद्यालय
२. इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
३. लखनऊ यूनिवर्सिटी
४. आगरा यूनिवर्सिटी
५. अलीगढ़ यूनिवर्सिटी
राजस्थान— राजपूताना यूनिवर्सिटी
बंगाल— कलकत्ता यूनिवर्सिटी
काश्मीर— काश्मीर यूनिवर्सिटी
आसाम— आसाम यूनिवर्सिटी
मद्रास—१. मद्रास यूनिवर्सिटी
२. आंध्र यूनिवर्सिटी
३. अन्नामलाई यूनिवर्सिटी
४. ट्रावनकोर यूनिवर्सिटी (रियासती)
५. मैसूर यूनिवर्सिटी (,,)
बम्बई— बम्बई यूनिवर्सिटी
पंजाब— पूर्वी पंजाब यूनिवर्सिटी
मध्य प्रांत—१. नागपुर यूनिवर्सिटी
२. सागर यूनिवर्सिटी
बिहार— पटना यूनिवर्सिटी
हैदराबाद (दक्षिण)—उस्मानिया यूनिवर्सिटी
उड़ीसा—उत्कल यूनिवर्सिटी
दिल्ली —दिल्ली यूनिवर्सिटी

बम्बई प्रांत के पूना में मराठा यूनिवर्सिटी बनी है और अह-

हदराबाद व कर्नाटक में नई यूनिवर्सिटियाँ बनने वाली हैं। विभिन्न प्रान्तों की दृष्टि से देखें, तो १९४२-४३ में प्रत्येक प्रान्त से निम्नलिखित संख्या में ग्रैजुएट बने--

बंगाल--४४१०, युक्तप्रान्त--३४४३, मद्रास--३०१४ पंजाब--३०९१, बम्बई--२२४०, बिहार--५८०, मध्यप्रान्त--४७० दिल्ली--३४२, हैदराबाद (दक्षिण) १८१। इन सब विश्वविद्यालयों में १२८६७३ विद्यार्थी पढ़ते हैं।

गैरसरकारी शिक्षा संस्थाएँ--यह सब सरकार द्वारा स्वीकृत विश्वविद्यालय हैं। इनके सिवाय भी अनेक सार्वजनिक विश्वविद्यालय अपने अपने क्षेत्र में अपनी सीमित शक्तियों द्वारा विशेष उद्देश्य लेकर शिक्षा-प्रचार में सहायक हो रहे हैं। ऐसी संस्थाओं में सर्व प्रथम गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की स्थापना श्री म० मुंशीराम (पीछे से स्वा० श्रद्धानन्द) ने १९०२ में की थी। यह आर्यसमाज की संस्था है। अंग्रेजी, इतिहास, राजनीति, विज्ञान आदि विषयों के अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी और धर्म-शास्त्रों की शिक्षा यहाँ दी जाती है। आयुर्वेद शिक्षण के लिए एक आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की गई है। कन्या गुरुकुल भी इसी के अधीन एक संस्था है, जो देहरादून में है।

इंडियन वोमैन यूनिवर्सिटी की स्थापना १९१६ में श्री कर्वे ने बम्बई में की थी। इसकी ख्याति बहुत अधिक है और स्त्रियों में उच्च शिक्षा का प्रसार इसका उद्देश्य है।

विश्वविख्यात कवि डा० रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने १९२१ में विश्व-भारती की स्थापना बोलपुर में की थी। संगीत, साहित्य, दर्शन और सांस्कृतिक शिक्षा इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। विभिन्न देशों की भाषाओं के अध्यापन की भी यहाँ व्यवस्था है।

बंगाल में जातीय शिक्षा परिषद् सन् १९०५ से शिक्षा-प्रसार का काम कर रही है। इनके कई शिक्षा केन्द्र हैं, उनमें से मुख्य जादव-

पुर का इंजिनीरिंग कालेज है।

१९४३-४४ में भारत की कुल शिक्षण-संस्थाओं की संख्या २१२५०८ थी। प्राइमरी, मिडिल तथा हाईस्कूलों में पढ़ने वालों की संख्या इस वर्ष १,५३,७३,७२७ थी। कुल जन-संख्या के साथ इसका अनुपात ५·१९ फीसदी था।

नई प्रांतीय सरकारों ने शिक्षा के प्रचार की विशेष योजनाएँ बनाई हैं। आठ प्रान्तों में युद्ध से पहले ही अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के कानून भी पास होगये थे लेकिन युद्ध-जन्य नई परिस्थितियों के कारण वह कार्य प्रारंभ नहीं हो सका था। अब इन पर अमल होने की संभावना है। सभी प्रान्तों ने शिक्षा-प्रसार और निरक्षरता-निवारण की योजनाएँ तैयार की हैं। हम पिछले अध्यायों में सरकारी योजना की चर्चा कर आये हैं, जिसके अनुसार ६ से १४ वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षण अनिवार्य हो जायगा। प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेवारी अधिकतर स्थानीय शासन संस्थाओं पर है।

स्त्रीशिक्षा—कन्या शिक्षा की ओर भी ध्यान बढ़ने लगा है। १९३१ से १९३७ तक ब्रिटिश भारत में विद्यार्थिनियों में २५·९ फी सदी की वृद्धि हुई जब कि विद्यार्थियों में यह वृद्धि केवल ७·१ फी सदी हुई। लेकिन अब भी लड़कियाँ पढ़ाई में बहुत पीछे हैं। १९४४ में कन्या शिक्षणालयों की संख्या २७३७४ थी, जब कि लड़कों के शिक्षणालयों की संख्या १८९३६२ थी। स्त्रियों के लिए ब्रिटिश भारत में ५३ आर्ट व साइंस कालेज थे। पंजाब विश्वविद्यालय की हिंदी परीक्षाओं में प्रति वर्ष हजारों लड़कियाँ बैठती हैं। युद्ध काल में शिक्षा प्रसार की दृष्टि से कोई उन्नति नहीं हुई। हाँ; इंजिनीयरिंग और टैकनिकल स्कूलों की वृद्धि काफी हुइ है, क्योंकि सरकार को फौजी कार्य के लिए इस शिक्षा की आवश्यकता थी।

शोध-संस्थाएँ

इन शिक्षा-संस्थाओं के अतिरिक्त भी अनेक सार्वजनिक या

सरकारी संस्थाएँ हैं, जो विशेष विषयों की शिक्षा और शोध का कार्य करती हैं। रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल प्राचीन इतिहास की शोध के लिए १७८४ ई० में सर विलियम जोन्स ने स्थापित की थी। इस संस्था की ओर से अनेक सुन्दर पुस्तकें व लेख प्रकाशित हुए हैं। कलकत्ता में पशुविज्ञान के अध्ययन के लिए इंडियन म्यूज़ियम १८६६ में स्थापित किया गया था। नेशनल एकैडमी आफ साइंस के नाम से कलकत्ता, इलाहाबाद और बंगलौर की प्रसिद्ध संस्थायें, बंगलौर की इंडियन इंस्टीट्यूट आफ़ साइंस तथा बोस इंस्टीट्यूट आदि अनेक संस्थाएँ भारत के विविध भागों में शोध और शिक्षण का काम कर रही हैं। पूना की भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट इतिहास-संबधी साहित्य के लिए प्रसिद्ध संस्था है। कुछ वर्ष पूर्व भारतीय इतिहास परिषद् नाम की संस्था की भी स्थापना भारतीय इतिहास के लिखने के लिए की गई थी।

रेडियो—१९२७ में रेडियो का जन्म भारत में हुआ। १९३० में भारत सरकार ने रेडियो का काम अपने हाथ में ले लिया। देश के विभाजन से पूर्व ९ रेडियो स्टेशन काम कर रहे थे। लाहौर, पेशावार और ढाका के स्टेशन पाकिस्तान को मिल गये। १९४७-४८ में कई नये रेडियो स्टेशन खोले गये। आजकल निम्नलिखित स्थानों में रेडियो स्टेशन हैं —:

बम्बई, दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता, पटना, कटक, गौहाटी, शिलांग, मद्रास, जालंधर, त्रिचनापल्ली, अमृतसर, नागपुर, जम्मू, श्रीनगर, जोधपुर, बेजवाड़ा। जून १९४८ में देश में लाइसेंस प्राप्त रेडियो रिसीवरों की संख्या २,५०,६०३ थी अर्थात् प्रति १३२० आदमियों के पीछे एक।

———

